ॐ

जैनधर्म प्रकाश

लेखक—

जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर,

ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी

प्रकाशक—

राजेन्द्रकुमार जैन, मन्त्री,

परिषद् पब्लिशिङ्ग हाउस, बिजनौर ।

द्वितीयवार १००० | सन् १९२९ ई० | न्यौछावर आठ आना

प्रकाशक—
राजेन्द्रकुमार जैन, मन्त्री,
परिषद् पब्लिशिङ्ग हाउस,
बिजनौर (यू० पी०)

इस संस्करण की लागत का ब्यौरा

कागज़ टाइटिल, नकशे व फ़ार्म	१४५।)
छपाई	२४०॥)
बधाई कटाई	२५)
ब्लाक बनाई डिज़ाइन आदि	३५)
आफ़िस व पोस्टेज ख़र्च आदि	२५)
प्रचार ख़र्च, विज्ञापन छपाई आदि	६०)
कुल ख़र्च १००० प्रति	५३०।॥)

सूचना

एक प्रति का लागत मूल्य ॥)॥ है, लेकिन प्रचार भावसे लागत से भी कम केवल ॥) रक्खा गया है।

मुद्रक—
शान्तिचन्द्र जैन
"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
बिजनौर (यू०पी०)

"मेरी समझमे यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। जैनधर्म के सिद्धान्तको वर्त्तमान पद्धतिसे समझाने में लेखक महोदय ने कसर नहीं रक्खी। उनकी, जैनधर्म का प्रसार और सच्चे मार्ग पर लोगोंको लानेकी पवित्र भावना, पुस्तकमें पद २ पर प्रतीत होतीहै। ऐसी पुस्तकोंके प्रचारसे खांसा जैनधर्मका ठोसप्रचार होगा। मैं इस पुस्तक का हृदय से अभ्युदय चाहता हूँ।"

आश्विन कृष्णा १५ सम्वत् १९८२ — माणिकचन्द जैन, मोरेना (ग्वालियर)

इसका बहुतसा भाग राय बहादुर जगमन्दर लाल जैनी एम० ए० लॉ मेम्बर इन्दौर व कुछ भाग विद्यावारिधि चम्पतराय जी ने भी सुना है और पसन्द किया है। उन्होंने जो त्रुटियाँ बताईं, उनको ठीक कर दिया गया है। पं० जुगलकिशोर जी को पुस्तक भेजी गई थी, परन्तु आपको रचना पसन्द न आई, इससे आपने विना शुद्ध किये वापिस करदी तथा न्यायाचार्य पण्डित गणेशप्रसाद जी ने समयाभाव से देखना स्वीकार न किया है। हमने अपने हार्दिक भाव से पुस्तक का सङ्कलन जैन सिद्धान्तानुसार किया है। इस दूसरे संस्करणमें यथावश्यक सुधार कर दिया गया है। तब भी जहाँ कहीं भूल हो, विद्वज्जन क्षमाभाव धारण करके सूचित करें, जिस से तीसरे संस्करण में शुद्धि होजावे।

अमरावती
फागुन सुदी ६
वीर सम्वत् २४५५ — जैन समाज का सेवक—
ब्र० शीतलप्रसाद

सिवनी, जबलपुर, नागपुर, देहली, आगरा, कानपुर, लखनऊ, बनारस, प्रयाग, आरा, भागलपुर, गया, हज़ारीबाग, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, फ़ीरोज़पुर, सहारनपुर, हाथरस, मथुरा, कोटा, झालरापाटन, बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, शोलापुर, कोल्हापुर, बेलगांव, मैसूर, बङ्गलौर, श्रवणबेलगोल हेलबिड, मूलबद्री, कांची, गिरनार, पालीताना, आबू आदि हज़ारों स्थानों पर मौजूद हैं। यहां ये जैन लोग नित्य भक्ति करते और धर्म साधन करते हैं।

बौद्धोंका भारतमें न रहना और जैनियों का बने रहना, इस प्रश्न पर यदि ध्यान से विचार किया जाय तो विदित होगा कि दोनोंको हिन्दू धर्मके प्रसिद्ध प्रचारक शंकर, रामानुज, चैतन्य आदि का मुकाबला करना पड़ा था। इस मुक़ाबले में बहुत स्थलों पर बौद्धमत की हार हुई, क्योंकि उनके सिद्धांत में आत्माको नित्य अविनाशी नहीं माना है, किन्तु क्षणिक माना है और जैनमत की विजय हुई। क्योंकि जैन सिद्धान्त ने आत्मा की सत्ता को नित्य मानकर उसकी अवस्थाओंको मात्र क्षणिक या अनित्य माना है। हिन्दुओं के राज्यकीय बलके प्रभाव से बहुतसे बौद्ध हिन्दुओं में शामिल होगए—कुछ धीरे धीरे नष्ट होगए। यह राज्यकीय बल जैनियों की तरफ़ भी बहुत वेगसे प्रयोग किया गया था, परन्तु जैनियों में अहिंसामयी नीतिपूर्ण वर्तन व व्यापार-कुशलताका इतना प्रभुत्व था कि जनताने इन का सम्बन्ध नहीं छोड़ा व इनके सिद्धान्त इतने मनमोहनीय थे कि निरपक्ष विद्वान् उनका आदर करते रहे तथा जैनधर्म के मानने वाले राजा लोग भी १७ वी शताब्दी तक अपना महत्व जमाए रहे। इस कारण जैनी भारतवर्ष में बराबर डटे रहे।

अब भी करोडों हिन्दुओंमें मौजूद है जो अब भी जैनमंदिरोंमें पग रखते हुए डरते हैं और जैनियोंको नास्तिक मानकर उन को नास्तिक कहते हैं व कहीं २ कभी २ उनके रथोत्सवादि धर्मकार्यों तक का बहुत बड़ा विरोध कर देते हैं।

कुछ अङ्गरेज़ लोगोंने जब भारत का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया, तब उन्ही ब्राह्मणों से यह जानकर कि बौद्ध और जैन नास्तिक हैं व हिंसा के विरोधी हैं व वेद को नही मानते हैं, दोनों को एक कोटि में रख दिया और इस कारण से कि बौद्धों के साहित्य का बहुत प्रचार था तथा भारत के बाहर बौद्धमतके अनुयायी करोड़ों है, इसलिये उन्होंने बिना परीक्षा किये लिख दिया कि जैनमत बौद्धमत की शाखा है। किसी ने लिख दिया कि यह जैनमत ६०० सन् ई० से चला है जब कि बौद्धमत घटने लगा था; इत्यादि।

इस पुस्तक के लिखने का मतलब यह है कि 'जैनधर्म क्या वस्तु है?' इसका यथार्थ ज्ञान मनुष्यसमाज को होजावे और वे समझ जावें कि इसका सम्बन्ध पिता पुत्र के समान न बौद्धमतसे है न हिन्दूमत से है, किन्तु यह एक स्वतन्त्र प्राचीनधर्म है जिसके सिद्धान्त की नीव ही भिन्न है।

साहित्य प्रचार के इस वर्तमानयुग में भी अबतक जैन-धर्म का ज्ञान और उसका वास्तविक रहस्य साधारण जनता को न हुआ, इस के निम्नोक्त दो मुख्य कारण हैं:—

(१) वेदानुयायी हिंदुओंका सैकड़ोंवर्षों या सैकड़ोंपीढ़ियों से यह मानते चले आना कि जैनधर्म नास्तिकों अर्थात् ईश्वर को न मानने वाले वेदविरोधियों और घृणितकर्म करने वालों का एक घृणित मत है, उसमें तथ्य कुछ नहीं है उनके

मन्दिरों में जाना व उनके नास्तिकतापूर्ण ग्रन्थोंका पढ़ना या उनका उपदेश सुनना और उनकी अश्लील नंगी मूर्तियों का देखना महापाप है, इत्यादि।

(२) श्रीशंकराचार्य व श्री रामानुजादिके समयमें तथा महमूदग़ज़नवी आदि के आक्रमण काल में धर्मविरोधियों की द्वेषाग्नि में बहुत कुछ जैनसाहित्य के नष्ट हो जानेसे जैनियों का अपने साहित्य की रक्षार्थ जैनग्रन्थों को तहख़ानों में छिपा कर रखना और उन्हें धूप दिखाने तक में धर्म-शत्रुओं द्वारा उनके नष्ट होजाने का भय मानते रहने का संस्कार आज तक भी न मिटाना। वह द्वेषाग्नि यदि सर्वथा नहीं तो बहुत कुछ बुझ जाने और इस अँग्रेज़ी राज्यमें मुद्रालयों द्वारा साहित्य-प्रचार के लिये सर्वप्रकार का सुभीता होजाने तथा समयानुकूलता प्राप्त होजाने पर भी इस कहावत के अनुसार कि "दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंक कर पीता है" जैनियों का बहु भाग अब भी अपने पूर्व समय के भय को हृदयसे दूर नहीं करता है, वरन् अज्ञानवश अपने धर्म ग्रन्थोंकी वास्तविक निश्चयविनय को केवल दिखावे की उपचारविनय का ग्रास बनाकर अपने बचेखुचे बहुमूल्य ग्रन्थभण्डारों को दीमकोंका भक्ष्य बना रहा है। इसमें जैनों की कुछ तो अदूरदर्शिता, कुछ प्रमाद और कुछ वर्तमान समय की लोकस्थिति की अनभिज्ञता, ये तीन मुख्य कारण हैं। इसी से जैन साहित्य का बहु भाग आजतक भी अप्रकाशित पड़ा रहने से और जैनधर्म का रहस्य जानने की अभिलाषा रखनेवालों तक के हाथों में जैन दार्शनिक ग्रन्थ पहुंचाए जाने का कोई सुभीता न होने से जैन साहित्य का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाता। जैनों के यद्यपि जैन

ग्रन्थों में जैनधर्म विद्यमान है, तथापि वह इतना विस्ताररूपसे अनेक ग्रन्थों में है कि जब तक भिन्न २ विषय के १०-२० गून्थ न पढ़े जावें तब तक जैन दर्शन का आभास नहीं झलकता। साधारण जनता के लिये, जो जैनधर्म को तुच्छ, नास्तिक व अनीश्वरवादी समझ रही है, बहुतसे ग्रन्थों का परिश्रम करके पढ़ना, सम्भव नहीं है। इसलिये इस छोटीसी पुस्तक में सर्व साधारण के लाभ के लिये जैनदर्शन की जानने योग्य बहुतसी बातों को बता दिया गया है और यह आशा की जाती है कि जो इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ जावेंगे उनको स्वयं यह रुचि पैदा हो जायगी कि हम जैन ग्रन्थों को देखें और लाभ उठावें।

कोई समय ऐसा था कि जब भारत में परस्पर भिन्न २ धर्मों में घृणा न थी। सब प्रेमसे बैठकर वार्तालाप करते थे व जिसको जो रुचता था वह उसीको पालने लगता था। पिता पुत्र, पति-पत्नी व भाई २ का धर्म भिन्न २ रहता था, तौ भी सामाजिक प्रेम व आपस के बर्ताव में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। तब एक धर्मवाले दूसरे धर्म के सम्बन्ध में मिथ्या आरोप नहीं लगाते थे। जिसकी जो २ मान्यता थीं, उन्हीं मान्यताओं को लेकर और उन पर ही सद्भाव से तर्क वितर्क करके खण्डन या मण्डन किया करते थे।

वर्तमान में भी प्रायः सत्य खोज का भाव लोगों में बढ़ रहा है और लोग मिथ्या आरोपों से घृणा करने लगे हैं तथा विद्वान् लोग सब ही धर्मों के सिद्धान्तों को सुनना व जानना चाहते हैं। ऐसे समय में जैनियों का कर्तव्य है कि वे अनेक नवीन ढङ्ग की पुस्तकों से तथा व्याख्यानों से अपने जैनधर्म

का सच्चा स्वरूप जनता को बतलावें। इसी आशय को लेकर यह पुस्तक संक्षेप में लिखी गई है। उन लोगों के लिये जिनके चित्त में जैनधर्मसे अज्ञान है, हम उनके अज्ञानभाव को हटाने के लिये हम इस भूमिका में थोड़ा सा प्रयास इसलिये करते हैं कि वे भाई भी हमारी भूमिका पढ़कर अज्ञान छोड़ कर जैन-धर्म को जानने के उत्सुक होजावें।

जैनी नास्तिक हैं-क्योंकि हमारे वेदोंको नहीं मानते, यह कहना तो वैसाही है जैसा जैनी या ईसाई या मुसलमान कह सकते हैं कि जो हमारे शास्त्र का न माने-वही नास्तिक या काफ़िर है। जब भिन्न २ मत हैं तब एक मतके धारी दूसरे के मतके शास्त्र को अपनी मान्यता की कोटि में किस तरह रख सक्ते हैं? जैनी नास्तिक हैं, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते हैं, यह बात विचारणीय है। जैन लोग परमात्माको या ईश्वर को मानते हैं, परन्तु वे किसी एक ईश्वर को कर्ता व दुःख का फलदाता नहीं मानते, जैसा मीमांसक व साँख्य ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं मानते। भगवद्गीता में ही एक स्थल में (अध्याय ५ श्लोक १४, १५ में) कहा है कि—

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्म फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥
नादत्ते कस्य चित्पापं न कस्य सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

अर्थात्—ईश्वर जगत् के कर्तापनेको या कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्म फलके संयोगकी व्यवस्था ही करता है, मात्र स्वभाव काम करता है—परमात्मा न किसी को पाप

का फल देता है न पुण्य का; अज्ञान से ज्ञान ढका है, इसी से जगत् के प्राणी मोही हो रहे हैं।

बस यही मान्यता जैनियोंकी भी है। वे कहते हैं कि ये जीव आपही अपने भावोंसे पाप पुण्य कर्म बाँध लेते हैं व आप ही उनका फल भोग लेते हैं; जैसे कोई प्राणी आप ही मदिरा पीता है, आपही उसका बुरा फल भोगता है। परमात्मा इन प्रपंच जालों मे नहीं पडता—यदि वह जगत् के प्रपंच में बुद्धि लगावे तो नित्य सुखी व तृप्त व कृतार्थ नहीं रहसकता है। जैन लोग जगत् को अनादि अनंते मानते हैं और कहते हैं कि यह जगत् चेतन अचेतन पदार्थों का समुदाय है। जब यह पदार्थ मूलमें सदासे हैं व सदा रहेंगे, तब यह जगत भी सदा से है व सदा रहेगा—सत् का विनाश नहीं, असत् का जन्म नहीं। कहा है कि—Nothing is destroyed nothing is created अर्थात्—'न कुछ नष्ट होता है न बनता है', केवल अवस्थाएँ बदलती हैं। यह जो वैज्ञानिक मत (Scientific view) है, वही जैनियोंका मत है। परमात्मा या परमपद का धारी परम आत्मा, इच्छारहित, कृतकृत्य, शरीररहित व करने कराने के विकल्पोंसे रहित है। इससे वह न जगतको बनाता है न बिगाड़ता है। जगत् में बहुत से कामतो बिना चेतनके निमित्त बने हुये केवल योंहीं जड़ निमित्तों के मिल जाने से होते हैं; जैसे मेघ बनना, पानी बरसना आदि। बहुत से कामों को संसारी अशुद्ध जीव निरन्तर किया करते हैं। जैसे घोंसला बनाना आदि। शुद्ध प्रभु इन झगड़ों में नहीं पड़ता है।

जैनलोग परमात्मा को मानते है, इसीलिये वे पूजा व भक्ति अनेक प्रकारसे करते हैं। उनका जो प्रसिद्ध मन्त्र है उस

का पहला पदही परमात्माको नमस्कारवाचक है, जैसे "णमो अरहंताणं" । जैनलोग आत्मा, परमात्मा, पुण्य, पाप, यहलोक, परलोक, पुण्य-पापका फल, सुख, दुःख, संसार व मोक्ष मानते हैं। इसलिये उनको नास्तिक कहना बिलकुल अनुचित है। जैनियोंके मन्दिरोंमें कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे कोई हानि हो सके, यदि कोई निर्मल दृष्टिसे देखेगा तो उसको जैनमंदिरों में बहुत अधिक शांति और वैराग्य का दृश्य मिलेगा ।

आप किसी भी जैनमन्दिरमें चले जाइये, वहाँ वेदी पर उन महानपुरुषोंकी ध्यानमई मूर्तियाँ मिलेंगी, जो परमात्मापद पर पहुँचे हैं। इनको तीर्थङ्कर कहते हैं। उनके दर्शनसे सिवाय शांति और वैराग्य के कोई और भाव दर्शक के चित्त में हो ही नहीं सकता है । भगवद्‌गीता अ० ६ में जिस योगाभ्यास की मूर्तिका वर्णन किया है वैसी ही मूर्ति जैनमन्दिरों में होती है।

लिखा है कि :——

समंकाय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

भावार्थ—शरीर, मस्तक और गर्दन सीधी रख, निश्चल हो इधर उधर न देखते हुए, स्थिर मन से नासिका के अग्र-भाग के ऊपर अच्छी तरह दृष्टि रख, अन्तःकरणको अति निर्मल

वनाकर निर्भय हो, ब्रह्मचर्यव्रत युक्त रह मनको संयम में कर, मेरे (प्रभु के) ऊपर चित्त लगावे, मेरे में लीन हो जावे। इस तरह जो योगी सदा निश्चल मनहो अपने आत्माको जोड़ता है, वह परम शाँतिरूप निर्वाण को (जो मेरे ही में है) पाता है।

योगाभ्यास का आदर्श जैनमूर्ति हैं, जिनके दर्शन से 'संसार तुच्छ व मोक्ष श्रेष्ठ है' ऐसा भाव होजाता है। इस के सिवाय जैन मन्दिर में इधर उधर साधुओं के व उन महान पुरुषों व स्त्रियोंके चित्र मिलेंगे जिन्होंने कोई उत्तम कार्य किया था। शास्त्रों की भरी हुई अलमारी मिलेगी । जप करने की मालायें मिलेंगी—वहाँ प्रायः धर्मसाधनके ही पदार्थ रहते हैं।

बौद्धमतका सिद्धान्त क्षणिकवाद है अर्थात् सर्व पदार्थ क्षणभङ्गुर हैं। जैनमतका सिद्धान्त है कि पदार्थ स्वभावसे नित्य है, परन्तु अवस्थाओंको बदलनेकी अपेक्षा क्षणभंगुर है। बौद्ध मतके संस्थापक गौतमवुद्ध थे, जो जैनमतके चौबीसवें तीर्थ-कर श्रीमहावीर स्वामीके समयमें हुए थे। उस समय ही पर-स्पर जैन और बौद्धों में संवाद हुये। कुछ बौद्ध साधुओं ने जैनियोंके पास जानेकी भी मनाई की, ऐसा कथन बौद्ध ग्रंथों में है। बौद्ध स्वयं जैनमत को भिन्न मत कहते हैं। जैनगृहस्थों को कड़ी आज्ञा है कि वे किसी भी तरह का मांस का आहार न करें। मांस न खाना उनके चरित्र के आठ मूलगुणों में से एक है, जब कि बौद्धोंके यहाँ गृहस्थों को मांसाहार के त्याग की कड़ी आज्ञा नही है—वे स्वयं मरे हुए पशुका मांस लेने में दोष नहीं समझते हैं। इसीसे चीन व ब्रह्मा में करोड़ों बौद्ध मांसाहारी हैं, जब कि जैन कोई भी प्रगटपने से मांसाहारी न मिलेगा। इसलिये जैनमत बौद्धमत की शाखा है, यह कथन

ठीक नहीं है और न यह हिन्दूमत की ही शाखा है । क्योंकि सांख्य मीमांसादि दर्शनों से इसका दार्शनिक मार्ग भिन्न ही प्रकार का है, जो इस पुस्तक के पढ़ने से विदित होगा ।

जैनमत की शिक्षा सीधी और वैराग्यपूर्ण है । हर एक गृहस्थ को निम्न छः कर्म नित्य करने का उपदेश है —

(१) देवपूजा, (२) गुरु भक्ति, (३) शास्त्र पढना, (४) सयम (Self control or temperance) का अभ्यास, (५) तप (सामायिक या संध्या या ध्यान या meditation), (६) दान (आहार, औषधि, अभय तथा विद्या) ।

उनको निम्न आठमूल गुणोंके पालनेका उपदेश भी है:—

मद्य मांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहीणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात् मद्य या नशा न पीना, मांस न खाना, मधु यानी शहद न खाना, क्योंकि इनमें बहुत से सूक्ष्म जंतुओं का नाश होता है: पाँच पापोंसे बचना अर्थात् जान बूझकर वृथा पशु पक्षी आदि की हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना अपनी स्त्री में संतोष रखना, परिग्रह या सम्पत्ति की मर्यादा कर लेना जिससे तृष्णा घटे । इनको गृहस्थों के आठ मूलगुण उत्तम आचार्यों ने बतलाया है ।

हमारे जैनेतर भाई देख सकते हैं कि यह शिक्षा भी हर एक मानव को कितनी उपयोगी है । यद्यपि और धर्मों में भी अहिंसा तथा दयाका उपदेश है व मांसाहार का निषेध है, परन्तु उनका आचरण जैनियों के सदृश नहीं है । कारण यही है कि कहीं २ उनके पीछेके टीकाकारोंने इस उपदेश में शिथि-

लता करती है। हिन्दूमत में मनुस्मृति के कई श्लोकोंमें मांसा-हार का निषेध है। जैसे—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

—श्लोक ४८ अ० ५

अर्थात्—विना प्राणियों के वध किये मांस नहीं होता, वध करना स्वर्ग का कारण नहीं, इससे मांस न खावे; परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि करोड़ों हिन्दु मांस खाते हैं, क्योंकि उसी मनुस्मृति में अन्यत्र मांसाहार की पुष्टि भी है। ईसाइयों के यहाँ नीचे के वाक्यों में मांस खाना निषिद्ध बताया है, तब भी लाखों में दो चार ही मांस के त्यागी हैं :—

Behold I have given you every herb, bearing seed, which is upon the face of all the earth, and every tree in which is the fruit of a tree yielding-seed, to you it shall be meat (Genesis chap. 129)

भावार्थ—देखो मैंने तुमको बीज से पैदा होने वाले हर एक सागपात जो पृथ्वी भर पर दीखते हैं और फल देने वाले वृक्ष जिनसे बीज भी मिलते हैं, दिये हैं। यही तुम्हारे लिये भोजन होगा। और भी कहा है—

St. Paul says—It is good neither to eat flesh not todrink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is made weak. (Romans 14-21)

सेन्टपाल कहते हैं कि—न मांस खाना ठीक है, न शराब पीना ठीक है और न कोई ऐसा काम करना चाहिये जिस से भाई कष्ट में पड़े या निर्बल हो। (रोमन्स १४-२१)

मुसलमानों ने भी मांसाहार का निषेध कावेकी पवित्र भूमिके लिये तो अवश्यही किया है। क्योंकि उनकी पवित्र जगह मक्का में जो कोई जाता है उसे मांस नहीं खाना होता है। जैनियों के आचरण का इतना महत्व है कि सरकारी जेल की रिपोर्टोंमें औसत दर्जे सब जातियों से कम जैन अपराधी हैं। सन् १८६१ की बम्बई प्रान्त की जेल रिपोर्ट इस तरह है —

धर्म	कुल आबादी	जेलके क़ैदी	कितने पीछे एक
हिन्दू	१४६५७१७६	९७१४	१५०९ में से एक
मुसलमान	३५०१९१०	५७९४	६०४ में से एक
ईसाई	१५८७६५	३३३	४७७ में से एक
पारसी	७३९४५	२९	२५४९ में से एक
यहूदी	९६३९	२०	४९ में से एक
जैनी	२४०४३६	३९	६१६५ में से एक

सन् १९२०, १९२२, १९२३ के कैदियों का ब्यौरा नीचे प्रकार है :—

धर्म	१९२०	१९२२	१९२३
हिन्दू	११२५४	९०८२	८१३४
मुसलमान	७२७३	६९२२	७२०५
ईसाई	३६७	२७५	३२०
जैनी	५१	३४	२५

सन् १६२१ का हिसाब निम्न प्रकार है, जिससे प्रगट होगा कि सन् १६२१ में जैनी १। लाख में एक ही कैदी हुआ है। यह जैन गृहस्थों पर जैनचारित्र की छाप का प्रभाव है :—

धर्म	कुल आबादी	जेलकेकैदी	कितने पीछे एक
हिन्दू	२१०२७८०८	११३४८	१८५४ में से एक
मुसलमान	४६१५७७३	७१८२	६४२ में से एक
ईसाई	२७६७६५	३४६	७६४ में से एक
जैन	४८१३४२	४	१२०३३३ में से एक

जैनियोंके पांच व्रतोंमें २५ दोष न लगने चाहिये। इस उपदेश को जो मानेगा उसको सरकारी पेनलकोड कानून की कोई भी फ़ौजदारी दफा नहीं लग सकती। यह कितना सुंदर उपदेश गृहस्थोंके लिये है। वे २५ दोष नीचे लिखे प्रमाण हैं:—

अहिंसाव्रत के पांच—अन्यायसे पीटना, बंदीमें डालना, अङ्ग छेदना, अधिक बोझा लादना, अन्न पान रोक देना।

सत्यव्रत के पाँच—मिथ्या उपदेश देना, किसी गृहस्थ का गुप्त रहस्य कहना, झूठा लेख लिखना, अमानतको झूँठ कह कर लेना, गुप्त सम्मतियों को इशारोंसे जानकर प्रकट करना।

अचौर्यव्रत के पाँच—चोरीका उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्यविरुद्ध महसूल चुराना या नीति विरुद्ध लेनदेन करना, कमती बढ़ती तौलना-नापना. झूँठी वस्तु को खरी कहकर बेचना या खरीमें झूँठी मिलाकर खरी कहना।

ब्रह्मचर्य व्रत के पांच—अपने कुटुम्ब की संतान के सिवाय दूसरेके विवाह शादी करानेकी चिन्तामें पडना, वेश्या के साथ सम्बन्ध रखना, व्यभिचारिणी या दूसरेकी स्त्री के साथ राग करना, काम के मुख्य अङ्ग को छोड अन्य अङ्गों से काम चेष्टा करना, काम की तीव्र लालसा रखनी ।

परिग्रह प्रमाण व्रत के पांच—गृहस्थ जन्मभर के लिये क्षेत्र मकान, धन धान्य, सोना चांदी, दासी दास, कपड़ा वर्तन, इन १० वस्तुओं का प्रमाण करता है—१० के पाँच जोड हुए; हर एक जोड़ में एकको बढ़ाकर दूसरे को कम कर लेना, यह ही पाँच दोष हैं ।

जो गृहस्थ इन बातों पर ध्यान रक्खेगा, उसका नैतिक चारित्र राजा प्रजा को हितकारी होगा । महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन के नीतिपूर्ण राज्य व उसकी आदर्श प्रजा का वर्णन यूनानी विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है । उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि—

"भारतवासियों का व्यवहार बहुत सरल था । यज्ञ को छोड़कर वे मदिरा कभी नही पीते थे । लोगों का व्यय इतना परिमित था कि वे सूदपर ऋण कभी नहीं लेते थे । व्यवहारके वे लोग बहुत सच्चे होते थे—झूठ से उन लोगों को घृणा थी । आपस में मुकदमें बहुत कम होते थे । विवाह एक जोड़े बैल देकर होता था । सब लोग आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे । शिल्प वाणिज्य की अच्छी उन्नति थी । राजा और प्रजा में विशेष सद्भाव था । राजा अपनी प्रजा के हित-साधन में सदैव तत्पर रहता था । प्रजा भी अपनी भक्ति से राजा को संतुष्ट किये हुएथी ।" (चन्द्रगुप्त मौर्य पृ०७५ जयशङ्कर प्रसाद)

इस विषय का विशेष कथन Ancient India by Magasthenese में इस प्रकार दिया है कि "लोग पवित्र वस्तु व जल लेते थे, अनेक धातुओंको ज़मीनसे निकाल कर वस्तुयें बनाते थे, किसानों को पवित्र समझा जाता था युद्ध के समय में भी कोई शत्रु उनको कष्ट न देता था, सब कोई अपने ही वर्ण में विवाह करते थे व अपने पुरुषोंका व्यवसाय करते थे। विदेसियों की रक्षा का पूर्ण प्रवन्ध था। वे अपने माल को विना रक्षक छोड़ देते थे। वे यद्यपि सादगी से रहते थे, तथापि उस समय स्वर्ण और रत्नों के पहनने का बहुत रिवाज था। सत्य और धर्म की बड़ी ही प्रतिष्ठा करते थे (Truth & Virtue they held alike in esteem)। दाल चावल खाने का अधिक रिवाज था। विद्वानों और तत्वज्ञों की राजद्वार में बड़ी प्रतिष्ठा थी।"

जैनियों को यह उपदेश है कि छान कर पानी पिओ, यह बड़ा ही उपयोगी है। इस के द्वारा पानी में जो कीड़े होते हैं उनकी रक्षा होती है और साथ ही अपने शरीर की भी रक्षा होती है अर्थात् जो रोगी कीड़े रोग कर सकते थे, वे उदर में नहीं जा सकते हैं।

जैनधर्म ने स्वतन्त्रताकी शिक्षा निम्न श्लोक में दी है:—

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव वा।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७ ॥

—समाधिशतक

भावार्थ–यह आत्मा स्वयं ही आपको चाहे संसारमें ले जावे व चाहे निर्वाणमें लेजावे। इसलिये वास्तवमें आत्माका

गुरु आत्माही है। इस शिक्षाका भाव यह है कि यह आत्मा अपनेही परिणामोंसे पाप या पुण्यको बाँधकर आप अपने शुद्ध भावोंसे पापोंका नाश कर व पुण्यको शीघ्र भोगकर मुक्त हो जाता है। जैन लोग जो परमात्माकी भक्ति व पूजा वन्दना करते हैं वह मात्र इसीलिये कि अपने भावों को निर्मल किया जावे, न कि इसलिये कि किसी परमात्मा को प्रसन्न किया जाये। जैसा कहा भी है कि—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथविवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरितां जनेभ्यः॥

—(स्वयम्भूस्तोत्र)

भावार्थ—भगवन्! आप वीतराग है, आपको हमारी पूजासे कोई सरोकार नहीं, आप वैर रहित हैं, आपको हमारी निन्दासे कोई दुःख नहीं, तब भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मनको पापके मैलों से पवित्र करता है।

जैन सिद्धान्त कहता है कि अहिंसा ही परम धर्म है और अहिंसा के दो भेद हैं—एक भाव-अहिंसा, दूसरा द्रव्य-अहिंसा। राग, द्वेष, मोहादि भावों का न होना भाव अहिंसा है। जैसा कहा है कि—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

—(पुरुषार्थ सि०)

भावार्थ-निश्चयसे राग द्वेषादि भावोंका न होना अहिंसा है व उनका होना ही हिंसा है, यह जैनशास्त्रका सार है। भाव-हिंसा होकर अपने या दूसरे के द्रव्य प्राणों (शरीर के अङ्गा-दिकों) का घात करना सो द्रव्य हिंसा है। इसका पूर्णतया पालन वे साधु ही कर सकते हैं जो वैरागी हैं, जिनके उत्तम क्षमा है,जो समदर्शी हैं,जिनको कष्ट दिये जानेपर भी द्वेष नहीं होता है, वे पृथ्वी देखकर चलते हैं, सब तरह की घास आदि को भी कष्ट नहीं पहुंचाते हैं। गृहस्थी लोग "इस आदर्श पर पहुंचना चाहिये' ऐसा ध्यान में रखकर यथाशक्ति अहिंसा का अभ्यास करते हैं। वे अपनी २ पदवी में रहकर उस पदवी के योग्य कार्यों में बाधा न आवे, ऐसा ध्यान में रखकर वर्तन करते हैं । इस भेद को समझने के लिये हिंसा के निम्न चार भेद हैं :—

१. सङ्कल्पी—(intentional) जो हिंसा के ही इरादे से की जावे । जो मांसाहार के लिये व धर्म के नाम से या शौकसे पशु मारतेहैं वे संकल्पी हिंसा करतेहैं। जैसे शिकार खेलना, पशुको बलि देना, कसाईखाने में वध करना ।

२. उद्यमी—जो क्षत्री, वैश्य, शूद्र के असि (राज्य व

देशरक्षा, मसि (लिखना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्या कर्म में होती है।

३. आरम्भी—जो गृहस्थ में मकान आदि बनवाने, खान-पानादि के व्यवहार में होती है।

४. विरोधी—किसी विरोधी शत्रु के साथ मुकाबला करते हुए जो हिंसा हो।

इनमें से गृहस्थ जैन को संकल्पी हिंसा छोड़नी आवश्यक है। शेष तीन प्रकार की हिंसा तब तक त्याग नहीं कर सकता, जबतक गृहकर्म में लीन है. राज्य करता है, व्यापार करता है, कारीगरी करता है, स्त्री बच्चों व धनकी रक्षा करता है, बिना न्यायरूप प्रयोजन के व अत्यन्त लाचारी के युद्धादि क्रिया जैन गृहस्थ नही करते हैं अर्थात् न्याय व अपने देश धनादि के रक्षार्थ जैन गृहस्थ युद्धादि कर सकते हैं।

इस कथनसे पाठकगण समझ सकते है कि जैन मत (impractical) ऐसा नही है जो पाला न जासके। इसको सर्व ही नीच ऊँच स्थिति के सर्व मनुष्य पाल सकते हैं।

इस जैनधर्म का साहित्य बहुत विस्ताररूपमें है, इसमें हज़ारों प्राकृत व संस्कृतके ग्रंथ हैं। जिनमें प्रायः सर्व ही विषय कहे गयेहैं। राजनीति, व्याकरण,न्याय,गणित, ज्योतिष, दर्शन, काव्य, अलङ्कार, मंत्रवाद, कर्मकांड, अध्यात्म आदि अनेक विषयों के बहुत से ग्रंथ हैं। साधारणतया जैनधर्म का ज्ञान

होने के लिये ग्रंथों के निम्न चार भाग बताए हैं। इन को चार वेद भी कहते हैं —

१. प्रथमानुयोग—इस विभाग में उन महान् पुरुषों व स्त्रियों के जीवनचरित्र है, जिन्होंने आत्मकल्याण किया था व जो आगे करेंगे। इस कल्पमें इस भरतक्षेत्र में ६३ महा-पुरुष होचुके है। उनका संक्षिप्त वर्णन हमने इस पुस्तक में दे दिया है। इन्हीं में श्री ऋषभदेव, श्री अरिष्टनेमि, श्रीपार्श्व, श्री महावीर, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि गर्भित है। विस्तार से जानने के लिये महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण आदि देखने योग्य हैं।

२. करणानुयोग—इस विभागमें इस विश्वका नक़शा व माप व विभाग वर्णित है। स्वर्ग, नर्क कहां हैं? मध्यलोक कहां है? वहां क्या २ रचना रहा करती है? इस सम्बन्धका वर्णन देखने के लिये त्रिलोकसार ग्रन्थ, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि पढ़ने योग्य है।

३. चरणानुयोग—इस में यह कथन है कि गृहस्थ व गृहत्यागी साधु को क्या २ धर्माचरण पालना चाहियें। इस का दर्शन इस पुस्तक में आवश्यकतानुसार कराया गया है। विशेष जानने वालों को मूलाचार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, चारित्रसार, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय आदि ग्रन्थ देखने चाहियें।

४. द्रव्यानुयोग—इस में सर्व तत्त्वज्ञान है व अध्यात्म-

कथन है, जैन लोग इस जगतको जिन छः मूल द्रव्योंका समुदाय मानते हैं, उन्हीं का विवेचन है। वे छः द्रव्य—[१] जीव (Soul), [२] पुद्गल (matter), [३] धर्मास्तिकाय (medium of motion), [४] अधर्मास्तिकाय (medium of rest), [५] आकाश (space), [६] काल (time) । जीव और पुद्गल का मेल तो संसार है। इन दोनोंका पृथक होना सो मोक्ष है। पुद्गल जीव के साथ कैसे मिलता है व छूटता है। इस कथन को बताने के लिए जैन दर्शन ने निम्न सात तत्व गिनाए हैं :—जीव (soul), अजीव (not soul), पुद्गल का आना (inflow of matter into soul), बन्ध (पुद्गलका बंधना bondage of matter with soul), संवर (पुद्गल का आते हुए रुकना check of inflow), निर्जरा (पुद्गल का जीव से छूटना shedding off of matter), मोक्ष (स्वतन्त्रता total Liberation from matter) ।

इन सात तत्वोंके विवेचन में सर्व जैनसिद्धांत आजाता है। इस पुस्तक में छः द्रव्य और सात तत्वों का जानने योग्य वर्णन किया है। विशेष जानने के लिये द्रव्यसंग्रह, तत्वार्थसूत्र, सर्वार्थसिद्धि, गोम्मट्टसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, परमात्माप्रकाश, समाधिशतक, इष्टोपदेश, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थ देखने योग्य हैं।

जिन पाश्चिमात्य विद्वानों ने थोडा भी जैनमतको और मतों से मुक़ाबला करते हुए पढ़ा है, उन्होंने इसके सम्बन्ध में अपने उच्च विचार प्रकट किये हैं।

पेरिस (फ्रांस) के बहुत उच्च-कोटि के विद्वान् डाक्टर ए० गिरिनाट (Dr. A. Guernot) साहब ता० ३ दिसम्बर १९११ के पत्र में कहते हैं:—

Concerning the antiquity of Jainism comparatively to Budhism, the former is truly more ancient than the latter. There is very great ethical value in Jainism for men's improvement. Jainism is a very original, independent and systematical doctrine

भावार्थ—बौद्धसे जैनकी प्राचीनताका मुक़ाबला करते हुए कहते हैं कि ठीक है कि जैनमत बौद्ध से वास्तव में बहुत प्राचीन है। मानवसमाजकी उन्नतिके लिये जैनमतमें सदाचार का बहुत बड़ा मूल्य है। जैन दर्शन बहुत ही असली, स्वतंत्र और नियमित सिद्धान्त है।

जर्मनी के महान् विद्वान डाक्टरजाहंसहर्टेल एम० ए० (Johannes Hertel M. A. Ph D.) ता० १७ जून सन् १९०८ के पत्र में कहते हैं—

I would show my countrymen what noble principle and lofty thoughts are in Jain Religion and in Jain writings, Jain literature is by far superior to that of, Budhists and the mor

I became acquainted with Jain religion and Jain literature the more I loved them.

भावार्थ—मैं अपने देशवासियों को दिखलाऊँगा कि कैसे उत्तम तत्त्व और ऊँचे विचार जैनधर्म और जैनलेखकों में है। जैनसाहित्य बौद्धों की अपेक्षा बहुत ही बढ़िया है। मैं जितना २ अधिक जैनधर्म व जैनसाहित्य का ज्ञान प्राप्त करता जाता हूँ, उतना २ ही मैं उनको अधिक प्यार करता हूँ।

वैरिस्टर चम्पतराय हरदोईको जर्मनीके डाक्टर जूलियस Dr. Juillius Ph. D. of Germany अपने पत्र ११ सितम्बर में लिखते हैं—

It is to be desired that the importance of Jainism should be universally recognised in western scholars.

भावार्थ—इस बात की ज़रूरत है कि जैनधर्मकी उपयोगिता पश्चिमके विद्वानों में सर्वथा मान्य की जावे।

उक्त वैरिष्टर साहब को २२ सितम्बर सन् १९२४ को जर्मनके दूसरे विद्वान् हैनरिच ज़िम्मर (Heinrich Zimmer) साहब लिखते हैं कि—

It is quite impressive to realise what peculiar Position Jainism occupies among them (religions) all.,

भावार्थ—इस बातका अनुभव करना बिल्कुल चित्तको असर करता है कि सर्व धर्मों में जैनधर्म कैसा विशेष स्थान धारण कर रहा है।

इस ग्रन्थके लिखने में नीचे लिखे जैनग्रन्थों से प्रमाणिकता ली गई है:—

श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (वि० सं० ४९) प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार, द्वादशानुप्रेक्षा।

श्री उमास्वामी कृत (वि० सं० ८१) तत्त्वार्थ सूत्र।

श्री समन्तभद्राचार्य कृत (द्वि० शताब्दि में) आप्त-मीमांसा, स्वयम्भूस्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

श्री वट्केर स्वामी कृत (प्राचीन) मूलाचार।

श्री योगेन्द्राचार्यकृत (प्राचीन) योगसार।

श्री पूज्यपाद स्वामीकृत (तृ० श०) सर्वार्थसिद्धि, समाधिशतक।

श्री विद्यानन्द स्वामीकृत (८वीं श०) पात्र केशरी स्तोत्र।

श्री जिनसेनाचार्यकृत (९वीं श०) महापुराण।

श्री गुणभद्राचार्यकृत (९वीं श०) उत्तर पुराण।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीकृत (१० वीं श०) द्रव्य संग्रह, गोमटसार, त्रिलोकसार।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कृत (१०वीं श०) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार।

श्री असग कवि कृत (१०वीं श०) महावीर चरित्र।

श्री वादीभचन्द्रकृत (९वीं श०) क्षत्र चूड़ामणि।

श्री सकल कीर्ति कृत (१४वीं श०) धन्यकुमार चरित्र।

श्री शुभ चन्द्र कृत (१७वीं श०) श्रेणिक चरित्र।

पाँडे राजमल्ल कृत (१७वीं श०) पंचाध्यायी।

——:o:——

ॐ

* जैनधर्म प्रकाश *

दोहा

ऋषभ आदि महावीरलों चौबीसो जिनराय ।
विघ्नहरण मंगल करण वंदो मन वच काय ॥ १ ॥

१. जैनधर्म का उद्देश्य ।

जैनधर्म का उद्देश्य अर्थात् प्रयोजन † संसारी आत्मा के पाप पुण्य रूपी कर्म मैल को धोकर उस को संसार के जन्म मरणादि दुःखों से मुक्त कर स्वाधीन परमानन्द में पहुँचा देना है. जिस से यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म पद में सदाकाल के लिए स्थिर हो जावे, यह मुख्य उद्देश्य है और गौण उद्देश्य क्षमा, ब्रह्मचर्य, परोपकार, अहिंसा आदि गुणों के द्वारा सुख प्राप्त करना है ।

† देशयामि समीचीनम् धर्मं कर्म निवर्हणम् ।
संसार दुःखतः सत्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ (र०क०श्रा०)
भावार्थ—जो संसार के दुःखों से जीवों को छुड़ाकर उत्तम सुख में धरे ऐसे कर्म-नाशक समीचीन धर्म का उपदेश करता हूँ ।

२. यह जगत अनादि अनंत है।

जगत कोई एक विशेष भिन्न पदार्थ नहीं है, किन्तु चेतन और अचेतन वस्तुओं का समुदाय है। जैसे वन वृक्षों के समूह को, भीड़ मनुष्यों के समूह को, सेना हाथी घोड़े रथ पयादों के समूह को कहते हैं, वैसे ही यह जगत या लोक पदार्थों के समुदाय का नाम है। यह बात बालगोपाल सब जानते हैं कि जो वस्तु बनती है वह किसी वस्तु से बनती है व जो वस्तु नाश होती है वह किसी अन्यवस्तु के रूप में परिवर्तित होजाती है। अकस्मात् बिना किसी उपादान कारण के न कोई वस्तु बनती है, न कोई नष्ट होकर सर्वथा अभावरूप होजाती है। दूधसे घी खोया मलाई बनती है; कपड़े को जलाने से राख बनजाती है; मिट्टी, चूना, पत्थरोंके मिलने से मकान बनजाता है, मकान को तोड़ने से मिट्टी लकड़ी आदि पदार्थ अलग २ होजाते हैं। यह सृष्टि का एक अटल और पक्का नियम है कि सत् का सर्वथा नाश और असत् का उत्पाद कभी नहीं हो सक्ता; अर्थात् जो मूल पदार्थ जड़ या चेतन हैं उनका सर्वथा नाश नहीं होता है, तथा जो मूल पदार्थ नहीं हैं वे कभी पैदा नहीं हो सक्ते हैं। सायंस या विज्ञान भी यही मत रखता है।

किसी वस्तु का नाश नहीं होता है। यह जगत परिवर्तनशील है, अर्थात् इसके भीतर जो चेतन और जड द्रव्य हैं वे सदा अवस्थाओं को बदलते रहते हैं। अवस्थाएं जन्मतीं और बिगड़ती हैं; मूल द्रव्य नहीं। इसलिए यह लोक सदा से है व सदा चला जायगा तथा अकृत्रिम भी है, क्योंकि जो वस्तु

आदि सहित होती है उसी के लिए कर्ता की आवश्यकता है। अनादि पदार्थ के लिए कर्ता हो नहीं सकता। यह जगत स्वभाव ‡ से सिद्ध है अर्थात् इसके सब पदार्थ अपने स्वभाव से काम करते रहते हैं।

हरएक कार्यके लिए दो मुख्य कारण होतेहैं—एक उपादान, दूसरा निमित्त। जो मूल कारण स्वयं कार्यरूप हो जाता है उसे उपादान कारण कहते हैं: उसके कार्य रूप होने में एक व अनेक जो सहायक होते हैं उन को निमित्त कारण कहते हैं। जैसे पानी से भाफ का बनना, इसमें पानी उपादान तथा अग्नि आदि निमित्त कारण हैं। जगत में आग, पानी, हवा, मिट्टी एक दूसरे को विना पुरुषार्थ के अपने अपने परिणमनों के अनुसार निमित्त होकर बहुतसे कार्योंमें बदल जाते हैं। पानी बरसना, बहना, मिट्टीका बहजाना, कहीं जमकर पृथ्वी बनना बादलों का बनना, सूर्य का प्रकाशताप फैलना, दिन रात होना, ये सब जड़ पदार्थों का विकास है। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध चिन्तवन में नहीं आ सकता, न जाने कौन पदार्थ अपनी परिस्थिति के वश विकास करता हुआ किस के किस विकास का निमित्ति हो रहा है। ऐसे असंख्य परिणाम प्रतिक्षण हो रहे हैं।

---

‡ लोओ अकिट्टिमो खलु अणाइ णिहणो सहाव णिप्पण्णो।
जीवा जीवेहिं भरोणिच्चो तालरूक्ख संठाणो ॥ २२ ॥

—मूलाचार अ० ८

अर्थ—यह लोक अकृत्रिम है, अनादि अनन्त है। स्वभाव से ही अपने आप बना बनाया है, जीव अजीव पदार्थों से भरा है, नित्य है और ताड़ वृक्षके आकार है।

बहुत से कामों में चेतन जीव भी निमित्त होते हैं, जैसे चिडियों से घोंसले का बनना, आदमी से मकान बनना, कपड़ा बनना आदि, तथा कही चेतन कार्यों में भी जड पदार्थ निमित्त बन जाता है, जैसे अज्ञानी होने में भांग या मद्य आदि। इस जगत में सदा ही काम होता रहता है। ऐसा नहीं है कि कभी परमाणु रूपसे दीर्घ काल तक पडा रहे और फिर बने। जहां जल और ताप का सम्बन्ध होगा, वहां जल शुष्क हो भाफ बनेहीगा। कहीं कभी कोई बस्ती ऊजड़ होजाती है, कहीं कभी ऊजड़ क्षेत्र बस्ती होजाता है। सर्व जगत मे कभी महा प्रलय नही होती। किसी थोड़े से क्षेत्र में पवनादि की तीव्रता से प्रलय की अवस्था कुछ काल के लिए होती है, फिर कही बस्ती जमने लगती है। यों सूक्ष्मता से देखा जाय तो सृष्टि और प्रलय सर्वदा होते रहते हैं। इस तरह यह जगत अनादि होकर अनन्तकाल तक चला जायगा।

३. जैनधर्म अनादि अनन्त है

जैनधर्म इस जगत में कहीं न कही सदा ही पाया जाता है। यह किसी विशेष काल में शुरू नहीं हुआ है। जम्बूद्वीप‡ के विदेह क्षेत्र में (जिसका अभी वर्तमान भूगोल-ज्ञाताओ को पता नहीं लगा है) यह धर्म सदा जारी रहता है। वहाँ से महान् पुरुष सदा ही देह से रहित हो मुक्त होते हैं। इसी कारण उस क्षेत्रको विदेह कहते हैं। इस भरतक्षेत्र में भी यह धर्म, प्रवाह की अपेक्षा अनादिकाल से है।

---

‡ जम्बूद्वीप व विदेह का वर्णन जगत की रचना में मिलेगा।

यद्यपि किसी कालमें कुछ समय के लिए लुप्त हो जात है, तो भी फिर तीर्थंकरों या मोक्षगामी केवलज्ञानी महान आत्माओंके द्वारा प्रकाश किया जाता है। जब यह धर्म आत्म के शुद्ध करने का उपाय है तब जैसे आत्मा और अनात्म अर्थात् चेतन और जड से भरा हुआ यह जगत अनादि अनंत है, वैसे ही आत्मा की शुद्धि का उपाय यह धर्म भी अनादि अनंत है। जगत में धान्य और धान्य की तुष रहित शुद्ध अवस्था चावल तथा धान्य का शुद्ध होने का उपाय तीनो ही अनादि हैं। इसी तरह ससारी आत्मा परमात्मा और परमात्मपद्की प्राप्ति की उपायें भी अनादि हैं।

४. ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म की प्राचीनता

जैसा पहिले बताया गया है, यह जैनधर्म अनादि का से चला आ रहा है। हम यदि वर्तमान खोजे हुए इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि जहां तक भारतकी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहाँ तक जैनधर्म पाया जाता है। इस बात के प्रमाण इस पुस्तक में नमूने के रूप में निम्न लिखित एक दो ही दिये जाते हैं, जिससे पुस्तक बहुत बड़ी न हो जावे :—

मेजर जेनरल फर्लांग साहब (Major General J G. R. Furlong) अपनी पुस्तक "In his short studies of Comparative religions P. P. 243-4" में कहते हैं :—

All upper, Western, North & Central India was, then say, 1500 to 800 B C and indeed from unknown times, ruled by Turanians, Conveniently called Dravids, and given to tree, serpent and the like worship............but there also existed through out Upper India an ancient and highly organised religion, philosophical, ethical and severely ascetical viz Jainism

भावार्थ—सन् ई० से ८०० से १५०० वर्ष पहिले तक तथा वास्तव मे अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूरानी या द्राविड़ लोगों द्वारा शाषित था, जो वृक्ष सर्प आदि की पूजा करते थे; किन्तु तवही ऊपरी भारत में एक प्राचीन उत्तम रीति से गँठा हुआ धर्म तत्वज्ञान से पूर्ण सदाचार रूप तथा कठिन तपस्या सहित धर्म अर्थात् जैनधर्म मौजूद था।

इस पुस्तक में ग्रन्थकार ने जैनों के ऐसे भावों का पता अन्य देशों में प्राप्त भावों में पाया; जैसे ग्रीक आदिकों में। उसी से इनका अस्तित्व वहुत पहिले से सिद्ध किया है। दुनियाँ के वहुतसे धर्मों पर जैनधर्म का असर पड़ा है, ऐसा बताया है।

एक अजैन विद्वान् लाला कन्नोमल थियोसोफिस्ट पत्र मास दिसम्बर १९०४ और जनवरी १९०५ में लिखते हैं "जैन धर्म एक ऐसा प्राचीन मत है कि जिस की उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना बहुत ही दुर्लभ बात है"

५. हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में जैनों का संकेत

आज कल के इतिहासकार ऋग्वेद यजुर्वेद आदि को प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। उनमें भी जैन तीर्थंकरों का वर्णन है।

जैनियों के २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का नाम नीचे के मन्त्रों में है :—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिः नः पूषा विश्व वेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो वृहस्पति- र्दधातु॥ (ऋग्वेद अ० १ अ० ६ वर्ग १६ दयानंद भाष्य मुद्रित)

भावार्थ–महा कीर्तिवान इन्द्र विश्ववेत्ता पूषा. तार्क्ष्य रूप अरिष्टनेमि व वृहस्पति हमारा कल्याण करें।

वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मै स्वाहा॥ (यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र २५)

भावार्थ—भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान का इस संसार के सर्वभूत जीवों के लिये सर्व प्रकार से यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सर्वज्ञ प्रगट करते हैं और जिनके दयामय उप देश से जीवों को आत्म स्वरूप की पुष्टिता शीघ्र बढ़ती है, उसको आहुति हो।

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्व- रूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं नवा ओ जीयो रुद्रत्व- दस्ति॥ (ऋग्वेद अ० २ अ० ७ वर्ग १७)

भावार्थ-हे अर्हन् ! आप वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बाणों को, उपदेश रूपी धनुषको तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किए हो। हे अर्हन्! आप विश्वरूप प्रकाशक केवल-ज्ञान को प्राप्त हो। हे अर्हन् आप इस संसार के सब जीवोंकी रक्षा करते हो। हे कामादि को रुलाने वाले आप के समान कोई बलवान् नहीं है।

नोट—इस मन्त्र में अर्हंत की प्रशंसा है, जो जैनियों के पाँच परमेष्टी में प्रथम है। श्रीनग्न साधु महावीर भगवानका नाम नीचे के मन्त्र में है:—

आतिथ्य रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः। रूप मुपसदा मेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता।

(यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र १४)

योग वासिष्ठ अ० १५ श्लोक ८ में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं:—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शान्ति मास्थातु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

भावार्थ न मैं राम हूँ, न मेरी वांछा पदार्थोंमें है। मैं तो जिन के समान अपने आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूँ।

बाल्मीकि रामायण १४ सर्ग बालकांड श्लोक १२ महाराज दशरथ ने श्रमणों को भोज दिया। श्रमण दि० जैन मुनि को कहते हैं "श्रमणाश्चैव भुञ्जते"

(श्रमणाःदिगम्बराः भूषण टीका)

महाभारत बन पर्व अ० १८३ पृ० ७२७ (छपी १६०७ सरत चन्द सोम)

हैहय वंशी काश्यप गोत्री आदि सब ने महाव्रत धारी महात्मा अरिष्टनेमि मुनि को प्रणाम किया।

नोट—यहां २२ व तीर्थङ्कर का संकेत है, जिनका नाम ऊपर वेद के मन्त्रों में आया है।

मार्कंडेय पुराण अ० ५३ में—ऋषभदेव ने भरत-पुत्र को राजदे वनमें जाकर महा संन्यास ले लिया।

नोट—यहां जैनियोंके प्रथम तीर्थंकरका वर्णन है।

भागवत के स्कन्ध ५ अ०२ पृ०३६६—७ मे जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेवको महर्षि लिखकर उनके उपदेशकी बहुत प्रशंसा लिखी है। भागवत के टीकाकार लाला शालिग्राम जी पृष्ठ ३७२ मे इस प्रश्न के उत्तर में कि "शुकदेवजी ने ऋषभदेव को क्यों प्रणाम किया" लिखते है—"ऋषभदेवजी ने जगतको मोक्ष मार्ग दिखाया और अपने आपभी मोक्ष होने के कर्म किए, इसीलिए शुकदेव जी ने ऋषभदेव को नमस्कार किया है"।

६. जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं है।

जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा नहीं हो सकता है। क्योंकि जो जिसकी शाखा होता है उसका मूल भी वही होता है। जो हिन्दू कर्तावादी हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि जगत अनादि अकृत्रिम है, उसका कर्ता ईश्वर नहीं है। जो हिन्दू एक ही ब्रह्ममय जगत मानते है उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि लोक में अनन्त परब्रह्म परमात्मा, अनन्त संसारी आत्मा, पुद्गल आदि जड़ पदार्थ, ये सब भिन्न है। कोई किसी का खंड नहीं। जो हिन्दू आत्मा या पुरुष को कूटस्थ नित्य या अपरिणामी मानते है उनसे विरुद्ध जैनधर्म कहता है कि आत्मायें

स्वभाव न त्यागते हुए भी परिणमन शील है, तब ही राग द्वेष भावों को छोड़ वीतराग हो सकती हैं। जैन लोग उन ऋग्वे-दादि वेदों को नहीं मानते, जिनको हिन्दू लोग अपना धर्मशास्त्र मानते हैं। प्रोफ़ैसर जैकोबी ने आक्सफोर्ड में जैनधर्म को हिन्दू धर्मों से मुकाबला करते हुए कहा है—"जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र है। मेरा विश्वास है कि यह किसी का अनुकरण रूप नहीं है और इसीलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धर्म-पद्धति के अध्ययन करने वालों के लिए यह एक महत्व की वस्तु है। (देखो पृष्ठ १४१ गुजराती जैन दर्शन प्रकाशक अधिपति "जैन", भावनगर।)

७. जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है।

बौद्धधर्म पदार्थ को नित्य नहीं मानता है: आत्मा को क्षणिक मानता है, जब कि जैनधर्म आत्मा को द्रव्य की अपेक्षा नित्य, किंतु अवस्था की अपेक्षा अनित्य मानता है। जैनधर्ममें जो छः द्रव्य हैं, उनकी बौद्धोंके यहाँ मान्यता नहीं है। इसके विरुद्ध बौद्ध जैनधर्म की नकल ज़रूर है। पहले स्वयं गौतम बुद्ध जैन मुनि पिहिताश्रव का शिष्य-साधु हुआ। फिर उसने 'मृतक प्राणीमें जीव नहीं होता" ऐसी शङ्का होने पर अपना भिन्न मत स्थापन किया। (देखो जैन दर्शन सार, देवनन्दि कृत)

प्रोफैसर जैकोबी भी कहते हैं :—

"The Budhist frequently refer to the Nigranthas or Jains as a rival sect, but they never, so much as hint this sect was a newly founded one On the contrary, from the way in which

they speak of it, it would seem that this sect of Nigranthas was at Budhas time already one of long standing, or in other words, it seems proba-ble that Jainism is considerably older than Budhism.

(देखो पृष्ठ ४२ गुजराती जैन दर्शन)

भावार्थ—बौद्धों ने बार २ निर्ग्रंथ या जैनियोंको अपना मुक़ाबिला करने वाला कहा है, परन्तु वे किसी स्थल पर कभी भी यह नही कहते कि यह एक नया स्थापित मत है । इसके विरुद्ध जिस तरह वे वर्णन करते हैं उससे प्रकट होगा कि निर्ग्र-न्थोंका धर्म बुद्धके समय में दीर्घकाल से मौजूद था· अर्थात् यही संभव है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से बहुत अधिक पुराना है । जैकोबीने आस्रव शब्द को बौद्ध ग्रथोंमें पाप के अर्थमें देख कर तथा जैनग्रन्थों में जिससे कर्म आते है व जो कर्म आत्मा में आता है ऐसे असली अर्थ में देखकर यह निश्चय किया है कि जहां आस्रव के मूल अर्थ हैं वही धर्म प्राचीन है ।

Dr Ry Davids डा० राइ डेविड्स ने "Budhist India P. 143" में लिखा है कि—

"The Jains have remained as an organised Community all through the history of India from before the rise of Budhism down to day"

भावार्थ—जैनलोग भारतके इतिहासमें बौद्धधर्मके बहुत पहिले से अबतक एक सङ्गठित जातिरूपमें चले आरहे हैं ।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक केशरी पत्रमे १३ दिस-म्बर १९०४ में लिखते है कि—

बौद्धधर्म की स्थापनाके पूर्व जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। बौद्धधर्म पीछे से हुआ, यह बात निश्चित है।

हंटर साहिब अपनी पुस्तक इन्डियन इम्पायर के पृष्ठ २०६ पर लिखते हैं कि—

जैनमत बौद्धमत से पहिले का है। ओल्डनवर्ग ने पाली पुस्तकों को देखकर यह बात कही है कि जैन और निर्ग्रन्थ एक है। इनके रहते हुए बाद में बौद्धमत उत्पन्न हुआ।

(See Budha's life and Haey's translation 1884)

जैनधर्म इतना ही बौद्धमत से भी भिन्न है जितना भिन्न कि हम उसे किसी भी और मत से कह सकते हैं :—

८. बौद्धों के ग्रंथों में जैनों का संकेत

"ऐतिहासिकखोज" (Historical Gleanings) नाम की पुस्तक में, जिसको बाबू विमल चरण ला एम ए. बी. एल. न० २४ सुकिया स्ट्रीट कलकत्ता ने सन् १६२२ में सम्पादन कर प्रकाशित कराया है, इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण लिखे हैं। जिनमें से कुछ यहां नीचे दिये जाते हैं :—

(१) गौत्तमबुद्ध राजग्रही में निर्ग्रंथ नातपुत्र (श्री महावीर) के शिष्य चूलसकुल दादी से मिले थे।

[मज्झमनिकाय अ० २]

(२) श्री महावीर गौतमबुद्ध से प्रथम निर्वाण हुए। [मज्झम निकाय साम् गामसुत व दिग्घनिकाय पातिक सुत्त]

(३) बुद्धने अचेलकों [नग्न दिगम्बर साधुओं] का वर्णन लिखा है।

[दिग्घनिकाय का कस्सप सिंह नादे]

(४) निग्रंथ श्रावकों का देवता निग्रन्थ है "निगन्थ सावकानाम् निगन्थो देवता:"

[पाली त्रिपितक निद्देश पत्र १७३-४]

(५) महावीर स्वामी ने कहा है कि शीत जलमें जीव होते हैं "सो किर शीतादके सत संज्ञा होंति"

[सुमंगल विलासिनी पत्र १६८]

(६) राजग्रही में एक दफ़े बुद्ध ने महानम को कहा कि "इसिगिली [ऋषिगिरि स०] के तट पर कुछ निर्ग्रंथ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे। तब मैंने उनसे पूछा—क्यों ऐसा करते हो? उन्होंने जवाब दिया कि उनके नाथपुत्र ने जो सर्वज्ञ व सर्वदर्शी है उनसे कहा है कि पूर्वजन्म में उन्होंने बहुत पाप किए हैं, उन्हीं के क्षय करने के लिए वे मन वचन काय का निरोध कर रहे हैं"।

[मज्झमनिकाय जिल्द १ पत्र ९२-९३]

(७) लिच्छवों का सेनापति सीह निर्ग्रंथ नातपुत्र का शिष्य था। [विनय पितक का महावग्ग]

(८) निर्ग्रंथ मनधारी राजा के ख़ज़ांची के वंश में भद्रा को, श्रावस्ती के मन्त्री के वन्श में अर्जुन को, बिम्बसार के पुत्र अभय को, श्रावस्ती के सश्रीगुप्त और गरहदिन्न को बुद्धने बौद्ध बनाया। (धम्मपाल कृत प्रमथदीपिनी व धम्मपदत्थ कथा जि० १)

(९) धनञ्जय सेठी की पुत्री विशाखा जो निर्ग्रंथ मिगार सेठी के पुत्र पुराणवर्द्धक को विवाही गई थी। श्रावस्ती में मिगार श्रेष्ठीने ५०० नग्न साधुओं को आहार दान दिया।

(विसाखावत्थु धम्मद् कथा जि० १)

६. जैनों की मूल मान्यताएँ

(१) यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है। चेतन अचेतन छः द्रव्यों से भरा है। अनन्तानन्त जीव भिन्न २ हैं। अनंतानन्त परमाणु जड़ हैं।

(२) लोक के सर्वही द्रव्य स्वभाव से नित्य हैं, परन्तु अवस्था को बदलने की अपेक्षा अनित्य हैं।

(३) संसारी जीव प्रवाह की अपेक्षा अनादि से जड़, .ाप पुण्य मई कर्मों के शरीर से संयोग पाये हुए, अशुद्ध हैं।

(४) हर एक संसारी जीव स्वतन्त्रता से अपने अशुद्ध भावों द्वारा कर्म बांधता है और वही अपने शुद्धभावो ने कर्मों का नाश कर मुक्त हो सकता है।

(५) जैसे स्थूल शरीर में लिया हुआ भोजन पान स्वयं रस रुधिर वीर्य बन कर अपने फल को दिया करता है, ऐसे ही पाप पुण्य मई सूक्ष्म शरीर में पाप पुण्य स्वयं फल प्रकट करके आत्मा में क्रोधादि व दुःख सुख झलकाया करता है। कोई परमात्मा किसी को दुःख सुख देता नहीं।

(६) मुक्तजीव या परमात्मा अनन्त हैं। उन सबकी सत्ता भिन्न २ है। कोई किसी में मिलता नहीं। सब ही नित्य स्वात्मानन्द का भोग किया करते हैं। तथा फिर कभी संसार अवस्था में आते नहीं।

(७) साधक गृहस्थ या साधु जन मुक्तप्राप्त परमात्माओंकी भक्ति व आराधना अपने परिणामोकी शुद्धिके लिए करते हैं। उनको प्रसन्नकर उनसे फल पानेके लिए नहीं।

(८) मुक्ति का साक्षात् साधन अपने ही आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध गुण वाला जान कर—श्रद्धान कर—और सर्व प्रकार का राग द्वेष मोह त्याग कर उसी का ध्यान करना है। राग द्वेष मोहसे कर्म बधते हैं। इसके विपरीत वीत-राग भावमयी आत्मसमाधि से कर्म झड़ (नाश हो) जाते हैं।

(९) अहिंसा परम धर्म है। साधु इसको पूर्णता से पालते हैं। गृहस्थ यथाशक्ति अपने २ पद के अनुसार पालते हैं। धर्म के नाम पर, मांसाहार, शिकार, शौक आदि व्यर्थ कार्यों के लिये जीवों की हत्या नही करते हैं।

(१०) भोजन शुद्ध, ताज़ा, मांस मदिरा मधु रहित व पानी छना हुआ लेना उचित है।

(११) क्रोध, मान, माया, लोभ, यह चार आत्मा के शत्रु हैं: इससे इनका संहार करना चाहिए।

(१२) साधुके नित्य छः कर्म ये हैं—सामायिक या ध्यान, प्रतिक्रमण [पिछले दोषो की निन्दा], प्रत्याख्यान [आगामी के लिए दोष त्याग की भावना], स्तुति, वंदना, कायोत्सर्ग [शरीर की ममता त्यागना]।

(१३) गृहस्थों के नित्य छः कर्म ये हैं—देव पूजा, गुरुभक्ति, शास्त्र पठन संयम, तप और दान।

(१४) साधु नग्न होते हैं: वे परिग्रह व आरंभ नहीं रखते। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, परिग्रह-त्याग इन पाँच महाव्रतों को पूर्ण रूप से पालते हैं।

(१५) गृहस्थो के आठ मूलगुण ये हैं:—मदिरा, माँस, मधु का त्याग, तथा एक देश यथाशक्ति अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह-प्रमाण, इन पांच अणुव्रतों का पालना।

०. वेदान्तादि अजैन मतों की मान्यताएं और उनका जैनियों की मान्यताओं से अन्तर

(१) वेदान्त मत—इस मतका सिद्धांतहै कि यह दृश्य-जगत व दर्शक दोनो एक है। ब्रह्मरूप जगत हैं। ब्रह्म ही से पैदा हुआ है और ब्रह्म ही में लय हो जायेगा। (देखो वेदान्तदर्पण व्यास कृत, भाषा प्रभुदयाल, छपा वेंकटेश्वर सं० १६५६)

ब्रह्म का लक्षण है "जन्माद्यस्य यत इति"

(सूत्र २ अ० २)

भावार्थ—जन्म स्थिति नाश उससे होना है।

"नित्यस्सर्वज्ञस्सर्वगतो नित्यतृप्त शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावो विज्ञानमानन्द ब्रह्म (पृ० ३०)

भावार्थ—ब्रह्म नित्य है, सर्वज्ञ है, सर्व व्यापी है सदा तृप्त हैं, शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव है। विज्ञानमयी है,आनन्दमई है।

"आकाशस्तल्लिंगात्" (सूत्र २२ अ०१)

भावार्थ—आकाश ब्रह्म है-ब्रह्म का चिन्ह होने से।

"द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्" (१ पाद ३)

भावार्थ—पृथ्वी जिस के आदि में है, ऐसे जगत का आयतन है—आत्म-वाचक शब्द होने से।

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" (वेदान्त परिभाषा परि० ७)

भावार्थ—यह जीव कार्य रूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि ईश्वर है।

जैन सिद्धान्त मुक्तात्मा को परंब्रह्म, जगत का अकर्त्ता व संसार से भिन्न मानताहै। जीवों की सत्ता भिन्न अनंत स्व-

तंत्र व परमाणु आदि अचेतनकी सत्ता भिन्न मानना है। अद्वैत रूप एक ब्रह्म मानने मे यह दोष देता है।

"कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्या विद्या द्वयं न स्यात् बध मोक्ष द्वयं तथा ॥२५॥"

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ–यदि ब्रह्म नित्य व तृप्त है, तब उससे कोई कार्य नही होसक्ता, यदि कार्यहो तो विरोधी पदार्थ नहीं बन सक्ते, अर्थात् शुभ, अशुभकर्म, सुख दुःखरूप फल, यह लोक परलोक, विद्या अविद्या, बंध व मोक्ष कुछ नही हो सकते। आनन्दमय होने से उसमें मैं अनेक रूप हो जाऊँ, यह भाव नहीं होसक्ता। दो वस्तु होने से ही परस्पर बंध व उनका छूटना या मुक्त होना बन सक्ता है—एक ही शुद्ध पदार्थ मे असम्भव है।

(२) सांख्य दर्शन और (३) पातञ्जलि दर्शन—

इनके दो भेद हैं। एक वे, जो ईश्वर की सत्ता नही मानते हैं: आत्माको निर्लेप अकर्ता व जड प्रकृति को ही कर्ता मानते हैं: अहंकार, शान्ति, बुद्धि आदि आत्मिक भावों को भी सत्त्व रज, तम तीन प्रकृतिके विकार मानते है, परन्तु फल भोक्ता आत्मा को मानते हैं। (देखो सांख्य दर्शन कपिल छपा सं० १६५७)

"अकर्तुरपि फलोपभोगो अन्नादि वत्" (१०५ अ० १)

भावार्थ–अकर्ता पुरुष है तो भी फल भोगता है. जैसे किसान अन्न पैदा करता है राजा भोगता है।

"अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः" (५४ अ० ६)

अहंकार जो प्रकृति का विकार है वह कर्ता है आत्मा कर्ता नही है।

"नानन्दाभिव्यक्तिमुक्तिर्निर्धर्मत्वात्" (७४ अ० ५)

भावार्थ-आत्मा में आनन्द धर्म नहीं है, इससे आनन्द की प्रगटता मोक्ष नहीं है।

जो ईश्वरको भी मानते हैं ऐसे पातञ्जलि-मान्य सांख्य ईश्वर को ऐसा कहते हैं कि—

"परमेश्वरः क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष स्वेच्छया निर्माणकायमधिष्ठाय लौकिक वैदिक सम्प्रदाय प्रवर्तकः संसारांगारतप्यमानानां प्राणभृतामनुग्राहकश्च"

(सर्व दर्शन संग्रह पृ० २५५)

भावार्थ—परमेश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय से स्पृष्ट नही होता। वह स्वेच्छा से निर्माण शरीर में अधिष्ठान कर के लौकिक और वैदिक सम्प्रदाय की वर्तना करता है; एवं संसाररूप अङ्गार से तप्यमान प्राणीगण के प्रति अनुग्रह वितरण करता है।

दोनों ही आत्मा को अपरिणामी मानते हैं—

" पुरुषस्यापरिणामित्वात् "

(१८ पाद ४ योग दर्शन पातञ्जलि १९०७ में छपा)।

जैनसिद्धान्त कहता है कि यदि आत्मा अपरिणामी अर्थात् कूटस्थनित्य हो व कर्ता न हो तो उसके संसार व मोक्ष नहीं हो सकता तथा जो करेगा वही भोगेगा। किसान खेती करके उस का फल कुटुम्ब-पालन भोगता है। राजा किसानों की रक्षा करके उसका फल राज्य-सुख पाता है। जड़ पदार्थ में शांति व क्रोधादि भाव नहीं हो सकते। ये सब चेतन के ही भाव हैं। जो शुद्ध ईश्वर आशय रहित है उसमें शरीर धार कर कृपा करने का भाव नही हो सकता है। कहा है—

नित्यत्वैकान्त पक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभावः क्वप्रमाणं क्वतत्फलम् ॥ ३७ ॥
[आप्तमीमांसा]

भावार्थ—यदि सर्वथा नित्य माना जायगा तो उसमें विकार नहीं हो सकते । तव कर्ता पना आदि कारक न होंगे, न उसमें यथार्थ ज्ञान होगा, न उसका फल होगा कि यह त्यागो और यह ग्रहण करो । जैन दर्शन ईश्वर को सदा आनन्दमय और परका अकर्ता मानता है । जीव ही स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वय ही मुक्त होते हैं, किसी ईश्वर की कृपा से नहीं ।

(४) नैयायिकदर्शन और (५) वैशेषिकदर्शन ये दोनों प्रायः एक से हैं । दोनों ईश्वर को कर्मों का फलदाता मानते हैं ।

"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्य दर्शनात्॥ १६ ॥"
[न्यायदर्शन पृ० ४१७ सं० १६४६ में छपा]

भावार्थ—पुरुषों के कर्मों का अफल होना देखने व जानने से ईश्वर कारण है । ईश्वर के आधीन कर्मका फल है ।

' अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख दुःखयो ।
ईश्वरः प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गंवा श्वभ्रमेव वा ॥ ६ ॥"

मुक्तात्मानां विद्येश्व रादीनाञ्च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापिपरमेश्वर पारतंत्र्यात्स्वातंत्र्यंनास्ति ।
[पृ० १३४-१३५ सर्वदर्शन संग्रह] ।

भावार्थ—यह जन्तु अज्ञानी है । इनका सुख दुःख स्वाधीनता रहित है । ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग या नर्क में जाते हैं । मुक्ति प्राप्त जीव व विद्या के ईश्वर शिव रूप है, तथापि परमेश्वर के वश हैं, वे स्वतन्त्र नहीं है ।

अनच्छिन्न सद्भावं वस्तु यद्देशकालतः । तन्नित्यं विभुचेच्छन्तीत्यात्मनो विभु नित्यतेति ॥

[१६ सर्व दर्शन संग्रह पृ० १३६]

भावार्थ—किसी देश व कालमें आत्मा निरोधरूप नहीं है। आत्मा व्यापक है और नित्य है।

"विभवान् महानाकाशस्तथाचात्मा" २२ अ० ७ (वैशेषिकदर्शन पृ० २४७ छपा १६४६)

भावार्थ—यह आकाश महान् विभु है वैसा ही यह आत्मा है।

जैन दर्शन कहता है कि यदि संसारी जीवों को कर्म का फल देना ईश्वर के आधीन है तो उनको कुमार्ग गमन से रोकना भी उसके आधीन होना चाहिये। जब ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व व्यापी, दयालु व सर्वशक्तिमान् है, तो उसे अपनी प्रजा को कुपथ से अवश्य रोक देना चाहिये जैसे देश का राजा शक्ति के अनुसार ज्ञान होने पर दुष्टों का निग्रह करता है; परन्तु जगत में ऐसा नहीं देखा जाता। इससे उसकी प्रेरणा कर्म के फल में आवश्यक नहीं है।

आत्मा यदि सर्वथा नित्य हो तो उसमें विकार नहीं हो सकते। विकार बिना राग द्वेष नही हो सकते, न रागद्वेष से छूटकर मुक्त हो सकता है। सर्व व्यापक आत्मा हो तो स्पर्श का ज्ञान सर्वस्थानों का एक काल में होना चाहिये। सो होता नहीं; किन्तु शरीर मात्र के स्पर्श का ज्ञान एक काल में होता है, इससे आत्मा शरीर प्रमाण है। यदि आत्मा मुक्त होगया तो फिर उसका ईश्वर के परतंत्र होना संभव नहीं है। मुक्त का अर्थ स्वाधीन है।

(६) मीमांसा दर्शन—यह दर्शन भी ईश्वर की सत्ता नहीं मानता है। यह शब्द को तथा वेदों को अनादि अपौरुषेय मानता है। यज्ञादि कर्म को ही धर्म मानता है।

"वेदस्य अपौरुषेयतया निरस्त समस्त शङ्का कलंकांकुरत्वेन स्वतः सिद्धम्"। [सर्वदर्शनसंगृह पृ० २१८]

भावार्थ—सर्व शङ्कारूपी कलंक के अँकुर नाश होने पर वेद बिना किसी का किया हुवा सिद्ध है।

जैन दर्शन कहता है कि जो शब्द होठ तालु आदि से बोले जाते हैं, उनका रचने वाला कोई पुरुष ही होना चाहिये। बिना रचना के उनका व्यवहार नहीं हो सकता। वे लिखने पढ़ने में आते हैं। ज्ञान को प्रवाहरूप अनादि कह सकते हैं, किन्तु प्रगटता किसी पुरुष विशेष से होती है ऐसा मानना चाहिये। शब्द नित्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह दो जड़ पदार्थों के सम्बन्ध से भाषा वर्गणानाम जड़ पुद्गल की एक अवस्था विशेष है। अवस्था सब क्षणिक हैं। जिन पुद्गलों से शब्द बना है, वे मूल में नित्य हैं। अहिंसारूप यज्ञ, पूजा आदि स्वर्ग के कारण हो सकते हैं, पशु हिंसारूप नहीं: परन्तु मुक्ति का कारण तो एक शुद्ध आत्मसमाधि है; वहां क्रियाकाण्ड की कल्पना ही नहीं रहती है।

(७) बौद्ध दर्शन—बौद्ध भी ईश्वर को जगतकर्ता नहीं मानता तथा किसी पदार्थ को नित्य न मानकर सबको क्षणिक मानता है।

"यत् सत् तत् क्षणिकं" (सर्वदर्शन संगृह पृ० २० छपा सं० १९६२)।

भावार्थ—जो जो सत् पदार्थ हैं सब क्षणभंगुर हैं। जैन

दर्शन कहता है कि सर्वथा क्षणिक मानने से एक आत्मा अपने किये पुण्यपाप के फलका भोक्ता न रहेगा, न वह मोक्ष अवस्था में बना रहेगा। पर्याय पलटने की अपेक्षा क्षणिक मान सकते हैं, किन्तु तिस पर भी वस्तु का मूल स्वभाव नहीं जाता, इससे उसे नित्य भी मानना चाहिये।

(८) थियोसोफ़ी—एक मत है जो अपने को हिन्दू-मत सरीखा कहता है। वह कहता है कि जड़ से उन्नति करते करते मनुष्य होता है। चेतन व जड़ दो मूल पदार्थ भिन्न २ नहीं हैं, तथा मनुष्य मरकर कभी पशु नहीं होगा। हर एक प्राणी उन्नति ही करता है।

देखो—First Principles of Theosophy by C. Jinrajdass M. A 1921 Adyar-Madras इस पुस्तक में लिखा है—

The great Nebula-It is a chaotic mass of matter in an intensely heated condition millions and millions of miles in diameter It is a Vague cloudy mass full of energy. It revolves into another nebula then solar system. Then hydrozen, iron & others will be there They will enter into certain combinations & then will come the first appearance of life We shall have a protoplasm, Ist form of life, then it takes form of vegetable, then animals & soon lastly man

A soul once become human cannot reincarnate in animal or vegetable forms. (P. 42.)

भावार्थ-एक बहुत बडा गडबड़ मय जड़ (पुद्गल) का पिण्ड है जो बहुत ही उष्ण है व करोडों मीलों का इस का व्यास है। यह एक मेघ समूह सदृश शक्तियोंका समूह है, यह घूमते २ दूसरा समूह होकर फिर सूर्य का परिकर हो जाता है, फिर उसीसे हैड्रोज़न वायु, लोहा व दूसरे पदार्थ हो जाते हैं। फिर कुछ मिलाप होते २ प्रथम जो जीवन शक्ति प्रकट होती है, इस को प्रोटोप्लैज़्म कहते है। इसी से वनस्पति काय बनती है, फिर उन्नति करते करते वही पशु फिर वही मनुष्य हो जाता है।

आत्मा मनुष्य की दशा से पशु या वनस्पति की अवस्था में कभी नहीं गिरता है।

इस पर जैन दर्शन कहता है कि जड से चेतन शक्ति नही पैदा हो सकती है, क्योंकि उपादान कारणके समान कार्य होता है। आत्मा स्वतन्त्र नित्य पदार्थ है तथा जब मनुष्य अधिक पाप करे तब क्यों न वह पशु हो जावे। जगत में हर एक आत्मा अपने भावों के अनुसार उन्नति वा अवनति दोनों करता रहता है।

(६) आर्य समाजी—यह भी ईश्वर को फलदाता व कर्ता मानते हैं। मुक्ति होने पर भी जीव अल्पज्ञ रहता है। वह फिर ससार में आता है। जीव परमात्मा के सदृश है, ऐसा नहीं मानते है। (देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ६)।

"मुक्तिमें जीव विद्यमान रहता है। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी मे मुक्त जीव विना रुकावट के विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतन्त्र विचरता है" (२५२ पत्र)

"जीव मुक्ति पाकर पुन संसारमे आता है" (२५७पृष्ठ)

"परमात्मा हमें मुक्ति में आनन्द भुगाकर फिर पृथ्वी पर माता पिता के दर्शन कराता है" (२५५ पृ०)

"महाकल्प के पीछे फिर संसार में आते है। जीव की सामर्थ्य परिमितहै । जीव अनन्त सुख नहीं भोग सकते" (२५६ पृष्ठ)। जीव अल्पज्ञ है। (पृ० २६२)

"परमेश्वर के आधार से मुक्ति के आनन्दको जीवात्मा भोगता है। मुक्ति में आत्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सर्व सन्निहित पदार्थों का ज्ञान यथावत् होता है" (पृ० २६७)।

जैन दर्शन कहता है कि ऊपर के कथनों मे परस्पर विरोध है। एक स्थान में आत्मा को परिमित ज्ञानी व दूसरे स्थान में पूर्ण ज्ञानी व निर्मल कहा है। आत्मा स्वभाव से परमात्मा के तुल्य है। कर्म बन्ध के कारण कमी है: उस कमीके जाते ही वह परमात्मा के समान स्वतन्त्र हो जायगा। परमात्मा विना किसी दोष के मुक्त जीव को क्यों कभी संसार में भेजता है। यदि भेजता है तो जीव कर्मबन्ध सहित रहेगा, मुक्त नहीं कहा जा सकेगा। परमात्मा निर्विकार है, उस में संसार प्रपंच करने का विकार नहीं हो सकता है।

(१०) पारसी या जरथोश्ती धर्म—इस मतकी मान्यता हिन्दुओं के उस मत से मिलती है जो मात्र एक ईश्वर को ही अनादि अकृत्रिम मानते है व उस से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। यह मत जड़ और चेतन दोनों को मानता है, पर उनकी उत्पत्ति एक ईश्वर से मानता है। जीव पाप पुण्य का फल मरण पीछे भोगता है। अन्त में उसी ईश्वर में समा जाता है। यह लोग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु को इसलिये

पवित्र मानते हैं कि इन से सर्व वस्तुएं बनती है। मांसाहार मदिरापानसे यह विरुद्ध है। वनस्पतिमें जीव मानते हैं। वृथा उन को भी सताने की मनाई करते हैं। रजस्वला स्त्री ३ से ६ दिन तक यथा सम्भव अलग बैठती है। प्रसूति वाली स्त्री ४० दिन तक अलग रहती है। जिस से सब कुछ हुआ व जो सब से बड़ा है उसे शैदानशैद कहते हैं। जनेऊ के स्थान में यह कमर में डोरा बाँधते हैं।

- देखो पुस्तक—"The Parsi religion as contained in Zand Avesta by John Wilson D. D. (1843) Bombay"

"The one holy and glorious God, the lord of creation of both worlds has no form, no equal, creation & support of all things is from that lord ....Loftysky, earth, moon & stars have all been created by him and are subject to him...... that lord was the first of all & there was nothing before him & he is always and will always remain...The names of God are specially three—Dadar (giver or creator), Ahurmazd (wise Lord), Aso (holy)"

(Ch. II. P 106–7 in Manja Zati Zartusht by Edal Dara)

भावार्थ–एक पवित्र और ऐश्वर्यवान प्रभु है। वह दोनों दुनियाँ की सृष्टि का स्वामी है। उसकी सूरत नहीं है, न उस के समान कोई है। सर्व पदार्थों की उत्पत्ति और रक्षा उसी

प्रभु से है। उच्च आकाश, पृथ्वी, चन्द्र व सितारे सब उस से पैदा हुए हैं व उसके आधीन हैं। वह ईश्वर सबसे पहिले था। उसके पहिले कुछ नहीं था। वह हमेशा है और हमेशा रहेगा।

ईश्वर के विशेष नाम तीन हैं—दादर (देनेवाला या पैदा करने वाला), अहुरमज़्द (बुद्धिमान प्रभु), असो (पवित्र)।

They worship fire, sun, moon, earth, winds & water (P 191)

"Whatever God has created in the world we worship to it" (P 212)

भावार्थ-ये लोग अग्नि, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु और जल को पूजते हैं। जो कुछ ईश्वर ने दुनिया में पैदा किया है उसे हम पूजते हैं।

Woman who bears a child must observe restriction 40 days. She must remain in seclusion (P. 212).

भावार्थ-बच्चे वाली स्त्री को चालीस दिन रुकावट रखनी व एकान्त में रहना चाहिए।

"He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal Angel Asfandarmad says "O holy man, such is the command of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth & Carrion"

Angel amardad says about vegetable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without a purpose"...........

Let every one bind his waist with sacred girdle, since the kushti is the sign of pure faith (See Zartusht-namah-p. 495)

भावार्थ-जो इस तरह किसी पशु को मारेगा उस को ईश्वर नहीं स्वीकार करेगा। फ़रिश्ता अस्फन्दार्मद ने कहा है कि "ऐ पवित्र मनुष्य! ईश्वर की यह आज्ञा है कि पृथ्वी का मुख रुधिर, मैल तथा मुर्दा मांस से पवित्र रक्खा जावे।" अमरदाद फ़रिश्ता वनस्पतियोंके लिए कहता है कि "इसे वृथा नष्ट करना व वृथा हटाना ठीक नहीं है। हर एक को अपनी कमर में पवित्र कमरबन्द पहनना चाहिए। यह कुश्ती पवित्र धर्म का चिन्ह है"।

According to thy state of mind......so will thou suffer or enjoy. From good; thou wilt find a good result, and none ever reaped honor from evil action" (P. 517)

भावार्थ--अपने मतकी स्थिति के अनुसार तुम दुःख या सुख भोगोगे। भलाई से अच्छा फल पाओगे। किसी ने बुरे कामसे सम्मान नहीं पाया है।

"जो कोई जानवरों को मारने की मलामत करता है उसको होरमजद बुरा समझते हैं" (अवस्ता गाथा ३२-१२ ट्रैक्ट नं० १२ पारसी वेजीटेरियन टेम्परेन्स सोसायटी नं० २४-२८ पारसी बाज़ार स्ट्रीट कोर्ट बम्बई)

"दाना और अनाज मनुष्योंकी ख़ूराक है, घास चारा जानवरोंके लिये ख़ूराक है" (अवस्ता वन्दीदाद ५ : २० ऊपर का ट्रैक्ट)

नोट—जैनधर्म में जगत अनादि अनंत अकृत्रिम माना है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश, यह ६ मूल द्रव्य अनादि अनन्त है। परमात्मा निर्विकार ज्ञानानन्दमई है, वह न पैदा करता है और न नष्ट करना है। अमूर्तीक परमात्मा से मूर्तीक जगत बिना समान उपादान कारण के नहीं हो सकता; यही बड़ा भारी अन्तर है।

ईसाई व मुसलमान मत कर्तावाद में गर्भित हैं। इस तरह दुनिया के प्रचलित मतों से जैन दर्शन की भिन्नता है जो आगे के कथन से पाठकों को भली प्रकार प्रगट हो जायेगी। यहां तो संक्षेप में बताई गई है।

११. मोक्ष का स्वरूप व महत्व

"बन्ध हेत्व भावनिर्जराभ्यां कृत्स्न कर्म विप्र मोक्षो· मोक्षः" (तत्वार्थसूत्र अध्याय १० । २)

भावार्थ—कर्म-बंध के सब कारणों के मिट जाने पर तथा पूर्व में बांधे हुए पाप पुण्य मई कर्मों की निर्जरा या त्याग हो जाने पर सर्व प्रकार के कर्मों से जो छूट जाना है, वही मोक्ष है।

मोक्ष प्राप्त आत्मायें सिद्ध कहलाती हैं। उनमें आत्मा के अनन्त गुण सब प्रकट हो जाते हैं। उन का निवास लोक के

अग्रभाग में रहता है। वे अपने अन्तिम शरीर के आकार प्रमाण निश्चल आत्मस्थ रहते हैं *।

---

* आठ कर्म संसारी जीवों के थे, उनके चले जाने पर नीचे लिखे आठ गुण प्रकट हो जाते हैं :—

ज्ञानावरण हानान्ते केवलज्ञान शालिनः ।
दर्शनावरणच्छेदा दुद्यत्केवल दर्शनः ॥ ३७ ॥
वेदनीय समुच्छेदाद् व्यावाधत्व माश्रिता ।
मोहनीय समुच्छेदात्सम्यक्त्व मचलंश्रिताः ॥ ३८ ॥
नामकर्म समुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः ।
आयुः कर्म समुच्छेदादवगाहन शालिनः ॥ ३९ ॥
गोत्र कर्म समुच्छेदात्सदाऽगौरव लाघवाः ।
अन्तराय समुच्छेदादनन्तवीर्य माश्रिताः ॥ ४० ॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ॥ ७ ॥
आकार भावतोऽभावो न चैतस्य प्रसज्यते ।
अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः ॥ १५ ॥

(तत्वार्थसार—मोक्षतत्व)

भावार्थ—ज्ञानावरणीय कर्मोंके नाश से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणीय के नाश से अनन्त दर्शन, वेदनीय के नाश से बाधा रहित पना, मोहनीय के नाश से अचल सम्यक्त्व या श्रद्धान, नाम कर्म के नाश से परम सूक्ष्मता, आयुकर्म के नाश से अवगाहन गुण, गोत्र कर्म के नाश से हलके भारीपने से रहितपना और अन्तराय के नाश से अनन्तवीर्य, यह सब गुण सिद्धों के प्रगट हो जाते हैं। जैसे जला हुआ बीज फिर नहीं

मुक्तावस्था में आत्माएँ निरन्तर परम आनन्द में मग्न रहती हैं। उनके कोई चिन्ता, रागादिभाव नही होते हैं। एक योगी जेसे संसार के प्रपञ्च से हटा हुआ एकांत में स्वरूप की समाधि में गुप्त रह कर स्वात्मानन्द का लाभ करता है उसी तरह वे निरन्तर स्वात्मा में लीन रहते हुए आत्मानन्द का लाभ करते हैं।

वे परम पवित्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परम निराकुल हैं। वे किसी को न वनाते न विगाडते, न किसी को सुखी व दुखी करते हैं। कहा है—

अट्ठविय कम्म वियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठ गुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥
(गोम्मटसार जीवकांड)

भावार्थ--सिद्ध आत्माएँ आठ कर्म रहित, परमशीतल, निर्मल, अविनाशी, आठ गुण सहित, कृतकृत्य तथा लोक के अग्रभाग में रहने वाले होते हैं।

१२. मोक्ष का मार्ग रत्नत्रय है

ऊपर कहे हुए मोक्ष के पानेका उपाय सम्यग्दर्शन (सच्चा विश्वास), सम्यग्ज्ञान (सच्चाज्ञान) और सम्यक चारित्र (सच्चा आचरण) इन तीनों की एकता

उगता है वैसे कर्म बन्ध के कारणों के मिट जाने पर सिद्ध जीव के फिर संसार नहीं होता है। शरीर के छूट जाने पर उनका आकार बना रहता है, वह छोड़े हुये शरीर के प्रमाण होता है।

होना है*। इसी को रत्नत्रय धर्म कहते है। बिना रुचि के ज्ञान पक्का नही होता। बिना पक्के ज्ञान के पक्का आचरण नहीं होता। पर्वत के शिखर पर जाने के मार्ग का श्रद्धान व ज्ञान होने पर जब उस पर चलेंगे तब ही शिखर पर पहुँच सकेंगे। तीनो के बिना कोई कार्य नही हो सकता है; तब मोक्ष की सिद्धि भी नहीं हो सकती है।

इस रत्नत्रय के दो भेद हैं—(१) निश्चय रत्नत्रय (२) व्यवहार रत्नत्रय। अपने ही आत्मा के असली स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान तथा उसमें लीनता निश्चय रत्नत्रय है तथा जीवादि सात तत्वों का व सच्चे देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान व ज्ञान तथा साधु या श्रावक गृहस्थ का हिंसादि पापो से छूटना व्यवहार रत्नत्रय है। मोक्ष के लिए साक्षात् साधन निश्चय रत्नत्रय है जब कि उसका निमित्त या सहायक साधन व्यवहार रत्नत्रय है†।

---

* सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः ॥ १ ॥
(तत्वार्थसूत्र १ अ०)

† आयारादी णाणं जीवादी दसणं च विण्णेयं।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥२६४॥
आदाखु मज्झणाणे आदा मे दसणे चरित्तेय।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ २६५ ॥
[समयसार]

भावार्थ—जीवादि का श्रद्धान, आचारांगादि का ज्ञान व पृथ्वी आदि छः कार्यों की रक्षा, व्यवहार रत्नत्रय है। आत्मा ही का ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र व वही त्याग रूप है संवर रूप है, योग रूप है, ऐसा स्वानुभव निश्चय रत्नत्रय है।

१३. निश्चयनय व्यवहारनय ‡

जब तक हम अपने आत्मा को न पहिचानेंगे तब तक हम आत्मा का ज्ञान व विश्वास नहीं कर सकते। आत्मा को ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों से करना चाहिए। जो पदार्थ का असली स्वभाव वर्णन करे वह निश्चयनय है। जो पदार्थ को किसी कारण से भेद रूप कहे या उसकी अशुद्ध अवस्था का वर्णन करे वह व्यवहारनय है। एक रुई का बना हुआ रूमाल मैला हो गया है। जो निश्चय नय से यह जानता है कि रूमाल रुई का बना स्वभाव से सफ़ेद है और व्यवहारनय से जानता है कि यह मैल चढ़ने से मैला है वही रूमाल को धोकर साफ़ कर सकता है। उसी

---

‡ निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थं बोध विमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः॥
व्यवहार निश्चयौयः प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः सएवफल मविकल शिष्यः॥
(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ८)

भावार्थ—निश्चयनय सत्य असली पदार्थको व व्यवहारनय अभूतार्थ स्वरूप को बताती है—अर्थात् जो दूसरे निमित्तोंसे द्रव्यका विभाव परिणाम हुआ है, उसको व्यवहारनय बताती है। ये संसारी प्राणी प्रायः सच्चे असली वस्तु के स्वरूप को नही जानते हैं। जो कोई व्यवहार निश्चय दोनों को ठीक ठीक समझ कर वीतरागी हो जाता है वही शिष्य जिन वाणी के पूर्ण फल को पाता है।

तरह से जो निश्चयनय से अपने आत्मा के स्वभाव को पर-मात्मा के समान शुद्ध ज्ञानानंदमय अमूर्तीक अविकार जानता है और व्यवहारनय से पाप पुण्यमय कर्मों के बन्धन के कारण "मेरा आत्मा अशुद्ध है" ऐसा जानता है वही आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न कर सकता है । इसलिए यह दोनों नय या अपेक्षा ज़रूरी हैं । नाटकमें एक ब्राह्मण का पुत्र राजा का पार्ट खेलते हुए व्यवहारनय से अपने को राजा तथा निश्चयनय से अपने को ब्राह्मण जान रहा है, तब ही वह पार्ट होने के पीछे राजपना छोड़ असली ब्राह्मण के समान आचरण करने लगता है ।

१४. प्रमाण, नय और स्याद्वाद

जिस ज्ञानसे पदार्थको पूर्ण जाने वह प्रमाण है व जिस ज्ञान से उस के कुछ अन्श को जाने वह नय है ।

प्रमाण सम्यग्ज्ञान अर्थात् संशय, विपर्यय (उल्टे) व अनध्यवसाय (बेपरवाही) रहित ज्ञान को कहते हैं, उस के निम्न पांच भेद हैं :—

(१) मतिज्ञान—जो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण तथा मन से सीधा पदार्थ को जाने । जैसे कानसे शब्द सुनना, रसना से रोटी को चखना आदि ।

(२) श्रुतज्ञान—मतिज्ञानपूर्वक जो जाना है उसके द्वारा अन्य पदार्थ को जानना श्रुतज्ञान है । जैसे रोटी शब्द से आटे की बनी हुई रोटी का ज्ञान ।

ये दोनों ज्ञान परोक्ष प्रमाण है क्योंकि इन्द्रियों की तथा मन की सहायता से होते है ।

(३) अवधिज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं द्रव्य क्षेत्रादि को मर्यादा से रूपी पदार्थों और संसारी जीवों को, भूत और भविष्य के व दूर क्षेत्र को जान लेता है।

(४) मनःपर्ययज्ञान—जिससे आत्मा स्वयं दूसरे के मन में तिष्ठे, किन्हीं भी सूक्ष्म रूपी-पदार्थों को जान लेता है।

(५) केवलज्ञान—जिससे सर्व पदार्थों की सर्व पर्यायों को एक समय में बिना क्रम के आत्मा जानता है।

ये पिछले तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं, अर्थात् आत्मा बिना पर की सहायता के जानता है। ॐ

नयों के बहुत भेद हैं। लोक में व्यवहार चलाने के लिये सात नय प्रसिद्ध हैं :—

(१) नैगमनय—जो भूत भविष्यत की बातको संकल्प करके वर्तमान में कहे। जैसे कहना कि आज श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये।

(२) संग्रहनय—जो एक बात से उस जातिके बहुत से पदार्थों का ज्ञान करा दे। जैसे जीव चेतना मय है, इस में सर्व जीवों का कथन हो गया।

(३) व्यवहारनय—संग्रहनयसे जो कहा उसके भेदों का कहना जिससे हो। जैसे जीव संसारी और मुक्त दो तरह के हैं।

(४) ऋजुसूत्रनय—जो वर्तमान अवस्था को कहे। जैसे राजा को राजा कहना।

ॐ मति श्रुतावधि मनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥ (तत्वार्थ सूत्र अ० १)

(५) शब्दनय—जो व्याकरण की रीति से शब्द को कहे। जसे पुल्लिग द्वारा शब्द को स्त्री के अर्थ में कहना।

(६) समभिरूढ़नय—जो शब्द का अर्थ न घटते हुए भी किसी पदार्थ के लिये ही किसी शब्द को लोक मर्यादा के अनुसार प्रयोग करे। जैसे गाय को गौ कहना।

(७) एवंभूतनय—जिस पदार्थ के लिये जितने शब्द हों उनमें से जब वह जिस शब्द के अर्थ के अनुसार क्रिया करता हो तब वहही कहना। जैसे दुबली स्त्री को शब्द अबला कहना। †

स्याद्वाद—स्यात् अर्थात् किसी अपेक्षा से वाद अर्थात् कहना सो स्याद्वाद है। एक पदार्थमें बहुतसे विरोधी सरीखे स्वभाव भी होते हैं। उन सबका वर्णन एक समय में हो नहीं सकता। एक २ ही स्वभावका होसकता है। तब जिस स्वभाव को कहना हो उसमें स्यात् यानी कथंचित् या किसी अपेक्षासे (from some point of view) यह ऐसा है कहना सो स्याद्वाद है। जैसे एक पुरुष एक ही समय में पिता, पुत्र, भाई, भानजा, मामा आदि अनेक रूप है, तब कहना कि स्यात् पिता है अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने पुत्र की दृष्टि से) पिता है, स्यात्पुत्रः—किसी अपेक्षा से (अपने पिता की दृष्टि से) पुत्र है। स्यात् भ्राता—अपने भाई की अपेक्षा भाई है; इत्यादि।

इसी तरह यह आत्मा अस्ति स्वभाव, नास्ति स्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव

---

† नैगम् संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढैवं भूतानयाः॥ ३३॥

(तत्वार्थ सूत्र अ० १)

आदि विरोधी सरीखे स्वभावों का धारक है । इनमें से हर एक दो स्वभावों को समझाने के लिये इस तरह कहेंगे—

स्यात् अस्ति स्वभावः—अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने आत्मामई द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव या स्वरूप की दृष्टि से) आत्मा में अपनी सत्ता या मौजूदगी है ।

स्यात् नास्ति स्वभावः अर्थात् किसी अपेक्षा से (पर-द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्रादि की दृष्टि से) आत्मा में पर द्रव्यों की असत्ता यानी ग़ैर मौजूदगी है ।

स्यात् नित्य स्वभावः अर्थात् किसी अपेक्षा से (अपने द्रव्यपने और गुणों के सदा बने रहने के कारण) आत्मा नित्य या अविनाशी स्वभाव है ।

स्यात् अनित्य स्वभावः अर्थात् अपनी अवस्थाओं के बदलने की अपेक्षा आत्मा अनित्य या क्षणिक स्वभाव है ।

स्यात् एक स्वभावः अर्थात् आत्मा एक अखण्ड है, इस से एक स्वभाव है ।

स्यात् अनेक स्वभावः अर्थात् आत्मा अनन्तगुणों को सर्वांश रखता है, इस से अनेक स्वभाव हैं ।

इन्हीं दो स्वभावों को समझाने के लिये सातभंग कहे जाते हैं, जो शिष्य के सात प्रश्नों के उत्तर है । जैसे :—

(१) क्या आत्मा नित्य है ? उत्तर—हाॅ ! आत्मा सदा बना रहता है इस से नित्य है ।

(२) क्या आत्मा अनित्य है ? उत्तर—हाँ ! आत्मा अवस्थाओं को बदलता रहता है, इससे अनित्य भी है ।

(३) क्या आत्मा नित्य अनित्य दोनों है ? उत्तर—हाँ! आत्मा एक समय में नित्य अनित्य दोनों स्वभावों को रखता

हैं। जैसे—सोने की अंगूठी तोड़कर बाली बनाई जावे; तब क्योंकि सोना वही है, इससे वह नित्य है; परंतु अंगूठी बदल कर बाली बन गई, इससे अवस्था क्षणिक है। यहाँ दोनों बातें एक समय में ही मौजूद हैं।

(४) क्या हम दोनों को एक साथ नहीं कह सकते? उत्तर—हाँ, शब्दों में शक्ति न होने से दोनों को एक साथ नहीं कह सकते, इसी से आत्मा अवक्तव्य स्वरूप है।

(५) क्या अवक्तव्य होते हुए नित्य है? उत्तर—हाँ, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य भी है।

(६) क्या अवक्तव्य होते हुए अनित्य है? उत्तर—हाँ, जिस समय अवक्तव्य है उसी समय अनित्य भी है।

(७) क्या जिस समय अवक्तव्य है उस समय नित्य अनित्य दोनों हैं? उत्तर—हाँ. जिस समय अवक्तव्य है उसी समय नित्य अनित्य भी है।

इसी को इन शब्दों में कहेंगे—

(१) स्यात् आत्मा नित्य स्वभावः (२) स्यात् अनित्य स्वभावः (३) स्यात् नित्यानित्य स्वभावः (४) स्यात् अवक्तव्य स्वभावः (५) स्यात् नित्यः अवक्तव्य स्वभावः (६) स्यात् अनित्यः अवक्तव्य स्वभावः (७) स्यात् नित्यानित्यः अवक्तव्य स्वभावः। ॐ

जबतक स्याद्वाद से पदार्थ को न समझेंगे, तब तक हम पदार्थ को ठीक नही समझ सकते। यदि हम ऐसा कहें कि

ॐ वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यम्प्रतिविशेषकः।
स्यान्निपातोऽर्थ योगित्वात्तव केवलिनामपि ॥ १०३॥
स्याद्वाद सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।

आत्मा विलकुल नित्य ही है, तब वह जैसा का तैसा रहेगा, रागद्वेषी न होगा। न कर्मों को बांधेगा, न संसार में भ्रमण करेगा, न मुक्त होगा और यदि कहें कि आत्मा विलकुल अनित्य ही है तब क्षणमात्र में नष्ट होने से उस का पाप पुण्य भी नष्ट होगा, वह अपने कार्य के फलको नहीं पा सकेगा, फिर यह ज्ञान भी न रहेगा कि मै बालक था—सो ही मैं जवान हूँ। इसलिये जब ऐसा माना जायगा कि आत्मा द्रव्य व गुणोंका दृष्टि से नित्य है, परन्तु अवस्था बदलने की अपेक्षा अनित्य है; तब कोई विरोध नहीं आ सकता है।

तबही यह कहना होगा, कि यद्यपि मैं बालकपने को छोड़कर युवा होगया हूँ, तथापि मैं हूँ वही, जो बालक था।

सप्त भङ्ग नयापेक्षो हेयादेय विशेषकः ॥ १०४ ॥

(आप्तमीमांसा)

भावार्थ—स्यात् एक अव्यय है जिसके अर्थ 'किसी अपेक्षा से' हैं। यह स्यात् शब्द वाक्यों में जोड़ने से यह दिखलाता है कि इस पदार्थ में अनेक धर्म या स्वभाव हैं तथा वह वाक्य से जिस स्वभाव को कहता है उस की मुख्यता करता है और स्वभावों को गौण करता है ऐसा आप्त—केवली—महाराजों का मत है। यह स्याद्वाद सिद्धान्त सर्वथा एकान्त का त्याग कराने वाला है अर्थात् वस्तु अनेक धर्म स्वभाव है, ऐसा न मानकर एक रूपही है, इस मिथ्याभावको हठाने वाला है। इसी से किसी अपेक्षा से ऐसा है, ऐसी विधि करने वाला है तथा मुख्य गौण की अपेक्षा से सात भंग से कहने वाला है। जिस बात को उस समय ज़रूरी समझता है उसको ग्रहण करता है, दूसरी बातों को उस समय छोड़ देता है।

ऐसा मानने से ही यह आत्मा रागद्वेषी होता हुआ जब राग द्वेष अवस्था को छोड़ता है तब वीतरागी होकर, आप स्वय अशुद्धभावों से शुद्धभाव में बदल कर मुक्त होजाता है। नित्यानित्य माननेसे ही यह कह सकते हैं कि श्रीमहावीर स्वामीका आत्मा जो गृहस्थ अवस्था में क्षत्री नाथवंशी था, सो अब सिद्ध परमात्मा होगया है। इसी तरह यदि पदार्थ में अपना भावपना तथा दूसरों का अभावपना न हो तो हम उस पदार्थ को दूसरों से भिन्न समझ ही नही सकते। हम जानते हैं कि हम अमरचन्द है किन्तु हम खुशालचन्द, दीनानाथ, कृष्णचन्द्र, लक्ष्मणलाल आदि नहीं हैं-अर्थात् हमारे में अमरचन्दपने का भाव है, किन्तु खुशालचन्द आदि का अभाव है इस से हम भाव अभाव या अस्ति नास्ति स्वरूप एक ही काल में हैं। "हम आत्मा है", ऐसा तब ही कह सकते हैं, जब यह ज्ञान हो कि हमारे आत्मामे हमारी आत्मापने का अस्तित्व है, किन्तु अपनी आत्मा के सिवाय अन्य सर्व आत्माओं का व अनात्माओं का हम में नास्तित्व है। पदार्थ का सच्चा ज्ञान कराने के लिये यह सिद्धान्त दर्पण के समान है। जैसा श्री राजवार्तिक में कहा है—

"स्वपरादानापोहन व्यवस्था पाद्यंखलु वस्तुनो वस्तुत्वम्"

भावार्थ--वस्तु का वस्तुपना यही है जो अपनेपने को ग्रहण किये हुए है और तब ही परपने से रहित है।

(१५) स्याद्वाद पर अजैन विद्वानों का मत

कोई २ अजैन शास्त्रों में स्याद्वाद का ठीक स्वरूप

न बता कर उस को संशयवाद व विपरीतवाद कह कर खण्डन कर दिया है, परन्तु जिन आधुनिक अजैन विद्वानों ने इस पर मनन किया है उन्होंने इसकी बहुत प्रशन्सा की है। जैसे डा० हर्मनजैकोबी, स्व० शतीशचन्द्र विद्याभूषण, प्रोफ़ेसर आनन्दशङ्कर ध्रुव प्रिन्सिपल हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, आनरेबल डा० गङ्गानाथझा महामहोपाध्याय वाइस चैन्सलर अलाहाबाद यूनीवर्सिटी, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी, पूना के प्रसिद्ध सर रामकृष्ण गोपाल, डाक्टर भण्डार कर एम० ए० आदि। डाक्टर भण्डारकर ऐसा कहते हैं—

There are two ways of looking at things—one called *DRAVYARTHIKNAYA* and the other *PARYAYARTHIKNAYA*. The production of a jar is the production of something, not previously existing; if we take the latter point of view, i e as Paryaya or modification, while it is not the production of something not previously existing, when we look at it from the former point of view, i e as a Dravya or substance.

So when a soul becomes through his merits or demerits, a god, a man or a denizen of hell from the first point of view, the being is the same, but from the second he is not second. i e. different in each case. So that you can confirm or deny something of a thing at one and the same time

This leads to the celebrated *Sapta 'Bhangi Naya* or the seven modes of assertion.

You can confirm existence of a thing from one point of view (Syad Asti), deny it from another (Syad Nasti), and affirm both existence and non-existence with reference to it at different times (Syad Astinasti). If you should think of affirming both existence and non-existence at the same time from the same point of view, you must say that thing can not be spoken of (Syad Avaktavya)......... It is not meant by these modes as that there is no certainty or that we have to deal with probabilities only, as some scholars have thought All that is implied is that every assertion which is true is true only under certain conditions of space, time etc.

भावार्थ—पदार्थों के विचार करने के दो मार्ग हैं—एक द्रव्यार्थिकनय दूसरा पर्यायार्थिकनय। जैसे मिट्टी का घड़ा बना; तब जो पहिले न था सो बना, ऐसा कहेंगे तो यह हम अवस्था की अपेक्षा कहेंगे तथा जब हम हो द्रव्य की दृष्टि से विचारेंगे तो कहेंगे कि यह पहिले न था, सो नहीं है; किन्तु वही मिट्टी है। इसी तरह जब कोई जीव अपने पाप पुण्य के कारण देव, मनुष्य या नारकी होता है, वह द्रव्य की दृष्टि से वही है; किन्तु पर्याय की दृष्टि से भिन्न भिन्न ही है। इस तरह तुम एक ही समय में किसी वस्तु में विधिनिषेध सिद्ध कर

सकते हो। इस को समझाने के लिये सप्तभङ्गीनय है या कहने के सात मार्ग हैं। तुम किसी अपेक्षा से किसी वस्तु की सत्ता कह सकते हो, यह स्यादस्ति है; दूसरी अपेक्षा से उस का निषेध कर सकते हो यह स्यान्नास्ति है; विधि और निषेध दोनों क्रम से कह सकते हो, यह स्यादस्तिनास्ति है; यदि दोनों अस्ति नास्ति को एक साथ एक समय में कहना चाहो तो नहीं कह सकते, यह स्यादवक्तव्य है · ··· ··। इन भङ्गों के कहने का मतलब यह नहीं है कि इन में निश्चयपना नहीं है या हम मात्र संभव रूप कल्पनाएं करते हैं। जैसा कुछ विद्वानों ने समझा है, इस सब से यह भाव है कि जो कुछ कहा जाता है वह किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की अपेक्षा से सत्य है। (जैनधर्मनी माहिती हीराचन्द नेमचन्द कृत सन् १९११ में छपी पत्र ५९)

डाक्टर जैकोबी कहते हैं—"इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल सकता है" (देखो जैन दर्शन गुज· राती जैन पत्र भावनगर सं० १९७० पत्र १३३)

प्रोफ़ैसर फणिभूषण अधिकारी एम० ए० हिन्दू विश्व· विद्यालय बनारस अपने व्याख्यान ता० २६ अप्रैल सन् २५ ई० में कहते हैं—

It is this intellectual attitude of impartiality, without which no scientific or philosophical researches can be successful, is what Syadvad stands for.

यह निष्पक्ष बुद्धिवाद है जिस के बिना कोई वैज्ञानिक या सैद्धान्तिक खोजें पूर्ण नही होसकती हैं; इसीलिए स्याद्वाद है।

Even learned Shankaracharya is not free from the charge of injustice that he has done to the doctrine...... ...It emphasis the fact that no single view of the universe or of any part of it would be complete by itself

भावार्थ—विद्वान शङ्कराचार्य भी उस अन्याय के दोष से मुक्त नहीं है जो उन्होंने इस सिद्धान्त के साथ किया है। यह स्याद्वाद इस बात पर ज़ोर देता है कि विश्व की या इस के किसी भाग की एक ही दृष्टि अपने से पूर्ण नहीं है।

There will always remain the possibilities of viewing it from otherstand-points.

उस पदार्थ में दूसरी अपेक्षाओं से देखने की संभावनाएं सदा रहेंगी।

१६. सम्यग्दर्शन का स्वरूप

सम्यग्दर्शन इस आत्मा का एक ऐसागुण है जिसके प्रकट होने पर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होकर आत्मानन्द का लाभ होता है। जहां आत्मा के स्वरूप के स्वाद की रुचि हो जाती है वही निश्चय-सम्यग्दर्शन है। इस की प्राप्तिके लिये मोक्षमार्ग में प्रयोजनीय जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान तथा इस श्रद्धान के लिए सच्चे देव, गुरु, धर्म या शास्त्र का श्रद्धान व्यवहार-सम्यग्दर्शन है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के बाधक अनन्तानुबन्धी (जो बहुत गाढ़े चिपके रहने वाले हैं) क्रोध, मान, माया, लोभ तथा

मिथ्या-दर्शन, यह पाँच कर्म हैं। जब इन का असर हटता है, तब ही निश्चय-सम्यग्दर्शन हो जाता है। इस कार्य के लिए तत्वों का विचार उपयोगी है। मुख्यता से आत्मतत्व का विचार करने योग्य है। ×

× धर्मः सम्यक्त्व मात्रात्मा शुद्ध स्वानुभवोऽथवा।
तत्फलं सुखमत्यक्ष मक्षयं क्षायिकं चयत्॥ ४३२॥
(पंचाध्यायी द्वि०)

भावार्थ—सम्यग्दर्शनमई आत्मा ही धर्म है अथवा वह शुद्ध आत्माका अनुभव है। इसीका फल आत्मीक, अविनाशी सुख का लाभ है।

छप्पंचणव विहाणं अत्थाणं जिणवरो वइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेणय सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥ ५६०॥
(गोम्मटसार जीवकांड)

भावार्थ—छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय व नव पदार्थों का जैसा जिनेन्द्र भगवान ने उपदेश किया है उसी प्रमाण आज्ञा ले अथवा प्रमाण नय के द्वारा समझ कर श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। इन सब का स्वरूप आगे कहा जायगा।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ ४॥
[रत्नकरण्ड श्रावकाचार]

भावार्थ—यथार्थ देव, शास्त्र, गुरु का तीन मूढ़ता और आठ मद छोड़कर व आठ अङ्ग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

१७. जैनोंके लिए पूजनीय देव, शास्त्र, गुरु

तत्वज्ञान होने के लिए यह आवश्यक है कि हम को उस आदर्शआत्मा का ज्ञानहो जो तत्वज्ञानकी पूर्ण मूर्ति हो: ऐसी ही आत्मा को देव कहते हैं। हम संसारी प्राणियों में अज्ञान और क्रोध, मान, माया. लोभ से दोष लगे हैं। जिनके पास यह दोष नहीं हैं वे ही सर्वज्ञ सर्वदर्शी और वीतराग परम शान्त देव हैं। उनके दो भेद हैं; एक सकल या शरीर सहित परमात्मा, दूसरे निकलया शरीर रहित परमात्मा। सकल परमात्मा को अरहन्त कहते हैं। वे जीवन्मुक्त परमात्मा आयु पर्यन्त धर्मोपदेश करते हैं। जब शरीर रहित हो जाते हैं तब वे शुद्ध आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। *

---

* णट्ठ चदु घाइ कम्मो दंसण सुहणाण वीरियमइयो।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिं तिज्जो॥
(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—जिन्होंने ज्ञानावरणीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिया कर्मों को नाश कर दिया है और जो अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तबलधारी हैं, परम सुन्दर शरीर में विराजित हैं, वीतराग आत्मा है, सो अरहन्त है; ऐसा विचारना चाहिये।

णट्ठट्ठ कम्म देहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरुसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥
(द्रव्यसंग्रह)

भावार्थ—जिन्होंने आठों कर्मोंको और शरीरको नष्ट कर दिया है, जो लोक अलोक के ज्ञाता दृष्टा है, पुरुषाकार आत्मा हैं व लोक के शिखर पर विराजमान हैं, सो ही सिद्ध हैं।

अरहन्त शरीर सहित होते हैं तब ही उनसे धर्म का उप-देश मिल सकता है। शरीर रहित परमात्मा वचन रूप उप देश नहीं दे सकता है।

जो परमात्मा होने के लिये अज्ञान और कषायों के मेटने का उद्यम करते हों और रातदिन इसी आत्मोन्नतिमें लीन हों, अपने पास वस्त्र पैसा वर्तन न रखते हों, नग्न हों, मात्र जीव रक्षा के लिये मोर पंख की पीछी और शौच के लिये जल लेने को काठ का कमडल रखते हों, वे ही साधु गुरु हैं। इनमें जो अन्य साधुओं को मार्ग पर चलाते हैं, उन साधुओंको आचार्य कहते हैं। जो साधु शास्त्र ज्ञान कराते हैं, उनको उपाध्याय कहते हैं। शेष साधु मात्र कहलाते हैं। †

ऐसे ही साधु की सङ्गति से सच्चे धर्म का उपदेश मिल सकता है। इन साधुओं ने अरहन्त के उपदेश के अनुसार जो शास्त्र रचे हों, जिन में आत्मोन्नति का ही उपदेश हो, वे ही सच्चे शास्त्र हैं। जो उपदेश तीर्थंकरों ने दिया, उसको सुनकर उनके मुख्य शिष्य गणधर ऋषि ने उस को बारह अङ्गोंमें ग्रन्थ-रूप रचा। उन अङ्गों के नाम ये हैं:—

(१) आचाराङ्ग—जिसमें मुनियोंका आचरण है। इस के १८००० पद हैं।

---

† विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥ १० ॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ—जो पाँचों इन्द्रियों (स्पर्शन रसनादि) की इच्छाओं से दूर है, आरम्भ व परिग्रह से रहित है, आत्मज्ञान व आत्मध्यान व तप में लीन है, वही तपस्वी गुरु है।

(२) सूत्रकृताङ्ग—इसमें सूत्ररूप से ज्ञान और धार्मिक रीतियों का वर्णन है। पद ३६००० हैं।

(३) स्थानाङ्ग—एक से ले अनेक भेद रूप जीव पुद्गलादि का कथन है। ४२००० पद हैं।

(४) समवायाङ्ग—इसमें द्रव्यादि की अपेक्षा एक दूसरे में सहयोग का कथन है–१६४००० पद हैं।

(५) व्याख्या प्रज्ञप्ति—इसमें ६०००० प्रश्नों के उत्तर हैं। २२८००० पद हैं।

(६) ज्ञातृधर्मकथाङ्ग—इसमें जीवादि द्रव्यों का स्वभाव, रत्नत्रय व दशलक्षणरूप धर्म का स्वरूप तथा सांसारिक ज्ञानी पुरुषों सम्बन्धी धर्म कथाओं का निरूपण है। इस में ५५६००० पद हैं।

(७) उपासकाध्ययनाङ्ग—इसमें गृहस्थों का चरित्र है। ११७०००० पद हैं।

(८) अन्तःकृद्दशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थङ्कर के समय जो दश दश मुनी उपसर्ग सह कर केवली हुए, उनका चरित्र है। २३२८००० पद हैं।

(९) अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग—इसमें हर एक तीर्थङ्कर के समय जो १० दश दश साधु उपसर्ग सह कर अनुत्तर विमानों में जन्मे, उनकी कथा है। ९२४४००० पद हैं।

(१०) प्रश्नव्याकरणाङ्ग—इसमें त्रिकाल सम्बन्धी अनेकानेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने की विधि और उपाय बताने रूप व्याख्यान तथा लोक और शास्त्र में प्रचलित शब्दों का निर्णय है। इसमें ९३१६००० पद हैं।

(११) विपाकसूत्राङ्ग—इस में कर्मों के बन्ध व फलादि का कथन है। १८४००००० पद हैं।

(१२) दृष्टिप्रवादाङ्ग—इस में ३६३ मतों का निरूपण व खंडन है। पूर्व आदि का कथन है। इस में १०८६८५६००५ पद हैं।

जिनवाणीमें ३३ व्यञ्जन, २७ स्वर व ४ अयोगवाह (जिह्वा मूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार और विसर्ग) इस तरह सर्व ६४ अक्षरों को, असंयोगी, दो संयोगी, तीन संयोगी को आदि लेकर ६४ संयोगी तक जोड़नेसे कुल अक्षरों का जोड़ ६४ हुआे (६४ × २) को आपसमें गुणा करनेसे जो आवे उसमें एक कम करने से जितने अक्षर हों वे अक्षर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ हैं। एक पद के १६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इस लिये सर्व अक्षरों को भाग करने से कुल पद ११२८३५-८००५ है। इन ही में १२ अङ्ग बांटे गये हैं। शेष ८०१०८१७५ अक्षरों में अङ्गबाह्य उत्तराध्ययन आदि १४ प्रकीर्णक हैं। यह लिखने में नहीं आ सकते हैं। इनकी तो विशिष्ट ज्ञानी को व्युत्पत्ति ही होती है और इसी व्युत्पत्ति के अनुसार अन्तरङ्ग में पाठ भी होजाता है। जैसे परीक्षा देने वाले छात्र को उत्तर-कापी लिखते समय सर्व पुस्तक की व्युत्पत्ति जिह्वा पर रहती है। लिखित पुस्तकोंसे व्युत्पत्ति अत्यधिकहै, अपरिमित है; किन्तु इन अङ्गों का अन्श लेकर लाखों शास्त्र रचे जाते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग तो लिखने मे आ नहीं सकता—थोड़ासा लेख्य अन्श ही लिखा जाता है। ‡

---

‡ यह कथन न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजी द्वारा प्राप्त हुआ है। इन अङ्गों आदि की और भी विस्तृत व्याख्या देखने के लिये देखो "श्री वृहत् जैन शब्दार्णव कोष" भाग १, शब्द "अङ्ग प्रविष्ट श्रुतज्ञान" व "अङ्ग बाह्य श्रुतज्ञान" पृष्ठ ११६-१३१

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जो आचाराङ्ग नामके अंग हैं वे मूल नहीं हैं। उन की रचना श्रीयुत देवर्द्धिगण ने वीर सं० ६०० के अनुमान वल्लभीपुर (गुजरात) में की थी। दिगम्बर सम्प्रदाय में जिनवाणी चार भेदों में मिलती है।

(१) प्रथमानुयोग—इसमें २४ तीर्थंकरों आदि ६३ शलाका पुरुषों का इतिहास है।

(२) करणानुयोग—इस में गणित, ज्योतिष, लोकालोक, जीवों के भाव, कर्म बन्ध के भेद आदि का कथन है।

(३) चरणानुयोग—इस में गृहस्थों के तथा मुनि के आचरण का वर्णन है।

(४) द्रव्यानुयोग—इस मे छः द्रव्य, सात तत्व आदि का कथन है।

ये ही जैनियों के चार वेद हैं। (देखो श्री "वृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १, पृष्ठ १२१ कालम दूसरा)

अबतक जो ग्रन्थ दि० जैनोंमें मिलते हैं,वे विक्रम सं०४६ में प्रसिद्ध श्री कुंदकुंद महाराजकृत पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्ट पाहुड़ आदि हैं व उनके शिष्य सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामीकृत तत्वार्थसूत्र मोक्ष शास्त्र अति प्राचीन हैं। आप्तमीमांसा,रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि के कर्ता श्री स्वामी समन्तभद्र व इन दोनों आचार्यों के वचन परम माननीय हैं।

प्रथमानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री जिनसेनाचार्य कृत महापुराण, द्वि० जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, रविषेण आचार्यकृत पद्मपुराण आदि हैं।

करणानुयोगके प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीधवल, जयधवल, महाधवल तथा श्री गोम्मटसार त्रिलोकसार आदि हैं।

चरणानुयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमूलाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, चारित्रसार आदि है।

द्रव्यानुयोगके प्रसिद्ध ग्रंथ समयसार, परमात्माप्रकाश सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि हैं। *

ऊपर कहे प्रमाण देव शास्त्र गुरु का विश्वास करना, और जो इन गुणोंसे रहित हों उनको नहीं मानना, सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसी श्रद्धान के बलसे शास्त्राभ्यास करने से सात तत्वों का ज्ञान होता है। हमें इन तीनों की भक्ति सच्चे भावों से करना चाहिए। यही मोक्षमार्ग का सोपान है।

१८. देवपूजा का प्रयोजन

श्री अरहंत और सिद्ध परमात्माका पूजन करना अर्थात् उनके गुणानुवाद गाना इसलिए नहीं है—कि हम उनको प्रसन्न करें। वे तो वीतराग हैं—न हमारी प्रशंसा से राज़ी हो हमें कुछ देते हैं, न हमारी निन्दासे नाराज़ हो हमारा कुछ बिगाड़

---

* शास्त्र का लक्षण—

आप्तोपज्ञ मनुल्लंघ्यम दृष्टेष्ट विरोधकम्।
तत्वोपदेश कृत्सार्वं शास्त्रं कापथ घट्टनम् ॥ ९ ॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

भावार्थ-शास्त्र वह है जो आप्त अरहंत देव का कहा हो, खंडनीय न हो, प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण से बाधित न हो, आत्मतत्वका उपदेशक हो, सर्व हितकारी हो व मिथ्या मार्ग का खण्डन करने वाला हो।

करते है। उनका पूजन केवल अपने भावों की शुद्धि के लिए ही किया जाता है।

यह नियम है कि गुणोंके मननसे अपने भाव गुण-प्रेमी होते हैं व अवगुणोंके मनन से अपने भाव दोषी होते हैं। हमारे भावों से ही हमारा भला बुरा होता है। ये देव परम वीतराग हैं। इनकी भक्ति से हमारे भावों में शान्ति आती है। भक्ति मई शान्तभावों से हमारे पाप कटते हैं और पुण्य का लाभ होता है। वास्तव में जैनियों की देवपूजा वीर पूजा (Hero-Worship) है।

पूजा के दो भेद है—द्रव्यपूजा, भावपूजा।

जल चन्दनादि द्रव्यों का आश्रय लेकर भेंट चढ़ाना द्रव्यपूजा है। गुणोंका विचारना भाव पूजा है। गृहस्थोंके लिये द्रव्य-पूजा के द्वारा भावपूजा का होना सुगम है। गृहस्थों का चित्त सांसारिक बाधाओं मे खिंचा रहता है। इसलिए उनके मन को देवभक्ति में जोड़ने के लिये आठ द्रव्यों के द्वारा आठ प्रकार भावनायें करनी योग्य है। जैसे—

१. जलसे—आगे भेटरूप चढ़ाकर यह भावना करनी कि जन्म, जरा, मरण का रोग दूर हो।
२. चन्दन से—भव की आताप शान्त हो।
३. अक्षत से—अविनाशी गुणों का लाभ हो।
४. पुष्प से—काम विकार का नाश हो।
५. नैवेद्य से—क्षुधा रोग की शांति हो।
६. दीप से—मोह अन्धेरे का नाश हो।
७. धूप से—आठों कर्मों का नाश हो।
८. फल से—मोक्षरूपी फल प्राप्त हो।

यद्यपि पूजा की सामग्री धोने में कुछ आरम्भ करना होता है, परन्तु इस आरम्भ का गृहस्थी त्यागी नहीं है। इस आरम्भ के दोष के मुकाबले में भावों की निर्मलता बहुत गुणी होती है। जैसे किसी गाने वाले का मन बाजे की सुरताल की सहायता से लगता है, तब बाजों को बजाने का आरम्भ गानविद्या में मन लगने की अपेक्षा बहुत कम है। ※

१६. मूर्तिस्थापन का हेतु।

जो गृहस्थ देव-पूजा करें और जिस की पूजा करें उस की उपस्थिति न हो तो पूजा में उचितभाव नहीं लग सकता। भक्ति बिना भक्ति योग्य वस्तु (Object of devotion) के भीतर से उमड़ती नहीं है। यदि जीवन्मुक्त परमात्मा या

※ न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्त वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥५७॥
पूज्य जिनं त्वार्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य नदूषिका शीत शिवाम्बुराशौ॥५८॥
[स्वयम्भूस्तोत्र]

भावार्थ—आप वीतराग हैं, आपको हमारी पूजासे कोई अर्थ [प्रयोजन] नहीं है। हे नाथ! आप वैर रहित हैं इस से हमारी निन्दा से आप में द्वेष नहीं हो सकता, तो भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे मनको पापरूपी मैल से साफ़ कर देता है। जो पूजने योग्य जिनेन्द्र की पूजा द्रव्य द्वारा करता है उसका अल्प आरम्भी दोष बहुत पुण्यके बंध होने की अपेक्षा बहुत ही अल्प है—हानिकर नहीं है; जिस तरह विष की एक कणी क्षीर समुद्र के जलको विषमय नहीं कर सकती।

अरहन्त साक्षात् मिलें तो हमें उन की सेवा में पूजा करनी चाहिये। यदि वह नहीं मिलें तो उन की वैसीही ध्यानाकार मूर्ति स्थापित कर उस मूर्तिके द्वारा परमात्माकी भक्ति करनी चाहिये। हमारे भावों में जैसा असर साक्षात् अरहन्त के ध्यानमय वीतराग शरीर के दर्शन से होगा, वैसाही असर उनकी ध्यानमय प्रतिष्ठित वीतराग मूर्ति के दर्शन से होगा। वास्तव में ध्यान कैसा होता है व ध्यान के समय शान्ति कैसी होती है, इसको साक्षात् बताने वाली जैन लोगोंकी वस्त्राभरण रहित शांत मूर्ति है। जैसे जलादि द्रव्य भेंट देना, भावों की उज्वलता में कारण है; वैसे यह मूर्ति भी साधक है। *

---

* इत्यपृच्छदसौ चाह सत्यमिति वचस्तदा।
शृणु राजन्! जिनेन्द्रस्य चैत्यं चैत्यालयादिवा ॥ ४८ ॥
भवत्य चेतनं किंतु भव्यानां पुण्य बन्धने।
परिणाम समुत्पत्ति हेतुत्वात्कारणं भवेत् ॥ ४९ ॥
रागादि दोष हीनत्वादायुधा भरणादि कात्।
विमुख्यस्य प्रसन्नेन्दु कांति हासि मुखश्रियः ॥ ५० ॥
अपतिताक्षसूत्रस्य लोका लोक विलोकिनः।
कृतार्थत्वात्परित्यक्तजटादेः परमात्मनः ॥ ५१ ॥
जिनेन्द्रस्यालयांस्तस्य प्रतिमाश्चप्रपश्यतां।
भवेच्छुभाभिसंधानप्रकर्षो नान्यतस्तथा ॥ ५२ ॥
कारण द्वय सान्निध्यात्सर्व कार्य समुद्भवः।
तस्मात्तत्साधु विज्ञेयं पुण्य कारण कारणम् ॥ ५३ ॥
[उत्तरपुराण पर्व ७३]

भावार्थ—प्रतिमा सम्बन्धी प्रश्न करने पर मुनि कहने लगे—हे आनन्दराजा! यद्यपि यह जिनेन्द्रकी प्रतिमा व मंदिर

२०. मूर्ति स्थापना सदा से है नवीन नहीं

लोकमें किसी को पहिचानने के लिये नाम रखना ज़रूरी है। वैसे उसके पास न होते हुये उसके स्वरूप को जानने के लिये उसकी मूर्ति या तस्वीर ज़रूरी है। मकान बनाना, चित्र पट खींचना, पत्र लिखना, ये सब बातें जगत में जहाँ जहाँ व जब जब कर्मभूमि होती है, आवश्यक हैं। जगत में सदा ही से क्षत्रिय व वैश्यादि के कर्म हैं। इसलिये सांकेतिक चिन्हों की भी प्राप्ति सदा ही से है। घट को लिखा देख कर घट का बोध हो जाता है। यदि पहिले नक़शा न खींचा जाय तो मकान नहीं बन सकता है। दूर देश में बैठे हुये स्त्री पुरुषों के स्वरूप का ज्ञान चित्रों से होता रहता है। इसलिये जब भक्ति मार्ग सदासे है, तब भक्ति योग्य Object of Worship

---

अचेतन है तो भी शुभ भावोंकी उत्पत्तिमें निमित्त होनेसे पुण्य-बंधमें कारण हैं। जिनेन्द्ररागादि दोष रहित हैं; शस्त्र, आभूषण वर्जित है, प्रसन्न चन्द्रसमान मुख की शोभाको रखते हैं, इंद्रियों के ज्ञान से रहित हैं, लोक अलोक को देखने वाले हैं, कृतकृत्य हैं, जटा आदि से रहित हैं,ऐसे परमात्मा की प्रतिमा का व मंदिर का दर्शन करने से जैसे भावों की उत्कृष्टता होती है वैसी अन्य मूर्ति आदिसे नहीं होती। सर्व कार्य अन्तरङ्ग, बहिरङ्ग, दो कारणोंसे होते हैं। इसलिये यह अच्छी तरह समझलो कि यह मूर्ति पुण्यप्राप्ति के कारण शुभभावों के होने में निमित्त कारण है।

भी सदा से है; कोई नवीन कल्पना नहीं है। सं० ८१ में प्रसिद्ध श्री उमास्वामी महाराज ने लोक-व्यवहार के लिये स्थापना को "नाम स्थापना द्रव्य भाव तस्तन्न्यासः" (तत्वार्थ सूत्र अ० १ सूत्र ५) इस सूत्र से स्वीकार किया है। संवत् लेख रहित प्राचीन जैन मूर्तियां भूमि से निकला करती हैं। मथुरा से पहिली शताब्दी से पहिले की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मथुरा व लखनऊ के अजायबघर में हैं। खंडगिरि उदयगिरि (उड़ीसा) की हाथी गुफ़ामें सन् १५० वर्ष पहिले के जैन राजा खारवेल या मेघवाहन द्वारा अङ्कित लेख है। उसकी १२ वीं व तेरहवीं लाइन में है कि राजा ने मगध देशके नन्द राजा से ऋषभदेव. जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर की मूर्ति को ला कर अपने बनाये मन्दिर में स्थापित किया। * इससे यह सिद्ध है कि इस के पहिले से ऋषभदेव की प्रतिमा बनती थी। बङ्गाल विहार में अनेक स्थानों में हज़ारों वर्ष की प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ मिलती हैं। स्वरूप के ज्ञान के लिए ऐसी सहकारी वस्तु का होना किसी विशेष काल में कल्पित नहीं है।

२१. सात तत्व व उनकी संख्या का महत्व

जो सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की श्रद्धा कर के भक्ति करता है, उस को शास्त्रों के द्वारा सात तत्वों को जानकर श्रद्धान करना आवश्यक है; क्योंकि इनके द्वारा निश्चय आत्मरुचि मई

---

* बङ्गाल विहार उड़ीसा प्राचीन स्मारक पृ० १३८

बढ़ते रहते हैं व फलते फूलते रहते हैं तब तक ये सजीव या सचित कहलाते हैं, जब ये सूख जाते हैं या हवा न पाकर मुरझा जाते हैं तब ये अजीव और अचित कहलाते हैं। खान की व खेत की गीली मिट्टी, कुए का पानी आदि सचित हैं। सूखी मिट्टी, गर्म पानी अचित हैं। वर्तमान सायंस ने पृथ्वी व बनस्पति (Vegetable) में जीवपने की सिद्धि करदी है। अभी तीन में नहीं की है सो यदि विज्ञान की उन्नति हुई तो इनमें भी प्रमाणित हो जायगी। जैन सिद्धान्त जो कहता है वह इस तरह पर है कि इनके चार प्राण होते है—१ स्पर्शन इन्द्रिय जिससे छूकर जानते हैं, १ काय बल, १ आयु, १ श्वासोछ्वास।

२. द्वीन्द्रिय जीव—जैसे लट, शङ्ख, कौड़ी आदि। इनके छः प्राण होते है। १ रसनाइन्द्रिय और १ वचनवल अधिक हो जाता है।

३. तेन्द्रिय जीव—जैसे चींटी, खटमल आदि। इनके सात प्राण हैं। घ्राण इन्द्रिय अधिक होजाती है।

४. चौइन्द्रिय जीव—जैसे मक्खी, भौंरा, पतङ्ग आदि। इनके आठ प्राण हैं। चक्षु इन्द्रिय अधिक होजाती है।

५. पचेन्द्रिय मन रहित—जैसे समुद्रके कोई २ जातिके सर्प। इनके ९ प्राण होते है। एक कर्ण इन्द्रिय अधिक हो जाती है।

६. पंचेन्द्रिय मन सहित—जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरा, कबूतर, काक, चील, मच्छ, सब आदमी, नारकी व देव। इनके १० प्राण होते हैं। एक मन बल अधिक हो जाता है।

जिससे तर्क वितर्क किया जावे व कारण कार्य का विचार किया जावे वह मन है। जो संकेत समझ सके व शिक्षा ग्रहण कर सके वह मनवाला पंचेन्द्रिय जीव है।

(२) यह जीव उपयोगवान है, ज्ञान दर्शन स्वरूप है। निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान दर्शन को रखता है। व्यवहारनय से मतिज्ञान आदि पांच ज्ञान- मति, श्रुत, विभग तीन अज्ञान तथा चक्षु-अचक्षु अवधि केवल, ये चार दर्शन रखता है। इसी से हम जीव को पहिचानते हैं। जैसे जो शास्त्र पढ़ता है वह श्रुतज्ञान का काम कर रहा है, इस से जीव है।

सामान्यपने अवलोकन को दर्शन कहते हैं, विशेष जानने को ज्ञान कहते हैं। आंख से देखना 'चक्षुदर्शन' है। आंख को छोडकर शेष चार इन्द्रिय व मनसे देखना 'अचक्षु दर्शन' है। आत्मा स्वय रूपी पदार्थ को जिससे देखे वह 'अवधि-दर्शन' है। जिससे सब देखा जावे वह 'केवल दर्शन' है। जब इन्द्रिय और पदार्थ की भेट होती है, तब दर्शन होता है: फिर जो जाना जाय वह ज्ञान है। ज्ञान का वर्णन प्रमाण-नयके अध्याय में किया गया है।

(३) यह जीव कर्त्ता है—निश्चयनय से यह अपने ज्ञान भाव व वीतराग भाव का ही कर्त्ता है, व्यवहार नयसे यह राग-द्वेष मोहादिभावों का कर्त्ता व उन भावों के निमित्त से पाप पुण्यमई कर्मों का बांधने वाला है व घटपट आदि का कर्त्ता है।

(४) यह जीव भोक्ता है—निश्चयनय से अपने शुद्ध-ज्ञानानन्द का भोगता है, व्यवहारनय से पाप पुण्य के फल रूप सुख दुःखों को भोगता है।

(५) यह जीव अमूर्तीक है—निश्चय नय से इसमें कोई स्पर्श, रस, गंध, वर्ण (जो गुण पमाणुओं में होते हैं) नहीं है. इससे यह अमूर्तीक है, परन्तु जड़ कर्म का वन्धन हरएक संसारी आत्मा के अंश अंश में है । इसलिये व्यवहारनय से यह मूर्तीक है।

(६) यह जीव आकारवान है—इस आकाश में जो कोई वस्तु जगह पायगी उसका आकार होना चाहिये। आकार लम्बाई चौड़ाई आदि को कहते हैं। जीव भी एक पदार्थ है, इसलिये आकारवान है; परन्तु यह आकार चेतनमई है, जड़ रूप नहीं है। निश्चयनय से एक जीव असंख्यात प्रदेश रखता है, अर्थात् तीन लोक के बराबर है। प्रदेश क्षेत्र का वह सबसे छोटा अंश है, जिस को एक अविभागी परमाणु घेरे । व्यवहारनय से यह शरीर के प्रमाण आकारवान है। छोटे शरीर में छोटा व बड़े में बडा हो जाता है। इस मे कर्म के फल के निमित्तसे सकुडना फैलना होता है। शरीरमें रहते हुए कभी शरीर से वाहर फैलकर आत्मा का आकार फैलता व फिर सकुड़ कर शरीर प्रमाण होजाता है, ऐसी दशाको समुद्घात कहते है। वेदना कषाय, आदि के निमित्त से कभी २ ऐसा हो जाता है। क्योंकि हम को सर्वांग स्पर्श का ज्ञान होता है व शरीर से वाहर स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है, इससे सिद्ध है कि हमारा आत्मा शरीर प्रमाण है।

समुद्घात सात होते हैं:—

१. वेदना—कष्ट को भोगते हुए शरीर से बाहर फैल कर हो जाना।

२. कषाय—क्रोधादि के निमित्त से फैलना।

३. मारणान्तिक—कोई कोई मरने के पहिले जहां जाना हो उस को फैल कर स्पर्श कर आता है. फिर मरता है।

४ वैक्रयिक—देव नारकी आदि अपने शरीर को छोटा बड़ा कर लेते व देवगण एक शरीर के अनेक शरीर बनाकर आत्माको फैलाकर प्रवेश कराते और काम लेते हैं।

५. तैजस—किसी मुनि के क्रोधवश बाएँ कन्धे से बिजली का शरीर आत्मा सहित निकलता है जो नगरादि को भस्म करता है; यह अशुभ तैजस है। किसी मुनि के दया वश दाहिने कन्धे से शुभ तैजस निकलता है जो दुःख के कारणों को मेट देता है, यह शुभ तैजसहै।

६. आहारक—किसी तपस्वी मुनि के मस्तक से एक स्वेत सूक्ष्म पुरुषाकार शरीर आत्मा सहित निकल कर शङ्का दूर करने व असंयम दूर करने के लिये किसी केवली व श्रुत-केवली के पास जाता है।

७ केवल—जिस अरहन्त परमात्मा के आयु कर्म की स्थिति कम हो व नाम, गोत्र, वेदनीय की स्थिति बहुत हो तो उनकी स्थिति को आयु की स्थिति के समान करने के लिये आत्मा के प्रदेश तीन लोक में फैलते हैं।

(७) यह जीव आप ही अपने पाप पुण्य के अनुसार संसार भ्रमण किया करता है।

(८) यही जीव यदि पुरुषार्थ करे तो स्वयं सिद्ध भी हो सकता है।

(६) यह जीव शरीर छोड़ने पर यदि शुद्धहो तो अग्नि की शिखा के समान ऊपर को जाता है और लोक के अग्रभाग में ध्यानाकार विराजमान रहता है, परन्तु संसारी जीव कर्म-

न्ध के कारण चार विदिशाओं को छोड कर ऊपर नीचे, र्व पश्चिम, दक्षिण उत्तर, ६ दिशाओं में अपनी २ गति में ाते है—टेढ़े नहीं जाते है। मरण के पीछे दूसरे शरीरमें जाते ुए टेढ़े नही जाते, सीधे ही जाते है। तीन दफ़े से अधिक ाहीं मुड़ते। ‡

ये जीव अनन्तानन्त है। हर एक जीव की सत्ता यानी ौजूदगी भिन्न २ रहती है। कोई किसी का खण्ड नहीं है, न ोई किसी से मिलता है। जीवों के दो भेद है—संसारी और ुक्त। दोनों ही अनेक है *

जैन सिद्धान्त मे जीव भी एक द्रव्य है।

२३. द्रव्य का स्वरूप

जो सत् हो अर्थात् जिसकी सत्ता अर्थात् मौजूदगी

---

‡ नौ विशेषणों की गाथा

जीवो उवओ गमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्स सोड्ढगई॥ २॥
जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं॥ १२२॥
(द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय)

भावार्थ—यह जीव सर्व पदार्थों को देखता जानता है। ाह संसारी जीव सुख चाहता है, दुःखों से डरता है, ापना स्वयं भला या बुरा करता है व स्वयं उन का फल ोगता है।

* संसारिणो मुक्ताश्च॥ १०॥ (तत्वा० सू० अ० २)

सदा बनी रहे, उसको द्रव्य कहते हैं। सत् उसे कहते हैं जिसमें एक ही समय में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पाये जावें-अर्थात् जिस में पिछली अवस्था का नाश होकर नई अवस्था जन्मे, तो भी मूल द्रव्य बनी रहे। जैसे स्वर्ण का कड़ा तोड़ कर कुण्डल बनाया. इस में कड़े की अवस्था का नाश होकर ही कुण्डल जन्मा है, परन्तु स्वर्ण बना ही रहा। अथवा जैसे कोई बालक युवा हुआ: यहाँ बालक अवस्था का व्यय, युवा अवस्था का जन्म तथा ध्रौव्य वह मनुष्य जीव है। एक चने के दाने को जिस समय मसल कर चूरा जाता है, उसी समय चनेपन का नाश, चूरेपन का जन्म होता है व जो पर-माणु चने के थे वे उसके आटे में मौजूद हैं।

हरएक द्रव्य द्रवणशील है, परिणमन शील है--अर्थात् अवस्थाओं को बदलता है। जिस मे अवस्था नहीं बदले, वह द्रव्य किसी कामको नहीं कर सकता। यदि जीव कूटस्थ नित्य हो तो अशुद्ध से कभी शुद्ध नही हो सकता व यदि परमाणु कूटस्थनित्य हो तो उससे मिट्टी, पानी, हवा, वनस्पति आदि नही बन सकते। यदि अवस्था बदलते हुए मूल वस्तु नष्ट हो जावे तो कोई भी वस्तु नही ठहर सके। इस कारण द्रव्य को गुणपर्यायवान् भी कहते हैं।

गुण द्रव्यके भीतर व्यापक उसके साथ सदा पाये जाते हैं। उन्ही गुणों में जो अवस्थायें बदलती हैं उनको पर्याय

कहते हैं, जो क्रम क्रम से होती हैं। गुणो का और उनके समुदायरूप द्रव्यका सदा ध्रौव्य या अविनाशीपना रहता है, किंतु पर्यायों में उत्पाद व्यय होता रहता है †

ऐसे मूल द्रव्य इस लोकमें छः प्रकार के हैं। जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काय, इनमें जीव चेतन है; शेष पांच अचेतन हैं।

२४. द्रव्यों के सामान्यगुण

इन छः प्रकार के द्रव्योंमें कुछ गुण ऐसे हैं जो हर एक द्रव्य में पाये जाते हैं। उनको सामान्य गुण (Common qualities) कहते हैं। उन में से प्रसिद्ध निम्न छः हैं :—

(१) अस्तित्वगुण–जिस से द्रव्य अपनी सत्ता सदा रखता है।

(२) वस्तुत्वगुण–जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अनेक गुण व पर्याय निवास करते हैं।

(३) द्रव्यत्वगुण–जिससे द्रव्य परिणमन किया करता है। या अवस्थायें बदलता है।

(४) प्रदेशत्वगुण–जिससे द्रव्य कोई न कोई आकार रखता है।

---

† दव्वं सल्लक्खणिय उप्पाद व्ययधुवत्त संजुत्तं।
गुण पज्ज वा जंतं भणंति सव्वण्हू ॥ १० ॥
(पंचास्तिकाय)

भावार्थ–द्रव्य का लक्षण सत् है सो उत्पाद, व्यय, ध्रुवपनेकर सहित है। उसीको गुणपर्यायवान् सर्वज्ञ देव कहते हैं।

(५) अगुरुलघुत्वगुण–जिस से द्रव्य अपने स्वभाव को कभी हीन व अधिक नहीं करता है, जितने गुण हैं उनको अपने में बनाये रखता है व जिसके कारण एक गुण या पर्याय दूसरे गुण या पर्याय रूप नहीं हो सकता।

(६) प्रमेयत्वगुण–जिससे द्रव्य किसी के द्वारा जाना जा सके।

२५. जीव द्रव्य के विशेष गुण

जीव द्रव्य के विशेष गुण चेतना अर्थात् ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य्य, चारित्र या वीतरागता, सम्यक्त्व या सच्चा श्रद्धान आदि हैं।

हरएक जीव स्वभाव से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तसुखी, अनन्तबली, परमशान्त, परमश्रद्धावान है। *

ये गुण सिवाय जीवों के और पांच द्रव्यों में से किसी मे नहीं पाये जाते हैं। संसारी जीवो में कर्मों के बन्धन होने के कारण ये विशेष गुण पूर्ण प्रकट नहीं होते।

२६. जीव की तीन प्रकार अवस्था

इस जगतमें जीवोंकी निम्न तीन अवस्थाऐं होती हैं:—

---

* सुद्ध सचेयण बुद्ध जिण, केवलणाण सहाउ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु, जइ चाहउ सिवलाहु ॥३६॥
(योगसार)

भावार्थ—आत्मा शुद्ध चेतनामय, बुद्ध, वीतरागी, केवलज्ञान स्वभाव है। जो मोक्ष चाहते हो तो रात दिन इसी का मनन करो।

१ बहिरात्मा जो शरीर आदि रूप व क्रोधादिरूप व अज्ञान व अल्प-ज्ञानरूप अपने आत्मा को जानते हैं तथा जो संसार के सुखों में रागी हैं; सच्चे परमात्मा या आत्मा को नहीं जानते हैं ।

२ अन्तरात्मा—जो अपने आत्मा को पहिचानते हैं, अतीन्द्रिय स्वाधीन आनन्द के खोजी है, संसार शरीर भोगों से विरक्त हैं । यदि गृह में रहते है तो जल में कमल समान उदासीन रहते हैं । यदि साधु होजाते है तो सर्व धनादि परिग्रह छोड़ आत्मध्यानरूपी यज्ञमें कर्मोंका होम करते हैं । इन्हीं को महात्मा कहते हैं ।

३. परमात्मा—जो शुद्ध आत्मा हैं, जगत के प्रपञ्च जाल व चिंता से रहित हैं, जिनके ज्ञानमें सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायें झलक रही हैं तो भी दीप शिखाके समान किसी से प्रीति अप्रीति नहीं करते; निरन्तर स्वात्मानन्द में मग्न रहते हैं ।*

---

* बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्व देहिषु ।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥ ४ ॥
बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः ।
चित्तदोषात्म विभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः ॥ ५ ॥

(समाधिशतक)

भावार्थ—आत्माके तीन भेद हैं, बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा । इनमें से अन्तरात्मा होकर व बहिरात्मापना त्याग कर परमात्मा होने का यत्न करो ।

जो शरीरादि में आत्माका भ्रम रखता है वह बहिरात्मा है, जो रागादि से भिन्न आत्मा को जानता है वह अन्तरात्मा है, जो परम शुद्ध है वह परमात्मा है ।

२७. परमात्मा अनन्त हैं

परमात्मा एक नहीं है, किन्तु अनन्त है। क्योंकि इस अनादि अनन्त जगत में जो कोई आत्मा अपने को शुद्ध कर लेता है वही परमात्मा के पद में पहुँच जाता है। इसलिये अनन्त परमात्मा भिन्न २ अपने २ ज्ञानानन्द में इस तरह मग्न रहते हैं जिस तरह अनेक साधु एक स्थल पर बैठे आत्मध्यान कर रहे हों। यद्यपि गुणों की अपेक्षा सब बराबर हैं। सबही अनन्तज्ञानी, वीतरागी, परमसुखी हैं, तथापि अपनी २ सत्ता की अपेक्षा भिन्न २ हैं। भक्त जन चाहे एक परमात्मा को, चाहे अनेक परमात्माओं को लक्ष्य कर भक्ति करें, उनके भावों मे शुद्धिरूप फल समान होगा; क्योंकि गुणों की ही भक्ति से गुणों की निर्मलता होती है। †

२८. जगत का कर्ता व सुख दुःख के फल का दाता परमात्मा नहीं हो सकता

परमात्मा शुद्ध स्वात्मानन्द में लय रहते है। उनके भाव में संकल्प विकल्प उठ ही नही सकते, क्योंकि जहां विचार की तरङ्गें होंगी, वहां आत्मसमाधि नही रहेगी और न आत्मानन्द का भोग होगा।

---

† णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा जे एरिसा होंति ॥७२॥
(नियमसार)

भावार्थ-आठों कर्म रहित व आठ महागुण सहित अविनाशी अनन्त सिद्ध लोकके अग्रभाग में विराजित रहते है।

संकल्पादि मनके द्वारा होते हैं। परमात्मा के न मन है, न वचन है, न काय। तब फिर " जगत को बनाऊँ व किसी को सुख दुःख दूं " यह भाव कैसे शुद्ध, निरंजन आत्मा में उठ सकता है?

परमात्मा कृतार्थ है। उसके कोई शुभ अशुभ कामना नहीं उठ सकती है। यदि परमात्माको-कर्ता माना जावे तो किसी समय जगत के प्रवाह का अभाव मानना पड़ेगा, क्योंकि जो नहीं होता है वही किया जाता है। सो अनादि अनंत चलने वाला जगत अपनी विचित्रता को छोड कर कभी एक रूप नहीं था; न हो सकता है।

जो परमात्मा को जगत कर्ता मानते हैं वे उसको सर्व-व्यापक और निराकार मानते हैं। सर्वव्यापक में हलन चलन नहीं हो सकता; निराकार से साकार नहीं हो सकता। निर्विकार के इच्छा नहीं हो सकती। इसी तरह परमात्मा को न्याय करके सुखदुःख देने की भी ज़रूरत नहीं है। जो ऐसा मानते हैं वे परमात्मा को राजा के समान व अपने को प्रजा के समान मानकर कहते है। यदि कोई सर्व शक्तिमान, न्यायी, दयावान व सर्व-व्यापक सर्वज्ञ परमात्मा राजाके समान जगत का शासन करे तो जगत में कोई कुमार्ग में नहीं जा सकता, क्योंकि वह ज्ञानबल से प्रजाके मनकी बात जान-कर अपनी विचित्र शक्ति से उसके मनको फेर देवे। जैसे राजा किसी को यह जानकर कि यह प्रजा द्रोही है, तुरन्त उसको रोक देते हैं। यदि वह दयावान व शक्तिशाली होकर रोके नहीं, पीछे दण्ड देदे, तो यह बात राज्यधर्म के विरुद्ध है। क्योंकि कुमार्ग का प्रचार जगतमें बहुत अधिक है; इससे सिद्ध

होता है कि परमात्मा हमारे बीचमें अपने को नहीं उलझाता है। हम जैसे स्वयं अग्नि उठाते व स्वयं जलते हैं, स्वयं नशा पीते व स्वय बेहोश हो जाते हैं, वैसे ही संसारी जीव स्वयं पाप पुण्य बांधते व स्वयं उनका फल पाते रहते है । परमात्मा न कर्त्ता है, न भोगादि दण्ड देता है। *

२६. अजीवतत्व-पांचद्रव्य

'जिस में चेतना नहीं है, वह अजीव है। अजीवतत्व में पाँच द्रव्य गर्भित हैं—१ पुद्गल २ धर्मास्तिकाय ३. अधर्मास्तिकाय ४. आकाश और ५ काल। इन में केवल पुद्गल ही मूर्तीक है। शेष चार अमूर्तीक हैं।

---

* स्वयंसृजति चेत्प्रजाः किमितिदैत्यविध्वंसनं
सुदुष्टजन निग्रहार्थमिति चेदसृष्टिर्वरम् ।
कृतात्म करणीयकस्य जगतां कृतिर्निष्फला
स्वभावइति चेन्मृषा सहि सुदुष्ट एवाऽऽप्यते ॥ ३३ ॥
(पात्रकेसरि स्तोत्र)

भावार्थ—यदि परमात्मा स्वयं प्रजाको पैदा करता है तो फिर असुरों का विध्वंस क्यो करता है ? यदि कहो कि दुष्टों के निग्रह व सुष्टों के पालन के लिये तो यही ठीक था कि वह उनकी रचना ही नहीं करता। जो कृतकृत्य होते हैं उनसे जगत का बनना यह बेमतलब काम है। कोई बुद्धिमान प्रयोजन बिना कोई काम नहीं करता। यदि कहो कि उसका स्वभाव है यह भी मिथ्या ही है क्योंकि सर्जन, पालन, नाश, विना रागादि दोष के नहीं हो सकता: सो परमात्मा में संभव नही हैं ।

१. जिस में रूखा, चिकना, ठंडा, गर्म, हलका, भारी नरम, कठोर, ये आठ स्पर्श व सफ़ेद, काला, पीला, लाल नीला, ऐसे पांच वर्ण व खट्टा, मीठा, चर्परा, तीखा, कषायला, ये ५ रस व सुगंन्ध दुर्गंध- यह दो गंध. ये बीस गुणकी अवस्थायें पाई जावें, उसको पुद्गल कहते हैं। ये ही स्पर्श, रस गंध, वर्ण, पुद्गल के विशेष गुण हैं।

जो कुछ हम अपनी पांचों इन्द्रियों से ग्रहण करते है सब पुद्गल है। ये पांचों इन्द्रियां और यह हमारा शरीर भी पुद्गल है, कर्मों का बन्धन भी पुद्गल रूप है। कर्मवर्गणाएं अनन्त परमाणुओं के बने हुए स्कन्ध है, सूक्ष्म हैं। इससे इन्द्रियगोचर नहीं हैं। इन्हीं से कर्म बनते है। बहुत से सूक्ष्म पुद्गल इंद्रियों से नहीं ग्रहण मे आते हैं।

२ धर्मास्तिकाय-यह लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिस का विशेष गुण जब जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से गमन करें तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

३ अधर्मास्तिकाय-एक लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है जिस का विशेष गुण जब जीव पुद्गल अपनी शक्ति से ठहरते हैं तब बिना प्रेरणा के उनकी सहाय करना है।

४. आकाश-एक सबसे बड़ा अनंत अमूर्तीक द्रव्य है. जिस का विशेष गुण सर्व द्रव्यों को उदासीन भाव से स्थान देना है।

५. कालद्रव्य-अमूर्तीक एक परमाणु या प्रदेशके बराबर गणना में असंख्यात हैं। इनको कालाणु भी कहते हैं। इन का विशेष गुण सब द्रव्यों की अवस्थाओं के पलटने में उदासीन भावसे सहायक होना है। समय, विपल, पल आदि इसकाल

द्रव्य की पर्यायें या अवस्थायें हैं जिन को व्यवहार काल कहते हैं ।

नोट—काल द्रव्य और उस की पर्यायों की विस्तृत व्याख्या आदि जानने के लिये देखो "श्री वृहत् जैन शब्दार्णव" भाग १ मे शब्द 'अङ्क-विद्या' का नोट ८, पृष्ठ ११० से ११३ तक।

जीव और पुद्गल तो हमको प्रत्यक्ष प्रगट हैं,परतु चार द्रव्यों का ज्ञान होने के लिए हमको इस सिद्धान्त पर विचार करना चाहिये कि जगत में हर एक काम के लिये उपादान और निमित्त दो कारणों की आवश्यक्ता पड़ती है। जो स्वयं कार्यमें परिणमन करता है उसे उपादान कारण व जो उसके सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे सुवर्ण की मुद्रिका बनी; इस में सुवर्ण उपादान कारण है और सुनार के औज़ार आदि निमित्त कारण हैं।

जीव और पुद्गल हलन चलन करते हैं और ठहरते हैं, स्थान पाते हैं तथा अवस्थाओं को बदलते हैं । जैसे एक आदमी या एक पक्षी चलता है, चलते २ रुकता है, जगह पाता है व हर समय अवस्था बदलता है। धूला कभी उड़ता है. कभी ठहरता है, जगह पाता है या अवस्था को बदलता है: ये चार काम वे दोनों अपनी ही शक्ति से करते हैं । इस लिये इनके उपादान कारण तो ये स्वयं हैं और निमित्त कारण चार भिन्न २ कार्यों के चार द्रव्य हैं; सो क्रमसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय. आकाश और काल हैं। लोकाकाश मर्यादा रूप है। आकाश अनन्त है। यदि धर्म अधर्म द्रव्य न माने जावें तो जीव और पुद्गल एक लोक की मर्यादा में न रह

कर अनन्त आकाश में बिखर जावेंगे। * क्योंकि आकाश अनन्त होने से वे जीव तथा पुद्गल चलते २ अनन्त आकाश में जा सकते हैं। परन्तु वे नही जाते, क्योंकि जहां तक जगत है वहां तक ही धर्म अधर्म द्रव्य है. इसलिए जगत में ही चलते व ठहरते है।

३०. पाँच अस्तिकाय–विभाववान् और क्रियावांद् दो द्रव्य

हर एक द्रव्य में एक सामान्य गुण प्रदेशत्व है जिससे हर एक द्रव्य का कुछ न कुछ आकार होता है। द्रव्यों का आकार नापने के लिए प्रदेश एक माप है। जितने आकाश को पुद्गल का वह परमाणु जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता रोकता है, उसको प्रदेश कहते हैं। इस माप से नापा जावे तो हर एक जीव में असंख्यात प्रदेश, धर्म द्रव्य में असंख्यात,

---

* स्पर्श रस गन्ध वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ अ० ५ ॥
गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ अ० ५ ॥
आकाशस्यावगाहः ॥ १८ अ० ५ ॥
वर्तनापरिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य ॥२२ अ० ५॥
(तत्वार्थ सूत्र)

भावार्थ–जिसमें स्पर्श रस, गन्ध, वर्ण हों वे पुद्गल हैं। गमन कराना धर्म का व स्थिति कराना अधर्म का व अवकाश देना आकाश का गुण है, पलटाना काल का गुण है। अवस्था चाल तथा कमती बढ़ती समय लगने से व्यवहार-काल का ज्ञान होता है।

अधर्म मे असंख्यात और आकाश में अनन्त प्रदेश है। लोक के भी असंख्यात प्रदेश हैं। इसी के बराबर धर्म अधर्म व एक जीव के प्रदेश हैं।

पुद्गलका सबसे छोटा हिस्सा परमाणु होता है, परन्तु बहुत से परमाणु मिलकर स्कन्ध बनते हैं। वे स्कन्ध कोई संख्यात, कोई असंख्यात, कोई अनन्त परमाणुओं के होते है, इस से पुद्गल के तीन प्रकार प्रदेश होते है। क्योंकि जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश मे एक से अधिक प्रदेश होते है। इसलिए इन पांच को जैन सिद्धान्त में अस्तिकाय कहा है।

काल द्रव्य लोकके एक २ प्रदेश में अलग अलग रत्नो के समान फैले हुए हैं। इसलिये वे सब एक प्रदेशी ही हैं, यद्यपि गणना में असंख्यात है। अतएव काल द्रव्य को काय मे नहीं गिना है। यह ध्यान में रहे कि जैन सिद्धान्त मे माप २१ तरह की बताई है। किसी हद् तक संख्यातके जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट भेद समाप्त हो जाते हैं। फिर असंख्यातके ९ भेद फिर अनन्त के ९ भेद होते हैं। सब से बड़ी संख्या उत्कृष्ट अन-न्तानन्त है।

नोट—संख्यात, असंख्यात और अनन्त की विस्तृत व्याख्या व भेदादि जानने के लिये देखो "श्री बृहत् जैन शब्दा-र्णव" भाग १ में शब्द 'अङ्कगणना', पृष्ठ ८९ से १०३ तक।

इन छः द्रव्योंमें धर्म अधर्म, आकाश एक एक हैं, काल असंख्यात है। जीव और पुद्गल अनन्त हैं। चार द्रव्य स्थिर रहते हैं. केवल जीव पुद्गल में ही हलन चलन क्रिया होती है। इसलिये ये ही क्रियावान हैं तथा इनही मे वैभाविक शक्ति

है। संसारी जीव कर्म-बन्ध के निमित्त से रागद्वेषादि विभाव भावों में परिणमन कर जाते हैं। जैसे स्फटिक मणि लाल, पीले डांक के सम्बन्ध से लाल, पीले रङ्ग रूप परिणमन कर जाती है तथा पुद्गल जीव के रागद्वेषादिभावों का निमित्त पाकर आठ कर्मरूप होजाते हैं व पुद्गल के परमाणु चिकना पन, रूखापन तथा परस्पर मिलने रूप कारणों से स्कन्ध रूप होजाते हैं। स्कन्ध टूटकर फिर परमाणु होजाते हैं। इस तरह जीव पुद्गल में ही विभावपना होता है, शेष चार द्रव्य अपने स्वभावमें ही स्वभावरूप सदृश परिणमन करते हुए ही रहते हैं। यदि जीव पुद्गलमें विभावरूप होनेकी शक्ति नहीं होतो तो संसार न होता। न संसार का त्याग कर मोक्ष होता।※

※ प्रदेश

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणु वट्टद्धं।
तं खु पदेसंजाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

भावार्थ–जितने आकाशको अविभागी पुद्गल परमाणु घेरे, उसको प्रदेश जानो। इस में सूक्ष्म अनेक परमाणु भी समा सकते हैं। जैसे जहाँ एक दीप प्रकाश हो, वहाँ अनेक दीप प्रकाश भी समा सकते हैं।

प्रदेश की संख्याः—

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

भावार्थ–एक जीव, धर्म, अधर्म में असंख्य, आकाश में अनन्त, पुद्गल में तीन प्रकार प्रदेश होते हैं। काल का एक ही प्रदेश है इससे काय नहीं है। (द्रव्य संग्रह)

२१. पुद्गल के अनेक भेद कैसे बनते हैं

पुद्गलके मूल भेद दो हैं। परमाणु और स्कन्ध। परमाणु अविभागी होता है, उस में एक समय में ५ विशेष गुण झलकते हैं। ठण्डा गरम में से एक, रूखे चिकने में से एक, एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण। दो या अधिक परमाणुओं के मिलने पर स्कन्ध या बड़े स्कन्ध से छूटकर छोटे स्कन्ध बनते रहते हैं। परमाणु या स्कन्ध जब दूसरे परमाणु या स्कंध से बँधते हैं तब रूखे या चिकने गुण के कारण से बँधते हैं। जब चिकनाई या रूखेपन का अन्श एक दूसरे से दो अँश अधिक होगा तब रूखा रूखे से, चिकना चिकने से व रूखा चिकने से बँधकर एक मेल हो जायगा व जिसमें अधिक गुण होंगे वह दूसरे को अपने रूप कर लेगा। एक अँश चिकनाई

भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीव पुद्गलौ।
तौच शेष चतुष्कंच षडेते भाव संस्कृताः ॥ २५ ॥

भावार्थ–जीव पुद्गल क्रियावान (चलनरूप) भी है और परिणमन शील भी है। शेष चार केवल भाववान है, क्रियावान नही है।

अस्ति वैभाविकी शक्तिस्तत्तद् द्रव्योप जीविनी ॥ ७४ ॥
(पंचाध्यायी अ० ८)

भावार्थ--पुद्गल जीव में वैभाविकी शक्ति है।

या रूखापन जिस परमाणु में जिस समय रहेगा वह किसी से बँधेगा नहीं। जैसे किसी स्कन्ध में ७६० अन्श चिकनाई है, दूसरे में ७६२ अन्श है, तब ही ये दोनों मिलकर एकबन्ध रूप हो जायगे। *

इसी बन्ध के नियम से अनेक जाति के स्कन्ध बनते रहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के परमाणु भिन्न २ नहीं हैं। मूल पुद्गल परमाणुओं से बने हुए ही यह विचित्र स्कन्ध है तथा यह परस्पर बदल जाते हैं। जैसे हैड्रोजन आक्सीजन हवा मिलकर जल होजाता है व जल से हवा होजाती है, पानी जम कर सख़्त बर्फ होजाना है, बर्फ़ का पानी हो जाता है। मेघ की बूंद सीपके पेटमें पड़कर पृथ्वीकाय मोती बन जाता है, इत्यादि।

हर एक स्कन्ध में एक समय में सात गुण पाये जाते हलका या भारी, रूखा या चिकना, ठण्डा या गर्म, नर्म या कठोर: ऐसे ४ स्पर्श, रस १, गन्ध १, वर्ण १। इस बंध के नियमानुसार हमें ६ तरह के स्कन्ध प्रगट दीखते हैं।

---

* वर्तमान सायंसको यह पता लगाना है कि चिकनाई या रूखे पने के अंशों की जाँच कैसे की जावे। स्वाभाविक नियम जैन शास्त्रों मे ऐसा कहा है—

णिद्धावा लुक्खा वा अणु परिणामा समावा विसमा वा।
समदो दुराधिगाजदि वज्झन्तिहि आदि परिहीणा॥

(प्रवचनसार अ० २ गा० ७३)

भावार्थ—चिकने या रूखे परमाणु सम या विसम हों दो गुण अधिक होने से बंध जाते हैं। जघन्यगुण वाला नहीं बँधता है। आठ दश आदि सम, नौ सात आदि विसम हैं।

१—स्थूल स्थूल (Solid) जो टुकड़े होने पर बिना तीसरी चीज के न मिलें। जैसे पत्थर, लकड़ी कागज़।

२—स्थूल द्रव्यपदार्थ (Liquids) जो अलग करने पर मिल जावें। जैसे दूध, पानी, शरबत।

३—स्थूल सूक्ष्म—जो आंखों से दीखे, परन्तु हाथों से न पकड़ा जासके। जैसे धूप, छाया, प्रकाश।

४—सूक्ष्म स्थूल-जो आँखों से न दीखे, परन्तु और इन्द्रियों से जाना जावे। जैसे हवा, शब्द आदि।

५—सूक्ष्म-जो किसी भी इन्द्रिय से न जाना जावे। उनके कार्यों से उनका अनुमान किया जाय। जैसे तैजस वर्गणा (Electric Molecule) कार्मण वर्गणा (Karmic Molecule) आदि।

६—सूक्ष्मसूक्ष्म भेद पुद्गल का परमाणु है।‡

---

‡ बादर बादर बादर बादर सुहमंच सुहम थूलंच।

सुहमञ्च सुहम सुहमं धरादियं होदि छब्भेय ॥ ६०२ ॥

(गोम्मटसार जीवकाण्ड ७२)

इस गाथा का अर्थ ऊपर आगया।

सद्दो बन्धो सुहमो थूलो सठाण भेद तम छाया।

उज्जोदादव सहिया पुग्गल दव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

(द्रव्य संग्रह)

भावार्थ—शब्द, बँध, सूक्ष्म, स्थूल, शरीराकार, खण्ड, अन्धकार, छाया, उद्योत, आतप, ये दश पुद्गल की अवस्थाओं के दृष्टान्त हैं।

इन्हीं स्कन्धों के २२ भेद गोम्मटसार में कहे हैं, उनमें से पाँच प्रकार के स्कन्धों से हमारा ख़ास सम्बन्ध है जिनका वर्णन आगे है।

३२. पुद्गलमय पाँच शरीरों के कार्य

संसारी जीवों के निम्न लिखित पांच तरह के शरीर होते हैं :—

औदारिक—जो एकेन्द्रिय से ले मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों (पशुओं) तक के स्थूल शरीर हैं।

वैक्रियिक—जो बदला जासके; यह देव और नारकियों का स्थूल शरीर है।

आहारक—यह श्वेत रङ्ग का पुरुषाकार एक हाथ ऊँचा किसी तपस्वी मुनि के दशम द्वार मस्तक से निकल कर केवली महाराज के दर्शन को जाकर लौट आता है।

ये तीन शरीर आहारक वर्गणाओं से बनते हैं।

तैजस—एक बिजलीमई सूक्ष्म शरीर है, जो सर्व संसारी जीवों के पाया जाता है। यह तैजस वर्गणाओं से बनता है।

कार्माण—यह पाप पुण्यरूप आठकर्म मई सूक्ष्मशरीर सर्वसंसारी जीवों के कार्मण वर्गणा से बनता रहता है।

इस समय हमारे पास तीन शरीर हैं। औदारिक जिस के छूटने का नाम ही मरण है। तैजस और कार्माण ये प्रवाहरूप से साथ २ रहते हैं; मुक्ति होते हुए ही छूटते हैं।

ये पांचों शरीर एक दूसरे से सूक्ष्म हैं, परन्तु परमाणु अधिक २ हैं। तैजस व कार्मण दो शरीरों को लिये हुए जीव एक स्थूल शरीर से दूसरेमें एक या दो या तीन समयके बीच में लगातार बिना किसी रुकावट के तुरन्त पहुंच जाते हैं। सबसे छोटे कालको समय कहते हैं। जितनी देर में एक परमाणु एक कालाणु से पासवाली कालाणु पर मन्दगति से जाता है वह समय है। एक पलक मारने में असंख्यात समय बीत जाते हैं। ※

३३. मन और वाणी का निर्माण

जीवों के शब्द व वचन भी भाषावर्गणा जाति के स्कन्धों से बनते हैं। ये स्कन्ध भी सर्वत्र फैले हुए हैं। हमारे होठ तालु के सम्बन्ध से भाषावर्गणा से शब्द बनजाते हैं तथा उनकी तरङ्गे वहां तक जाती हैं जहां तक धक्का अपना बल रखता है। शब्द भी मूर्तीक जड़ है, क्योंकि वह रुक जाता है। ऐसा ही सायन्स ने भी सिद्ध किया है। मन आंख कान की तरह एक विशेष कमल के आकार हृदय के स्थान में मनोवर्गणा जाति के पुद्गल स्कन्धों से बनता है जो बहुत सूक्ष्म हैं व लोक में भरे हैं। जिन जीवों के यह मन होता है वे ही

※ औदारिक वैक्रियिकाहारक तैजस कार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥ परम् परम् सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥ प्रदेशतोऽसंख्येय गुणम् प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥ अनन्त गुणेपरे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादि सम्बन्धेच ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥
(त० सू० अ० २)

इसके द्वारा तर्क वितर्क कर सकते है व शिक्षादि ग्रहण कर सकते हैं। ‡

३४. आस्रव तत्व

जिन आत्मा के भावों से व हरकतों से पाप पुण्य मई कार्मण वर्गणा खिंचकर बँध के लिये आती है उनको भावास्रव कहते है और कर्मवर्गणाओं का जो आगमन है उसको द्रव्यास्रव कहते हैं। ‡‡

---

‡ शरीर वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १७ ॥
(त० सू० अ० ५)

भावार्थ—शरीर, वाणी, मन, स्वासोच्छ्वास बनाना पुद्गलों का काम है।

विकसिताष्टदल पद्माकारेण हृदयान्तर्भागे भवति, तत्परिणमण कारण मनोवर्गणा स्कन्धानाम् आगमनात्।
(गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा २२६ संस्कृत टीका)

द्रव्य मन खिले हुए आठ पत्तों वाले कमल के आकार हृदय के अन्दर होता है। उस मन के बनने के कारण मनोवर्गणा जाति के स्कन्ध आते हैं।

द्रव्यमनःपुद्गलाः मनस्त्वेन परिणताइति पौद्गलिकम्।
(सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सू० १६)

जो पुद्गल मनरूप से परिणमन करते हैं उन को द्रव्य मन कहते हैं। ऐसा ही कथन राजवार्तिक में इसी सूत्र की व्याख्या में है।

‡‡ आसवदि जेणकम्मंपरिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥ २६ ॥
(द्रव्यसंग्रह)

भावास्रव के पांच मुख्य भेद हैं —

(१) मिथ्यात्व—झूठा विश्वास । इसके पांच भेद हैं :—

१. एकान्त—पदार्थ में नित्य अनित्य दो स्वभाव होने पर भी एक ही मानना । आत्मा को सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध ही मानना ।

२. विनय—सत्य असत्य का ज्ञान न करके सर्वही विरोधी सिद्धान्तों से अपना लाभ मानके उनकी विनय करना । जैसे विना विचारे अरहन्त, बुद्ध, कृष्ण, शिव सब ही को पूजना ।

३. संशय—यह शङ्का रखनी कि जैन सिद्धान्त ठीक है या बौद्ध या सांख्य या नैयायिक । किसी का भी विश्वास न होना ।

४. विपरीत—विल्कुल धर्म विरुद्ध बात में धर्म मान लेना । जैसे पशुओं की बलि से पुण्य होना ।

५. अज्ञान—धर्म के सिद्धान्त को समझने की चेष्टा न कर के देखा देखी मूर्खता से धर्म में चलना ।

यह पाँच तरह का मिथ्यात्व प्रगट है तथा शुद्धज्ञानान्दमई आत्मा का विश्वास न कर के सांसारिक विषय सुख की श्रद्धा रखनी भी मिथ्यात्व है ।

(२) अविरति—पांच प्रकार है—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, पदार्थों में ममता या परिग्रह ।

(३) प्रमाद—आत्महित में अनादर, इस प्रमाद के भेद १५ भेदों में से ८० प्रकार बनते हैं-५ इन्द्रिय, ४ क्रोधादि कषाय, ४ विकथा (स्त्री, भोजन, देश, राजा), १ निद्रा, १ स्नेह ।

इनको परस्पर गुणा करनेसे ८० भेद होते हैं। १ प्रमाद भाव में १ इन्द्रिय, १ कषाय, १ विकथा तथा निद्रा और स्नेह ये पांचों पाये जावेंगे। जैसे किसी ने जिह्वा के लोभ से चोरी करने का भाव किया, इस में जिह्वा इन्द्रिय, लोभ कषाय, भोजन विकथा, निद्रा व स्नेह पांचों हैं।

(४) कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ; चार प्रकार।

(५) योग—तीन प्रकार मन, वचन, काय का हलन चलन।

इस तरह भावास्रव के ३२ भेद हैं। *

वास्तवमें आत्मा में एक योग शक्ति है जो पुद्गलों को खींचती है। जिस समय मन, वचन, काय की क्रियां होती हैं उसी समय आत्मा सकम्प हो जाता है तब ही योग शक्ति मिथ्यात्व आदि के कारण से विशेषरूप होती हुई कर्मों को और नो कर्मों (औदारिक आदि के बनने योग्य स्कन्धों) को खींच लेती है।

३५. बन्धतत्व

जिन आत्मा के भावों व हरकतों से कर्म वर्गणायें जो बँधने को आई हैं आत्मा के पूर्व में बँधे हुए कर्मों के साथ मिलकर आत्मा के प्रदेशों में ठहर जाती हैं उनको भावबन्ध

---

* मिच्छत्ता विरदिपमाद जोगकोहादओऽथविण्णेया।
पण पण पण दह तिय चदु कमसोभेदादु पुव्वस्स ॥३०॥
(द्रव्य संग्रह)

व कर्मों का बँधरूप होकर ठहर जाने को द्रव्यबन्ध कहते हैं।*

इस बंधके चार भेद है। (१) प्रकृति बंध—जो कर्म बँधते है उनमे अपने काम करनेका स्वभाव पड़ना। ऐसी प्रकृतियां मूल आठ हैं व उनके भेद १४८ हैं। (२) प्रदेश-बंध—जो कर्म जिस प्रकृतिके बँधे उनमें वर्गणाओंकी संख्या होना। (३) स्थिति बंध—कर्मों का बंध किसी काल की मर्यादा के लिए होना। (४) अनुभाग बन्ध—फल देते समय तीव्र या मन्दफल देना। मन, वचन, काय योगों के निमित्ति से आत्मा के सकम्प होते हुए योग शक्ति के द्वारा तो पहिले दो वन्ध और क्रोधादि कषाय की तीव्रता या मन्दता के अनुसार पिछले दो वन्ध होते हैं।†

३६. आठ कर्म प्रकृति व १४८ भेद

मूल कर्म प्रकृतियां आठ हैं—(१) ज्ञानावरण जो आत्मा के ज्ञान गुणको ढके (२) दर्शनावरण जो आत्मा के दर्शन (सामान्यपने देखने) गुण को ढके (३) वेदनीय जो सांसारिक सुख दुःखों की सामग्री जोड़कर सुख दुःख का

---

* वज्झदि कम्मं जेण दु चेदण भावेण भावबंधोसो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

† पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥
(द्रव्यसंग्रह)

भोग करावे (४) मोहनीय जो आत्माके श्रद्धान और चारित्र [शान्ति] को बिगाड़े (५) आयु जो किसी शरीरमें आत्मा को रोक रक्खे (६) नाम जो शरीर की अच्छी बुरी रचना करे। (७) गोत्र जो ऊँच नीच कुल में जन्म करावे। (८) अन्तराय जो लाभ, भोग, उपभोग, दान व आत्मा के उत्साह या वीर्य में विघ्न करे।

इनमें से नं० १, २, ४ व ८ को घातिया कर्म कहते हैं क्योंकि ये चारों आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सम्यग्दर्शन और चारित्र तथा आत्मबल के गुणों का नाश करते हैं। शेष चार बाहरी सामग्री जोड़ते हैं इस लिए वे अघातिया हैं।

इन के १४८ भेद इस तरह से हैं :—

[१] ज्ञानावरण के पांच भेद--१. मतिज्ञानावरण २ श्रुत ज्ञानावरण ३. अवधि ज्ञानावरण ४. मन पर्यय ज्ञानावरण ५. केवल ज्ञानावरण। ये क्रम से मति आदि ज्ञानों को ढकती हैं।

[२] दर्शनावरण की ९ प्रकृतियां—६. चक्षुर्दर्शनावरण जो आँखों से सामान्य निराकार दर्शन को रोके ७. अचक्षु-दर्शनावरण जो आँख के सिवाय अन्य इन्द्रिय और मन द्वारा सामान्य अवलोकन को रोके ८ अवधि दर्शनावरण जो अवधिज्ञान के पहिले होने वाले दर्शन को रोके ९. केवल दर्शनावरण जो पूर्ण दर्शन को रोके १०. निद्रा जिस से कुछ नींद हो ११. निद्रानिद्रा जिस से गाढ़ी नींद हो १२ प्रचला जिस से बैठे २ ऊँघे १३. प्रचला प्रचला जिस से खूब ऊँघे, मुँह से राल बहे १४. स्त्यानगृद्धि जिस से नींद में कोई काम कर लेवे और सो जावे।

[३] वेदनीय की २ प्रकृतियाँ—१५. सातावेदनीय जो साताभोग करावे १६. असाता वेदनीय जो दुख भोग करावे।

[४] मोहनीय की २८ प्रकृतियाँ—

१. दर्शनमोहनीय की तीन—१७ मिथ्यात्व जिस से सच्चे तत्वो में श्रद्धा न हो १८. सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र जिस से सत्य असत्य तत्वों में मिश्रित श्रद्धा हो १९ सम्यक्त्व जिस से सत्य श्रद्धा में कुछ मन लगे।

२ चारित्र मोहनीय की २५ प्रकृतियां—सोलह कषाय-२० अनन्तानुबंधी क्रोध जिससे सम्यग्दर्शन और स्वरूप में आचरणरूप चारित्र का घात हो; ऐसे ही २१. अनन्तानुबन्धी मान २२. अनन्तानुबन्धी माया २३. अनन्तानुबन्धी लोभ। २४ अप्रत्याख्यानावरण क्रोध जिस से श्रावक गृहस्थ के व्रत न हो सकें; ऐसे ही २५. अप्रत्याख्यानावरण मान २६. अप्रत्याख्यानावरण माया २७ अप्रत्याख्यानावरण लोभ। २८ प्रत्याख्यानावरण क्रोध जिससे साधु के व्रत न हो सकें; ऐसे ही २९ प्रत्याख्यानावरण मान ३० प्रत्याख्यानावरण माया ३१ प्रत्याख्यानावरण लोभ। ३२ संज्वलन क्रोध जिससे पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सके, ऐसे ही ३३ संज्वलन मान ३४ संज्वलन माया ३५. संज्वलन लोभ। नो कषाय या अल्प कषाय ९—३६ हास्य जिससे हंसी आवे ३७ रति जिससे इन्द्रिय विषयों में प्रीति हो ३८. अरति जिस से कुछ न सुहावे ३९ शोक जिस से सोच करे ४० भय जिससे डरे ४१ जुगुप्सा जिससे ग्लानि करे ४२ स्त्री वेद जिससे पुरुषसे रमने की चाह हो—४३ पुरुषवेद जिससे

स्त्री से रमने की चाह हो ४४ नपुसक वेद जिससे दोनों से रमने की चाह हो ।

[५] आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ—४५ नरक आयु जिससे नारकी के शरीर में रहे ४६ तिर्यंच आयु जिससे एकेन्द्री से पंचेन्द्री पशु के शरीर में रहे ४७ मनुष्य आयु जिससे मानवदेह में रहे ४८ देव आयु जिससे देव शरीर में रहे ।

[६] नाम कर्म की ९३ प्रकृतियां—४९ नरकगति-जिससे नरक मे जाकर नारकी की अवस्था पावे ५०. तिर्यंच गति—जिससे तिर्यंच की दशा पावे ५१. मनुष्यगति—जिस से मनुष्य की दशा पावे ५२. देवगति-जिससे देव की दशा पावे ५३. एकेन्द्रियजाति—जिससे स्पर्शन इन्द्रिय वाले जीवो की जाति में जन्मे ५४. द्वीन्द्रिय जाति—स्पर्शन रसना दो इन्द्रिय वालों की जाति मे जन्मे ५५. ते इन्द्रिय जाति—जिस से स्पर्शन, रसना, घ्राण, तीन इन्द्रिय वालो की जाति पावे ५६. चतुरिन्द्रिय जाति—जिससे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, चार इन्द्रिय वालोंकी जाति पावे ५७. पचेन्द्रिय जाति—जिससे कर्ण सहित पांचों इन्द्रिय वाली जाति पावे । ५८. औदारिक शरीर—जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य वर्गणा लेकर वैसा शरीर बने ५९. वैक्रियिक शरीर—जिससे वैक्रियिक शरीर बने ६०. आहारक शरीर—जिससे आहारक शरीर बने ६१ तैजस शरीर—जिससे तैजस शरीर बने ६२ कार्मण शरीर—जिससे कार्मण शरीर बने ६३. औदारिक आङ्गोपाङ्ग—जिससे औदारिक शरीर में आङ्गोपाङ्ग बनें-[१ मस्तक, १ पेट. १ पीठ, दो बाहु, दो टांग, एक कमर के

नीचे का स्थान ये आठ अङ्ग होते हैं, इनके अंशों को उपांग कहते हैं] ६४. वैक्रियिक आंगोपांग—जिससे वैक्रियिक शरीर में आंगोपांग बनें ६५. आहारक आंगोपांग—आहारक शरीर में आंगोपांग बने ६६. स्थान निर्माण—जिससे आंगोपांग का स्थान बने ६७. प्रमाण निर्माण—जिससे उनकी माप बने ६८. औदारिक शरीर बंधन—जिससे औदारिक शरीर बनने योग्य पुद्गल का परस्पर मेल हो ६९ वैक्रियिक शरीर बंधन जिससे वैक्रियिक शरीर के बनने योग्य पुद्गल का मेल हो ७०. आहारक शरीर बंधन—जिससे आहारक शरीर के बनने योग्य पुद्गलका मेल हो ७१ तैजस शरीर बन्धन—जिससे तैजस शरीर के पुद्गलका मेल हो ७२ कार्मण शरीर बन्धन—जिससे कार्मण शरीर के पुद्गल का मेल हो, ७३. औदारिक शरीर संघात—जिससे औदारिक शरीर की रचना में छिद्र रहित पुद्गल हो जावें ७४. वैक्रियिक शरीर संघात—जिससे वैक्रियिक शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७५. आहारक शरीर संघात—जिससे आहारक शरीर में पुद्गल काय रूप हों ७६. तैजस शरीर संघात—जिस से तैजस शरीर में पुद्गल काय रूप हों। ७७. कार्मण शरीर संघात—जिससे कार्मण शरीरमें पुद्गल कायरूप हों ७८. समचतुरस्र संस्थान—जिस से शरीरका आकार सुडौल हो ७९. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान—जिस से आकार वड़ के समान ऊपर वड़ा और नीचे छोटा हो ८०. स्वाति संस्थान—जिससे सांपकी वंबईके समान ऊपर छोटा और नीचे वडा आकार हो ८१. कुब्जक संस्थान—जिससे कुवडा आकार हो ८२ वामन संस्थान—जिससे बहुत छोटा बौना आकार हो ८३. हुंडक संस्थान—जिस से बेडौल

आकार हो ८४. वज्र वृषभ नाराच संहनन—जिससे नसों के जाल, हड्डियों की कीलें व हड्डियाँ वज्र के समान दृढ़ हों ८५. वज्र नाराच संहनन—जिससे कीलें सौर हड्डी वज्र के समान हों ८६ नाराच संहनन—जिससे हड्डियाँ दोनों तरफ कीलोंसे दृढ़ हों ८७. अर्ध नाराच संहनन—जिस से हड्डियाँ एक तरफ़ कीलदार हों ८८. कीलक संहनन—जिस से हड्डियां एक दूसरे में कील दी हों ८९ असंप्राप्तासृपाटिका संहनन—जिस से हड्डियां मांस से जुड़ी हों ९०. कर्कश स्पर्श—जिस से शरीर का स्पर्श कठोर हो ९१. मृदु स्पर्श—जिस जे शरीर का स्पर्श कोमल हो ९२. गुरु स्पर्श—जिस से स्पर्श भारी हो ९३. लघु स्पर्श—जिस से स्पर्श हलका हो ९४. स्निग्ध स्पर्श—जिस से स्पर्श चिकना हो ९५. रूक्ष स्पर्श—जिस से स्पर्श रूखा हो ९६. शीत स्पर्श—जिस से स्पर्श ठण्डा हो ९७. उष्ण स्पर्श—जिस से स्पर्श गर्म हो ९८. तिक्तरस—जिससे शरीर के पुद्गलों का स्वाद कड़ुआ हो ९९. कटुक रस—जिससे चरपरा हो १००. कषाय रस—जिस से कषायला हो १०१ आम्ल रस—जिस से स्वाद खट्टा हो १०२. मधुररस—जिससे मीठा हो १०३ सुरभिगन्ध जिससे गन्ध सुहावनी हो १०४ असुरभिगन्ध—जिससे गन्ध बुरी हो १०५. शुक्ल वर्ण—जिस से शरीर का रङ्ग सफ़ैद हो १०६. कृष्ण वर्ण—जिससे रङ्ग काला हो १०७. नील वर्ण—जिस से वर्ण नीला हो १०८. रक्त वर्ण—जिस से वर्ण लाल हो १०९. पीतवर्ण—जिससे वर्ण पीला हो ११०. नरक-गत्यानुपूर्वी—जिससे नरकगति को जाते हुए पूर्व शरीर के आकार आत्मा विग्रहगति अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर

में जाते हुए रहे १११. तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी—जिससे तिर्यंच गति को जाते हुए पूर्वाकार रहे। ११२. मनुष्य गत्यानुपूर्वी—जिससे मनुष्य गति में जाते हुए पूर्वाकार हो ११३. देवगत्यानुपूर्वी—जिससे देव गति में जाते हुए पूर्वाकार हो ११४. अगुरु लघु—जिससे न शरीर बहुत भारी हो, न बहुत हलका हो ११५. उपघात—जिससे अपने अङ्ग से अपना घात करे ११६ परघात—जिससे परका घात करे ११७. आतप—जिससे शरीर मूलमें ठण्डा हो, परन्तु उसकी प्रभा गरम हो जैसा सूर्यविमान के पृथ्वी कायिक जीवोंमें है ११८. उद्योत—जिससे शरीर प्रकाशरूप हो; जैसा चन्द्रविमान के पृथ्वीकायिक जीवों में व पटबीजना आदि द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवो में है ११९. उच्छ्वास—जिससे श्वांस चले १२०. विहायोगति—जिससे आकाश में गमन शुभ व अशुभ हो १२१ प्रत्येक शरीर—जिससे एक शरीर का स्वामी एक जीव हो १२२. साधारण शरीर—जिससे एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हों १२३. त्रस—जिससे द्वीन्द्रियादि में जन्मे १२४. स्थावर—जिससे एकेन्द्रिय मे जन्मे १२५. सुभग—जिस से दूसरा शरीर से प्रेम करे १२६. दुर्भग—जिस से दूसरा अप्रीति करे १२७. सुस्वर—जिस से स्वर सुहावना हो १२८. दुःस्वर—जिससे स्वर असुहावना हो १२९. शुभ—जिससे सुन्दर शरीर हो १३० अशुभ—जिससे कुरूप हो १३१ सूक्ष्म—जिससे ऐसा शरीर हो जो कहीं भी न रुके, न किसी से मरे १३२ बादर—जिससे शरीर रुक सके व बाधा पावे व दूसरे को रोके १३३. पर्याप्ति—जिससे आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा व मन, इन छहों के बनने की

योग्यता नवीनगति में अन्तमु हूर्त में पा सके १३४ अपर्याप्ति—जिससे आहारादि बनने की योग्यता न पाकर अन्तमु हूर्त में ही मरण कर जावे १३५ स्थिर—जिससे शरीर में वायु पित्त कफादि स्थिर हों १३६. अस्थिर—जिससे पित्तादि स्थिर न हों १३७. आदेय—जिससे प्रभावान शरीर हो १३८ अनादेय—जिससे प्रभा रहित शरीर हो १३९ यशःकीर्ति—जिससे यश हो १४०. अयशःकीर्ति—जिससे अयश हो। १४१. तीर्थंकर—जिससे तीर्थङ्कर होकर धर्म मार्ग फैलावे।

[७] गोत्र कर्म की दो प्रकृतियां—१४२. उच्चगोत्र जिस से लोक माननीय कुल में जन्मे १४३ नीच गोत्र जिससे लोकनिंद्य कुल में जन्मे।

[८] अन्तराय कर्मकी ५ प्रकृतियां—१४४ दानान्तराय जिससे दान करना चाहे, पर कर न सके १४५. लाभान्तराय जिस से लाभ लेना चाहे, पर ले न सके १४६. भोगान्तराय जिस से भोगना चाहे, पर भोग न सके १४७. उपभोगान्तराय जिस से बार बार भोगना चाहे पर भोग न सके १४८. वीर्यान्तराय जिससे उत्साह करे पर कुछ कर न सके। ※

※ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम गोत्रांतरायाः ॥४॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलानाम॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषाय वेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः । सम्यक्त्व मिथ्यात्वतदुभयान्यऽकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा स्त्रीपुंनपुंसकवेदाः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान

३७. आठ कर्मों में पुण्य पाप भेद

मूल आठ कर्मों में साता वेदनीय, उच्चगोत्र, शुभ नाम, शुभ आयु पुण्यकर्म हैं; शेष सब पापकर्म हैं।

१४८ में पुण्यकर्म

३ आयुकर्म की—तिर्यंच, मनुष्य, देव।

६३ शुभ नामकर्म की—(१) मनुष्यगति (२) देव गति (३) पञ्चेन्द्रिय जाति (४-१८) औदारिकादि ५ शरीर, बन्ध ५, संघात ५ (१६-२१) तीनआंगोपाङ्ग (२२) समचतुरस्र संस्थान (२३) वज्र वृषभनाराच संहनन (२४-४३) शुभ स्पर्शादि (४४-४५) मनुष्य व देव गत्यानुपूर्वी (४६) अगुरुलघु (४७) पर घात (४८) उछ्वास (४९) आतप (५०) उद्योत (५१) विहायोगतिशुभ (५२) त्रस (५३) बादर (५४) पर्याप्ति (५५) प्रत्येक शरीर (५६) स्थिर (५७) शुभ (५८) सुभग (५९) सुस्वर (६०) आदेय (६१) यशःकीर्ति ६२) निर्माण (६३) तीर्थङ्कर।

संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ गति जाति शरीरांगोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थान संहनन स्पर्शरसगन्ध वर्णानुपूर्व्याऽगुरुलघूपघातपरघाता तपोद्योतो- छ्वासविहायोगतयः प्रत्येक शरीर त्रस सुभग सुस्वर शुभ सूक्ष्म पर्याप्ति स्थिरादेय यशः कीर्ति सेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दान लोभ भोगोपभोग वीर्याणाम् ॥ १३ ॥

(तत्वार्थसूत्र अ० ८)

१ उच्चगोत्र, १ सातावेदनीय; यह सर्व प्रकृतियां ६८ पुण्य रूप हैं।

शेष ४७ घातिया कर्मों की, १ असातावेदनीय, १ नीच गोत्र १ आयु व ५० नामकर्म की कुल १०० पाप प्रकृतियां हैं। यहाँ स्पर्शादि २० को दो जगह गिनने से १६८प्रकृतियां होती हैं।

नोट १—ऊपर कर्म के भेदों में निर्माण को दो व विहायोगति को एक गिना था। यहाँ पुण्य पाप में विहायोगति को शुभ व अशुभ दो रूप गिन के निर्माण को एक गिना है।*

नोट २—कर्मों की विस्तृत व्याख्या के लिये देखो "श्री वृहत्जैनशब्दार्णव" भाग १ शब्द 'अघातियाकर्म' पृष्ट ७६—८५

३८. प्रदेश—स्थिति—अनुभागबंध

हर एक संसारी जीवके जब तक वह अर्हंत पदवी के निकट न पहुँचे, सातों कर्मों के बँधने योग्य अनन्त कार्मण वर्गणाएँ हर समयमें आती रहती हैं, आयु कर्म के योग्य हर समय में नहीं आतीं। इस कर्म भूमि के मनुष्य व तिर्यंचों के लिये आयु कर्म के बंध का यह नियम है कि जितनी आयु हो उसके दो तिहाई बीतने पर अन्तर्मुहूर्त के लिये आयु बंध का समय आता है। उसमें बांधे या न बांधे, फिर शेष आयु में दो तिहाई बीतने पर दूसरा अवसर आता है। इसी तरह आठ अवसर आते हैं। यदि कोई इनमे भी न बाँधे तो मरण से अन्तर्मुहूर्त पहले आगे के लिये आयु कर्म अवश्य बांधा जाता है। जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो ५४ वर्ष बीतने पर पहला

---

* सद्वेद्यः शुभायुर्नाम गोत्राणि पुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥ (तत्वा० अ० ८)

फिर २७ में से १८ वर्ष बीतने पर दूसरा अवसर आयगा; इसी तरह समझ लेना।

उन कर्म वर्गणाओं का जो एक समय में आती हैं जितनी प्रकृतियें बँधती हैं. उनमें हिस्सा होजाता है—यही प्रदेशबंध है। आत्मा से कर्म सब तरफ़ बंधते हैं; किसी एक ख़ास भाग में नहीं। ❋

जितनी कर्म प्रकृतियां बँधती हैं उनमें काल की मर्यादा पडती है। यह स्थिति बंध उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य क्रोधादि कषायों के आधीन पड़ता है। आठों कर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति निम्नप्रकार है, मध्य के अनेक भेद हैं :—

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
१ ज्ञानावरणीय	३० कोड़ाकोड़ीसागर	अन्तमुहूर्त
२ दर्शनावरणीय	३० „ „	„
३ वेदनीय	३० „ „	१२ मुहूर्त
४ मोहनीय	७० „ „	अन्तमुहूर्त
५ आयु	३३ सागर	अन्तमुहूर्त
६ नाम	२० कोड़ाकोड़ीसागर	आठ मुहूर्त
७ गोत्र	२० „ „	„ „
८ अन्तराय	३० „ „	अन्तमुहूर्त

कोई कर्म वर्गणाएं अपनी स्थिति से अधिक बँधी हुई नहीं रह सकती हैं, अवश्य झड़ जायँगी। ‡

❋ नाम प्रत्ययाः सर्वतो योग विशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाह स्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंत प्रदेशाः ॥२४॥ [तत्वा० अ० ८]

‡ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम

नोट—अन गिन्ती वर्षों को सागर कहते हैं।

इन्हीं बंधते हुए कर्मों में कषाय के निमित्त से तीव्र या मंद फल देनेकी जो शक्ति होजाती है, उसे अनुभाग कहते है।

ज्ञानावरणीय आदि चार घातिया कर्मोका अनुभाग लता (वेल), दारु (काष्ठ), अस्थि (हड्डी), पाषाणके समान मन्द तर, मन्द, तीव्र, तीव्रतर पड़ता है। अघातिया कर्मों में जो असाता आदि पाप कर्म है उनका अनुभाग नीम, कांजी, विष-हलाहल के समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर कटुक पड़ता है। अघातिया कर्मों में साता आदि पुण्य कर्मों का अनुभाग गुड़, खांड, शर्करा, अमृत के समान मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्र-तर मधुर पड़ता हैं। आयु कर्म को छोड़ कर सात कर्मों की स्थिति यदि कषाय अधिक होगी तो अधिक पड़ेगी, कम होगी तो कम पड़ेगी परंतु पाप कर्मो का अनुभाग तीव्र कषाय से अधिक पड़ेगा, मंदकषाय से कम पड़ेगा। पुण्य कर्मों का अनुभाग मन्द कषायसे अधिक व तीव्र कषायसे अल्प पड़ेगा। मन्द कषायसे शुभ आयु की स्थिति अधिक होगी, तीव्र कषाय से कम। ऐसेही तीव्र कषायसे अशुभ आयुकी स्थिति अधिक होगी मन्द से कम। *

कोटी कोट्यः परास्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥ त्रायस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्र-योरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामंतमुहूर्ता ॥ २० ॥ (तत्वा० अ० ८)

* विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ (तत्वा० अ० ८)

३९. आठों कर्मों के वंध के विशेष भाव

यद्यपि शुभ या अशुभ भावों से हरसमय हरएक जीव के आठ या सात कर्म की प्रकृतियों का बन्ध होता है, तथापि जिस जाति के विशेष भाव होते है उन भावों से उस विशेप कर्म में अधिक अनुभाग पडता है। वे विशेषभाव नीचे प्रकार जानना चाहियेः—

१. ज्ञानावरण और दर्शनावरण के विशेष भाव—

१. सच्चे ज्ञान व ज्ञानियों से द्वेप भाव २. आप ज्ञानी हो करके भी अपने ज्ञान को छिपाना ३ ईर्षा से दूसरों को ज्ञान दान न करना ४ ज्ञानकी उन्नति में विघ्न करना ५ ज्ञान व ज्ञानी का अविनय करना ६. उत्तम ज्ञान का भी कुयुक्ति से खण्डन करना।

२. असाता वेदनीय कर्म के भाव—

अपने को आप या दूसरों को या आप पर दोनों को १ दुख देना २ शोकित करना ३ पश्चाताप करना (किसी वस्तु के छूटने पर व न मिलने पर पछताना) ४ रुलाना ५ मारना ६ ऐसा रुलाना कि दूसरो को दया आजावे ।

३. साता वेदनीय कर्म के भाव—

(१) सर्व प्राणीमात्र पर दयाभाव (२) व्रती धर्मात्माओं पर विशेष दयाभाव (३) आहार, औषधि, विद्या व अभय या प्राणदान, ऐसे चार दानकरना (४) साधु का धर्म प्रेम सहित पालना (५) श्रावक गृहस्थ का धर्म पालना (६) समताभाव से दुःख सहलेना (७) तपस्या करना (८) ध्यान करना (९) क्षमाभाव रखना (१०) पवित्रता या संतोप रखना।

४. दर्शन मोहनीय बन्ध के विशेष भाव—

१ केवली अरहंत भगवान की मिथ्या बुराई करना २ सच्चे शास्त्रों में झूठा दोष लगाना ३ मुनि, आर्यिका श्रावक, श्राविका के सङ्घ में मिथ्या दोष लगाना ४ सच्चे धर्म की बुराई करना ५ देवगति के प्राणियोंकी मिथ्या बुराई करना कि देवतागण माँस खाते हैं आदि।

५. चारित्र मोहनीय बन्ध के भाव—

क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय भावों में बहुत तीव्रता रखनी।

६. नरकआयु बन्ध के विशेष भाव—

मर्यादा से अधिक बहुत आरम्भ व्यापार करना और संसार के पदार्थों में अन्ध होकर ममत्व रखना।

७. तिर्यंचआयु बन्ध के भाव—

परिणामों में कुटिलाई या मायाचार रखना।

८. मनुष्यआयु बंध के भाव—

मर्यादारूप थोड़ा आरम्भ व व्यापार करना और थोड़ा ममत्व रखना तथा स्वभाव से कोमल और विनयरूप रहना।

९. देवआयु के बंध के विशेष भाव—

१सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्चे तत्वों में विश्वास रखना २ साधु का संयम ३ श्रावक का संयम ४ समताभाव से दुख सहना ५ तपस्या करना आदि।

१०. अशुभ नाम कर्म के भाव—

१ मनको कुटिल रखना २ वचन मायाचार रूप कुटिल

बोलना ३ शरीर को कुटिलता से व वक्रता से वर्तना ४ कलह और लड़ाई करना।

११. शुभ नाम कर्म के भाव—

१ मन में सीधापन रखना २ वचन सीधा हितकारी बोलना ३ कायको सरल कुटिलता रहित वर्ताना ४ झगड़ा न करके प्रेम रखना।

१२. तीर्थङ्कर नाम कर्म के विशेष भाव—

नीचे लिखी १६ प्रकार की भावनाओं को बड़े भाव से करना—

१. दर्शन विशुद्धि, हमारी श्रद्धा निर्मल रहे २. विनय-सम्पन्नता, हम धर्म व धर्मियोंमें आदर करें ३. शील व्रतेष्वनती-चार, हम शील और व्रतों में दोष न लगावें ४. अभीक्ष्णज्ञानो-पयोग, हम सदा ज्ञानका अभ्यास करें ५. संवेग, हम संसार शरीर भोगों से वैराग्य रखें ६. शक्तितस्त्याग, हम शक्ति न छिपाकर दान करते रहें ७ शक्तितस्तप, हम शक्ति न छिपाकर तप करते रहें ८ साधुसमाधि, हम साधुओं का कष्ट दूर करते रहें ६ वैयावृत्य, हम गुणवानों की सेवा करते रहें १०. अर्हद्भक्ति, हम अरहन्तों की भक्तिपूजा में रत रहें ११. आचार्य भक्ति, हम गुरु महाराजों की भक्ति करते रहें १२. उपाध्याय भक्ति, हम ज्ञानदाता साधुओं की भक्ति में रत रहें १३. प्रवचन भक्ति, हम शास्त्र की भक्ति में दत्त चित्त रहें १४. आवश्यकापरिहाण, हम अपने नित्य धर्म कृत्य को न छोड़ें १५ मार्ग प्रभावना, हम सच्चे धर्म की उन्नति करते रहें १६. प्रवचनवात्सल्य, हम सर्व धर्मात्माओं से प्रेम रखें।

१३, नीच गोत्र बन्ध के विशेष भाव—

१. दूसरों की निन्दा करनी २. अपनी प्रशंसा करनी ३. दूसरों के होते हुए गुणों को ढकना ४ अपने न होते हुये गुणों को प्रकट करना।

१४. ऊँच गोत्र बन्ध के भाव—

१. दूसरों की प्रशंसा करनी २ अपनी निन्दा करनी ३. दूसरों के गुणों को प्रकट करना ४. अपने गुणों का ढकना ५. विनय से वर्ताव करना ६. उद्धतता या मान नहीं करना।

१५, अन्तराय कर्म बन्ध के भाव—

१. दान देते हुए को मना करना २. किसी को कुछ लाभ होता हो उस में विघ्न कर देना ३ किसी के खाने पीने आदि भोगों में अन्तराय करना ४ किसी के वस्त्र, मकान, स्त्री आदि बार बार भोगने योग्य पदार्थों का वियोग करा देना ५ किसी अच्छे काम के उत्साह को भङ्ग कर देना। †

४०. आस्रव और बन्ध का एक काल

जिस समय कर्म वर्गणायें आती हैं उसी समय बँध जाती हैं। आश्रव और वन्ध के लिए कारण एक ही हैं। जिन मिथ्यादर्शन, अवरति, प्रमाद, कषाय, योगों से आस्रव होता है, उनही से वन्ध होता है। जैसे नाव के छेद से पानी आता जाता है वैसेही ठहरता जाता है। पानी के आने व ठहरने का एक ही द्वार है। इसी तरह कर्मों के आने और वन्धने का एक ही कारण है। कार्य दो हैं जैसे पानी का आना और ठहरना,

† इस के लिए देखो तत्वार्थ सूत्र अध्याय छठा

वैसे कर्म वर्गणाओं का आना और उन का ठहरना। जिस समय जो आस्रव रुकता है उसी समय वह बन्ध भी रुकता है। जब छेदसे पानी आवेगा नहीं, तो नावमें ठहरेगा भी नहीं।

४१. कर्मों के फल देने की रीति

कर्मों में जो स्थिति पड़ जाती है उस के भीतर ही वे अपना फल देकर गिरते जाते है। जिस समय कर्म बन्धते है उसके कुछ ही देर पीछे वे अपना फल देना प्रारम्भ करते हुए जहां तक मर्यादा पूरी न हो फल दिया करते हैं।

जितनी वर्गणाये जिस कर्म प्रकृति की बँधती हैं वे बट जाती हैं और थोड़ी २ हर समय फल प्रगटकर गिरती जाती हैं। जिस समय तक फल नही देतीं उस समय का नाम आबाधा काल है। इस का हिसाब यह है कि यदि स्थिति एक कोडा कोडी सागर की बाँधी हो तो सौ वर्ष का आबाधा काल है। यदि अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर की स्थिति हो जो एक करोड़ सागर से ऊपर है तो आबाधा केवल एक अन्तमुहुर्त आवेगी। यदि हज़ार सागर की हो व एक सागर की हो तो बहुत ही कम समय आयगा। कम से कम एक आवली (पलक मारने के समान) काल पीछे ही कर्म अपना फल दे सकेगे। जैन सिद्धांत में यह नियम नहीं है कि पूर्व जन्म का ही फल इस जन्म में हो व इस जन्म का आगे में हो। इस जन्म का वांधा कर्म इस जन्म में भी फल देसक्ता है व देता है व अगामी भी देगा व पूर्व जन्म में वांधा हुवा पहले भी फल देचुका है व अब भी दे रहा है व जब तक स्थिति पूरी न होगी देता रहेगा। यह बात ध्यान में रहे कि

जैसा बाहरी निमित्त होगा वैसा कर्म फल देगा और जिस कर्म का बाहिरी निमित्त न होगा वह कर्म अपने समय पर बिना फल दिखाये चला जायगा। जैसा हमारे साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, चारों कषायोंका फल हरसमय होना चाहिये अर्थात् इन कषायोंकी वर्गणायें हर समय गिरनी चाहियें। हम यदि १० मिनट तक आत्मध्यानमें लय होगये तो वे कर्म तो गिरते जायँगे परन्तु हमारे में क्रोधादिभाव न झलकेंगे, अथवा यह प्रगट है कि क्रोधभाव, मानभाव, मायाभाव, लोभभाव, एक साथ नहीं होते–आगे पीछे होते हैं। जिस समय क्रोधभाव होरहा है तब क्रोधकी वर्गणाएं तो फल देकर और शेष तीन कषायों की वर्गणाएं बिना फल देकर झड रही हैं। किसी जीव के साता वेदनीय असातावेदनीय दोनों अपने समय पर गिर रही हैं। यदि हम सङ्कट में पड़े हैं व भूख से दुखी हैं तब असाताफल देकर व साता बिना फल दिये झड़ रही हैं। जिन कर्मों में बहुत तीव्र अनुभाग होता है वे अपने निमित्त अपने अनुकूल करके फल देते हैं, परंतु जिनमें उतना तीव्र अनुभाग नहीं होता है वे निमित्त अनुकूल न होने पर यों ही झड़ जाते हैं। कर्मों के फल देने में हम को अपने स्थूल औदारिक शरीर का दृष्टांत सामने रख लेना चाहिये। हम आपही नित्य भोजन, पान, हवा लेते हैं, आपही उससे रुधिर वीर्यादि बनाते हैं, आप ही उससे शरीर में बल पाते हैं और काम करते रहते हैं। कोई रोगकारी पदार्थ खा लिया था, उस के परमाणुओं द्वारा रोग पैदा होना चाहिये, परन्तु हम पीछे ऐसे संयोगों में हैं जिन में रोग नही हो सकता तो वे रोग पैदा करने वाले परमाणु योंही गिर जावेंगे अथवा कोई पौष्टिक औषधी खाई थी उससे पुष्टि

होनी चाहिये, किन्तु हम किसी समय निर्बलता के संयोगों में पड़ गये—मान लो दो दिन तक और भोजन न मिला—तो वह पुष्ट औषधीके परमाणु उस समय पुष्टि न कर यों ही गिर जावेंगे। जैसे कोई औषधी चार दिन, कोई चार मास कोई चार बरस में फल दिखाती है, ऐसे ही कर्मों में है।

हम पहिले बता चुके है कि कोई परमात्मा हमको फल देने के झगड़े में नहीं पड़ता—स्वाभाविक नियम से ही हम आप ही कर्म बांधते और आप ही फल भोगते हैं; जैसे हम आप ही मदिरा पीते हैं आप ही बेहोश हो जाते है।

एक दफे कर्म बांध लेने के पीछे जैसे हम अपने अशुभ भावों से उन कर्मोंकी स्थिति व पाप कर्मों के अनुभागको बढ़ा कर पुण्य कर्मों के अनुभागको कम कर सकते व पुण्य कर्मों को पाप कर्मों में बदल सकते हैं, वैसे ही निर्मल भावों से स्थिति को घटा देते, पुण्य कर्मों में अनुभाग बढा लेते तथा पाप कर्मों का अनुभाग कम करते तथा पाप कर्मों को पुण्य में बदल सकते हैं; जैसे कि कोई ज़हरीला पदार्थ खाने के बाद फिर उसका विरोधी खालें तो उसका असर हट जाता या कम हो जाता है। जो कर्म देरमें फल देने वाले थे वे बाहरी निमित्त पाकर जल्दी भी फल दे देते हैं। मुख्य हमारा पुरुषार्थ है।

४२. पुरुषार्थ और दैव का स्वरूप

आत्मा के गुणोंकी कर्मों के दब जानेसे व नाश होजाने से जितनी प्रगटता होती है उस को पुरुषार्थ कहते हैं तथा जितना कर्म अपना फल देता रहता है उस फल को दैव कहते हैं। वास्तव में पुरुषार्थ आत्मा का गुण है, दैव ही पुण्य पाप

है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का कुछ न कुछ असर सब जीवों के कम रहता है अर्थात् इन का क्षयोपशम होता है। इस लिए आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य की थोड़ी या अधिक प्रगटता रहा करती है। यही पुरुषार्थ है। अज्ञानी के मोहनीय कर्म दवता नहीं है। ज्ञानी के जितना दवता व नाश होता है उतना निर्मल श्रद्धान व शान्तभाव अर्थात् सम्यक्त्व व चारित्र गुण आत्मा का प्रगट होता है। यह भी पुरुषार्थ है।

चार अघातिया कर्म जब तक बिल्कुल नाश नहीं होते, फल ही देते रहते हैं। इस लिए वे बिल्कुल दैव कहलाते हैं।

हमारा कर्तव्य यह है कि जितना ज्ञान व आत्मबल हमारा प्रगट है उससे विचार कर हम व्यवहार करें। जैसे हमने किसी व्यापार को विचार के साथ किया: उस में यदि साता वेदनीय का उदय होगा व अन्तराय का न होगा तो धन का समागम होजायगा। यदि लाभ न हो तो समझना चाहिये कि असातावेदनीय और अन्तराय कर्म रूपी दैव का फल है। अपना पुरुषार्थ न करके दैव के भरोसे बैठना मूर्खता है, क्यों कि अघातिया कर्म निमित्त होने पर ही अपना फल दे सकते है। यदि हम कोई व्यापार न करें, ख़ाली बैठे रहें तो साता-वेदनीय से जो धन आता सो बिना कारणके नहीं आसकेगा। एक बात याद रखना चाहिये कि जिस किसी के बहुत तीव्र पुण्य व पाप कर्म का उदय होता है उसके अकस्मात् लाभ या अलाभ भी हो जाता है। जैसे कोई बालक ग़रीब के यहाँ पैदा हुआ और किसी धनवान की गोद चला गया व धनवान के यहां पैदा हुआ और पैदा होते ही पिता निर्धन होगया।

अपने भावों को कषाय रहित करने का पुरुषार्थ हमको

सदा करते रहना चाहिये अर्थात् वीतराग मई जैनधर्म का साधन करते रहना चाहिये। इससे हम अपने फल देने वाले दैव को बुरे से अच्छा कर सकेंगे व बहुत से पापों का नाश भी कर सकेंगे। धर्म पुरुषार्थसे हमें कभी बेख़बर न रहना चाहिए।

४३. संवर तत्व

हम आस्रव और बन्धतत्व के कथन में यह बात दिखा चुके हैं कि आत्मा किस तरह अशुद्ध या बद्ध हुआ करता है। अब यह उपाय बतलाना है कि हम बंधन से मुक्त कैसे हों। जैसे नाव में पानी जिस छेद से आता हो उसको बन्द करने से पानी न आवेगा, वैसे जिन भावों से कर्म आते हैं उन को रोक देने से कर्म न आवेंगे। इस लिये जिन भावों से आस्रव भावों को रोका जाता है वह भाव संवर हैं और वर्गणाओं का रुकजाना सो द्रव्य संवर है। †

सामान्य से मिथ्यात्व के रोकने के लिये सम्यग्दर्शन, अविरति के हटाने के लिये व्रतों का पालन, प्रमाद हटाने के लिये अप्रमत्त भाव, कषाय के दूर करने के लिए वीतरागभाव, योग चंचलताके मिटाने के लिये मन, वचन, काय का निरोध, भाव संवर है।

विशेषता से भाव संवर पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दशलाक्षण धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जीतना

---

† चेदण परिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥ ३४ ॥
[द्रव्यसंग्रह]

व पांच प्रकार के चारित्र से होता है। * यह भी जानना चाहिए कि यह पुरुषार्थी जितना २ आस्रव भाव हटाता जायगा उतना २ संवर होता जायगा। जैसे किसी ने मिथ्यात्व व अनन्तानुबँधी कषाय हटा दिया तो मिथ्यात्व आदि के कारण जो कर्म बँधते थे सो न बँधेंगे, शेष अविरति आदि चार कारणोंसे बन्धते रहेंगे।

४४. पांच व्रत

(१) अहिंसाव्रत-प्रमाद या कषाय सहित भावों से अपने या दूसरों के भावप्राण (चेतना, शान्ति आदि) और द्रव्यप्राण (इन्द्रिय बल आदि) का नाश करना व उनको पीडित करना हिंसा है-इसका अभाव सो अहिंसा है। जिस समय हमारे में क्रोध भाव हुआ, उसी समय हमने अपने भावप्राण ज्ञान व शांति को बिगाड़ा और शरीर के वलको घटाकर अपने द्रव्यप्राण घाते, फिर क्रोधवश हमने दुसरे को हानि पहुँचाई। तब दूसरे ने यदि कुछ भी न गिना तो उसके भावप्राण रक्षित रहे पर शरीर व धन की हानि करने से द्रव्यप्राणों में हानि हुई, परन्तु हम तो हिंसक हो चुके। हमारी लाठी मारने से दूसरा बच गया तो भी हम हिंसक होगये। जिसके द्रव्यप्राण अधिक हैं व अधिक उपयोगी हैं उसके घात में कषाय भाव भी प्रायः अधिक होगा, इससे हम हिंसा के भागी अधिक होंगे।

---

* वद समिदी गुत्तीओ धम्माणु पिहा परीसहजओ य।
चारित्तंबहुभेयं णायव्वा भावसंवर विसेसा ॥३५॥
[द्रव्यसंग्रह]

जैसे मनुष्य के दश प्राण है व उपयोगी है इससे मनुष्य घात से विशेष पाप होगा। जलादि एकेन्द्रिय जीवों के आरम्भ विना काम नहीं चल सकता, इस से इनकी हिंसा से कपाय कम होने से पाप कम है। वास्तव में जहां कपाय है, वहां भाव व द्रव्य प्राणकी हिंसा है। जहां कषाय नहीं वहां भाव व द्रव्य हिंसा नहीं है। ❀ जितनी हिंसा छोड़ेंगे उतना संवर होगा।

(२) सत्यव्रत—प्रमाद सहित होकर हानिकारक वचन कह देना सो असत्य है। असत्य का त्याग सो सत्य है।

(३) अचौर्य्यव्रत—प्रमाद सहित होकर दूसरे की वस्तु गिरी पड़ी भूली बिसरी उठा लेना व बिन दी हुई लेना चोरी है। चोरी का त्याग अचौर्यव्रत है।

(४) ब्रह्मचर्य—मैथुन करना अब्रह्म है। अब्रह्मका त्याग ब्रह्मचर्य है।

(५) परिग्रह त्याग—चेतन अचेतन पर पदार्थों में मूर्छा ममत्व करना परिग्रह है। उसका त्याग परिग्रह त्याग-

---

❀ प्रमत्त योगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

(तत्वा० अ० ७)

अप्रादुर्भाव. खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।

तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

अर्थात्—प्रमाद सहित मन, वचन, काय से प्राणों का पीड़न हिंसा है। निश्चय से रागादि भावों का न प्रगट होना. अहिंसा है तथा उनही का पैदा हो जाना हिंसा है, यह जैन शास्त्र का खुलासा है।

व्रत है। क्योंकि धन धान्यादि परिग्रह के कारण हैं, इसलिए इनके भी त्यागने से परिग्रह त्याग होता है। इन पांचों व्रतों को जितना पाला जायगा उतना संवर होगा।※

४५. पांच समिति

अहिंसा की रक्षा के लिए साधुजन नीचे लिखी पांच समितियों को पालते हैं :—

१. ईर्यासमिति–दिनमें जन्तु रहित भूमि पर चार हाथ आगे देखकर चलना २. भाषा समिति–शुद्ध बचन निर्दोष बोलना ३ एषणासमिति–शुद्धभोजन जो गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिए तैयार किया हो, उसमें से भिक्षारूप जाकर भक्ति से दिये जाने पर लेना ४. आदान निक्षेपण समिति–अपना शरीर व अन्य वस्तुं जो कुछ भी उठाना व रखना सो देख कर झाड़कर उठाना रखना ५. उत्सर्गसमिति–मल मूत्रादि जीव रहित स्थान पर करना। †

४६. तीन गुप्ति

१. मनोगुप्ति–मनकी चंचलता को रोककर उसे धर्म-ध्यान में लीन रखना, सांसारिक भावनाओं से अलग रखना।

२. बचनगुप्ति–मौन रहना।

३. कायगुप्ति–शरीर का निश्चल रखना। ‡

※ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ तत्वा० अ० ७)

† ईर्याभाषैषणादान निक्षेपणोत्सर्गाः समितय ॥५॥ (तत्वा०अ०९)

‡ सम्यग्योग निग्रहोगुप्तिः ॥ ४ ॥ (तत्वा० अ० ९)

४७. दशलाक्षण धर्म

[१] उत्तम क्षमा—दूसरे से कष्ट दिये जाने पर भी निर्बल हो या सबल हो, बिलकुल क्रोध न करके शान्त व प्रसन्न रहना।

[२] उत्तम मार्दव—ज्ञान तप आदि में श्रेष्ठ होने पर सत्कार व अपमान किए जाने पर भी कोमल व विनयवान रहना-मान न करना।

[३] उत्तम आर्जव—मन, वचन, काय की सरलता रख कर कपट के भाव को न आने देना।

[४] उत्तम सत्य—अपने आत्मोद्धार के लिए सच्चे तत्वों का श्रद्धान व ज्ञान रखते हुए सत्य वचन ही बोलना।

[५] उत्तम शौच—लोभ को त्याग कर मनमें संतोष व पवित्रता रखनी।

[६] उत्तम संयम—भले प्रकार पांच इन्द्रिय व मन को वश रखना तथा पृथ्वी आदि छः प्रकार के जीवों की रक्षा करनी।

[७] उत्तम तप—अनशन उपवास आदि बारह प्रकार तप के पालने में उत्साही रहना।

[८] उत्तम त्याग—मोह ममत्व न करके सर्व प्राणी मात्र को अभयदान देना तथा पर प्राणियों को ज्ञान दान देना व अन्य प्रकार से उपकार करना।

[९] उत्तम आकिंचन्य—सर्व परिग्रह त्याग कर यह

भाव रखना कि संसार में मेरा मेरे आत्मा के सिवाय कोई परमाणु मात्र भी नहीं है ।

[१०] उत्तम ब्रह्मचर्य—सर्व कामोंके भावोंको त्याग कर अपने ब्रह्म स्वरूप आत्मामें लीन होना व स्वस्त्री व परस्त्री का त्याग करना ।

इन दश धर्मों को साधु जन भले प्रकार पालते हैं *

४८. बारह भावना

जिन को बराबर चिन्तवन किया जावे उनको भावना कहते हैं, वे बारह तरह की हैं ।

[१] अनित्य—इस जगत में घर, पैसा, राज्य, स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब सब ही नाशवन्त हैं, इनसे मोह न करना ।

[२] अशरण—जब पाप का तीव्र फल होता है या मरण आता है तो कोई मन्त्र, यन्त्र, वैद्य, रक्षक बचा नहीं सकते ।

[३] संसार—चार गति रूप संसार में प्राणी इन्द्रिय विषयों की तृष्णा में फंसा हुआ रोग, शोक, वियोग के अपार कष्टों को भोगता हुआ सुख शान्ति नहीं पाता है ।

[४] एकत्व—इस मेरे जीव को अकेला ही जन्मना मरना व दुःख भोगना पड़ता है, मेरा आत्मा सब से निराला एक आनन्द मई अमूर्तीक है ।

[५] अन्यत्व—मेरे आत्मा से शरीरादि व सर्व ही अन्य आत्मायें व अन्य पांचों द्रव्य बिलकुल भिन्न हैं ।

---

* उत्तम क्षमा मार्दवार्जव सत्य शौच संयम तपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्याणि धर्म्मः ॥ ६ ॥ (तत्वा० अ० ६)

[६] अशुचि—यह शरीर मल से बना है व कृमि मल मूत्र, हड्डी आदि अपवित्र वस्तुओं से भरा है, रोएँ २ से मल बहता है, पवित्र जलादि को स्पर्श मात्र से अपवित्र कर देता है। इस तन से उदास रह आत्मोन्नति करनी चाहिए।

[७] आस्रव—मन, वचन, काय के वर्तन से कर्म आते हैं जिससे प्राणी पराधीन हो जाते हैं।

[८] संवर—कर्मों के आने को रोकना ही जीवका हित है, जिस से स्वाधीनता प्राप्त हो।

[६] निर्जरा—पूर्व में बांधे कर्मों को ध्यानादि तप कर के दूर करना ही श्रेष्ठ है।

[१०] लोक—यह लोक अनादि अनन्त अकृत्रिम है, छः द्रव्यों से भरा है। इस में एक सिद्ध क्षेत्र ही वास करने योग्य परम सुखदाई है।

[११] बोधिदुर्लभ—आत्मोद्धार का मार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र है। उसका लाभ बडा कठिन है, अब हुआ है तो इसे रक्षित रखना योग्य है।

[१२] धर्म—धर्म आत्मा का स्वभाव है, यह मुनि व श्रावक के भेद से दो तरह है। दश लक्षण रूप है, अहिंसामई है, यही हितकारी है। ※

※ अनित्याशरण संसारैकत्वाशुच्यास्रवसंवर निर्जरा-लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

(तत्वा० ६)

४६. बाईस परीषह जय

जिन को शान्त मनसे सहा जावे उनको परीषह कहते हैं। कष्टों के सहने से धर्म में दृढता होती है व कर्मों का नाश होता है व संवर होता है। वे परीषह निम्न बाईस होती हैं, जिनको साधु महाराज ही विजय करते हैं :—

१. क्षुधा-भूख की बाधा २. पिपासा-प्यास की बाधा ३. शीत-सरदी का कष्ट ४. उष्ण-गर्मी की बाधा ५. दंशमशक-डाँस मच्छुरों के काटने की बाधा ६. नाग्न्य-नग्न रहने की लज्जा ७. अरति-अमनोज्ञ पदार्थ मिलने पर अप्रीति ८. स्त्री-स्त्रियों के हाव भाव विलास का जाल ६. चर्या-मार्ग में पैदल चलने का कष्ट १०. निषद्या-आसन से बैठने का कष्ट ११. शय्या-भूमि पर सोने की बाधा १२. आक्रोश-गाली सुनने पर विकार १३. बध-मारे पीटे जाने का दुःख १४. याचना-मांगने की इच्छा १५. अलाभ-भोजनादि में अन्तराय का खेद १६. रोग-शरीर में रोगों की पीड़ा १७. तृण स्पर्श-आते जाते कठोर तृणों का स्पर्श १८. मल-शरीर मैला रहने का भाव १६. सत्कार पुरस्कार-आदर सत्कार न होने से खेद २०. प्रज्ञा-बहुत ज्ञानी होने का मद २१. अज्ञान-ज्ञान न बढ़ने का खेद २२. अदर्शन-तप माहात्म्य न प्रकट होने पर तप में अश्रद्धा।

इन २२ परिषहों को जीतकर आत्म रस पान करते हुए शान्त मन रखने से परिषह जय होता है।

५०. पांच प्रकार चारित्र

[१] सामायिक—राग द्वेष त्याग कर समता भाव

से आत्मा के ध्यान में चित्त को मग्न करना तथा शत्रु, मित्र, तृण, कञ्चन, मान, अपमान में समान भाव रखना। मुनियों का यह परम धर्म है।

[२] छेदोपस्थापना—सामायिक भाव से गिर कर फिर अपने को सामायिक भाव में स्थिर करना व साधु व्रत में कोई दोष लगने पर उसकी शुद्धि कर के फिर स्थिर होना।

[३] परिहार विशुद्धि—एक विशेष चारित्र जो तीर्थं-कर भगवान की संगति से साधु को प्राप्त होता है, जिस से जीव रक्षा में बहुत सावधानी हो जाती है।

[४] सूक्ष्म सांपराय—एक ऐसी आत्म-मग्नता जिस में बहुत ही सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है।

[५] यथाख्यात—जैसे चाहिए वैसा सर्व कषाय रहित निर्मल वीतराग भाव। *

५१. निर्जरा तत्व

जिन आत्माके परिणामोंसे कर्म फल देकर या विनाफल दिये हुए आत्मा से झड़जाते हैं वह भावनिर्जरा है और कर्मों का झड़ना सो द्रव्य निर्जरा है। जहां कर्म फल देकर झड़ते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते है, जहां विना फल दिये हुए झडते हैं वह अविपाक निर्जरा है। वास्तव में पहले बांधे हुए कर्मोंका विनाफल दिये हुए तप आदि वीतराग भावोंके द्वारा झड़ने को ही निर्जरातत्व कहते हैं। यही मोक्ष का कारण है।

---

* देखो तत्वार्थसूत्र अ० ९

तप बारह तरह का है जिसका पालन साधु महात्मा उत्तम प्रकार से करते हैं। *

५२. बारह तप

इस तपके दो भेद हैं—बाह्य और अन्तरङ्ग। जो प्रगट दीखें व जिसका असर शरीर पर मुख्यतासे पड़े वह बाह्य तप है व जिसका असर मुख्यता से भावों पर पड़े सो अन्तरंग तप है। हर एक के छः छः भेद हैं:—

(१) बाह्यतप के छः भेद:—

(१) अनशन—खाद्य-जिस से पेट भरे; स्वाद्य-जो स्वाद सुधारे, इलायची आदि; लेह्य जो चाटने मे आवे, चटनी आदि; पेय जो पीने योग्यहो, जलादि; इन चार प्रकारके आहार का जन्म पर्यंत या एक दो दिन आदि की मर्यादा से त्यागकर इन्द्रिय विषय और कषायोंसे अलग रहकर धर्मध्यान में लीन रहना सो अनशन है।

(२) अवमोदर्य्य—इन्द्रियों की लोलुपता कम करते हुए सदा आहार कम करना, जिससे ध्यान व स्वाध्याय मे आलस्य न हो।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—भोजन के लिये जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेलेना और बिना किसी के कहे हुए उसके अनुसार भोजन मिलने पर लेना नहीं तो उपवास करना; जैसे

---

* जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडण चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥
(द्रव्यसंग्रह)

किसी साधुने यह नियम लिया कि कोई पुरुष विल्कुल सादी धोती और डुपट्टा ओढ़े हुए यदि भक्तिसे भोजन देगा तो लेंगे। प्रण पूर्ण न होने पर भिक्षासे लौट आना व समता भाव रखना।

(४) रसपरित्याग—दूध, दही. घी, शक्कर (मिष्ट॰ रस), तैल निमक इन छः रसोंमें से एक व अनेक का जन्म॰ पर्यन्त व मर्यादा रूप त्यागना तथा रस से मोह न कर केवल उदर भरने को भोजन करना।

(५) विविक्तशय्यासन—ध्यान की सिद्धि के लिए एकान्त में सोना बैठना।

(६) कायक्लेश—शरीर के सुखियापने को हटाने के लिए शरीर को कठिन २ क्लेश देकर भी मनमें दुःख न मानकर हर्षित होना। जैसे धूप में खड़े हो ध्यान करना, कंकड़ों पर लेट जाना आदि।

(२) अन्तरङ्ग तप के छः भेदः—

[१] प्रायश्चित—दोष होने पर उस का दण्ड लेकर दोष को मेटना। यह दण्ड निम्नलिखित नौ तरहका होताहै :—

१. आलोचना— गुरुके पास सरल भावसे दोष कह देना।

२. प्रतिक्रमण—एकान्तमें बैठकर दोपका पश्चाताप करना।

३. तदुभय—ऊपर के दोनों कामों को करना।

४. विवेक—किसी पदार्थ का जैसे दूध, घी, आदि का कुछ काल के लिए त्याग देना।

५. व्युत्सर्ग—कायसे ममता त्याग एक या अनेक कायोत्सर्ग

रूपसे ध्यान करना। नौ वार णमोकार मंत्र कहने या २७ श्वासोच्छ्वास में जो समय लगे वह एक कायोत्सर्ग का काल है।

६. तप—एक व अनेक उपवास आदि ग्रहण करना।

७. छेद—मुनि दीक्षा का समय घटा देना।

८. परिहार—मुनि संघसे कुछ काल के लिए अलग करना।

९. उपस्थापन—फिर से दीक्षा देकर शुद्ध करना।

[२] विनय—भीतर से बडा आदर रखना। यह चार तरह का है—

१. ज्ञानविनय—बड़े भाव से ज्ञान को बढ़ाना।

२. दर्शनविनय—बड़ी भक्ति से सच्चे तत्वों में श्रद्धा स्थिर रखना।

३. चारित्र विनय—बड़े आदर से साधु का या श्रावक का चारित्र पालना।

४. उपचार विनय—देव, गुरु, शास्त्र आदि पूजनीय पदार्थों का मुखसे स्तवन व काय से नमन आदि करना।

[३] वैय्यावृत्य—बिना किसी स्वार्थके सेवा करना। निम्न दश प्रकार के साधुओं की सेवा सदा करनी चाहिये—

१. आचार्य २ उपाध्याय ३. तपस्वी ४. शैक्ष्य-नवीन शिष्य मुनि ५. ग्लान-रोगी ६. गण-एक विशेष संघ ७. कुल-एक ही गुरु के शिष्य ८. संघ-मुनि समूह ९. साधु-बहुत कालके साधक.१०. मनोज्ञ-सुन्दर विद्वान सुप्रसिद्ध साधु।

[४] स्वाध्याय—शास्त्रोंका मनन-यह पांच तरहसे होता है। १ वाँचना-पढना सुनना २ पृच्छना-शङ्काको साफ़

करने के लिए प्रश्न कर निर्णय करना ३ अनुप्रेक्षा-जाने हुए पदार्थों का वार वार चिन्तवन करना ४ आम्नाय-शुद्ध शब्द व अर्थ कंठ करना ५ धर्मोपदेश करना।

[५] व्युतसर्ग—बाहरी और भीतरी परिग्रहसे ममता त्यागना-ऐसा दो प्रकार है।

[६] ध्यान—चित्तको एक किसी पदार्थ में रोक कर तन्मय हो जाना। ‡

५३. ध्यान

ध्यान चार तरह का होता है १. आर्त्त २ रौद्र ३. धर्म ४ शुक्ल। इन में पहिले दो पापवन्ध के कारण हैं। धर्म और शुक्ल में जितनी वीतरागता है वह कर्मों की निर्जरा करती है व जितना शुभराग है वह पुण्य वन्ध का कारण है।

१, आर्तध्यान चार तरह का होता है:—

१. इष्ट वियोगज-इष्ट स्त्री, पुत्र धनादिके वियोग पर शोक करना।

२. अनिष्ट संयोगज-अनिष्ट दुखदाई सम्बन्ध होने पर शोक करना।

३. पीड़ा चिन्तवन-पीड़ा रोग होने पर दुःखी होना।

४. निदान-आगामी भोगों की चाह से जलना।

---

‡ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग विविक्त शय्यासनकायक्लेशावाह्यं तपः ॥ १९ ॥ प्रायश्चितविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युतसर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ (तत्वा० अ० ९)

२. रौद्रध्यान चार तरह का होता है :—

१. हिंसानन्द–हिंसा करने कराने में व हिंसा हुई सुनकर आनन्द मानना।

२. मृषानन्द–असत्य बोलकर, बुलाकर व बोला हुआ जान कर आनन्द मानना।

३ चौर्यानन्द–चोरी करके, कराके व चोरी हुई सुनकर हर्षित होना।

४. परिग्रहानन्द–परिग्रह बढाकर, व बढ़वाकर व बढ़ती हुई देखकर हर्ष मानना।

३. धर्मध्यान चार प्रकार का है :—

१. आज्ञाविचय–जिनेन्द्र की आज्ञानुसार आगम के द्वारा तत्वों का विचार करना।

२ अपाय विचय–अपने व अन्य जीवोंके अज्ञान व कर्म के नाश का उपाय विचारना।

३. विपाक विचय–आपको व अन्य जीवों को सुखी या दुःखी देखकर कर्मों के फल का स्वरूप विचारना।

४ संस्थान विचय–इस लोकका तथा आत्माका आकार व स्वरूप का विचार करना। इस के चार भेद हैं :—

१ पिंडस्थ २ पदस्थ ३ रूपस्थ ४ रूपातीत।

५४. पिंडस्थ ध्यान

ध्यान करने वाला मन वचन काय शुद्धकर एकान्त स्थान में जाकर पद्मासन या खड़े आसन व अन्य किसी आसन से

तिष्ठ कर अपने पिंड या शरीर में विराजित आत्मा का ध्यान करे सो पिंडस्थ ध्यान है। इस की पांच धारणायें हैं :—

१. पार्थिवीधारणा—इस मध्यलोक को क्षीर समुद्र के समान निर्मल देखकर उस के मध्यमें एक लाख योजन व्यास वाले जम्बूद्वीप के समान ताए हुए सुवर्ण के रङ्ग का एक हज़ार पाँखड़ी का एक कमल विचारे। इस कमल के मध्य सुमेरु पर्वत समान पीत रङ्ग की ऊंची कर्णिका विचारे। फिर इस पर्वत के ऊपर पाण्डुक बन में पाण्डुक शिला पर एक स्फटिक मणिका सिंहासन विचारे और यह देखे कि मैं इसी पर अपने कर्मों को नाश करने के लिये बैठा हूँ। इतना ध्यान बार बार करके जमावे और अभ्यास करे। जब अभ्यास हो जावे तब दूसरी धारणा का मनन करे।

२. अग्निधारणा—इसी सिंहासन पर बैठा हुआ ध्यान करने वाला यह सोचे कि मेरे नाभि के स्थान में भीतर ऊपर मुख किये खिला हुआ एक १६ पांखडी का श्वेत कमल है। उसके हर एक पत्ते पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे १६ स्वर क्रम से पीले लिखे हैं व बीच में हँ पीला लिखा है। इसी कमल के ऊपर हृदय स्थान में एक कमल औंधा खिला हुआ आठ पत्ते का काले रङ्ग का विचारे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ऐसे आठ कर्म रूप है, ऐसा सोचे। पहिले कमल के हँ के ँ से धुआँ निकल कर फिर अग्नि शिखा निकल कर बढ़ी, सो दूसरे कमल को जलाने लगी, जलाते हुए शिखा अपने मस्तक पर आ गई और फिर वह अग्नि शिखा शरीरके दोनों तरफ़ रेखारूप आकर नीचे दोनों कोनों

से मिल गई और शरीर के चारों ओर त्रिकोणरूप हो गई। इस त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर र र र र र र र अग्निमय वेष्टित है तथा इस के तीनों कोनों मे बाहर अग्निमय स्वस्तिक हैं। भीतर तीनों कोनों मे अग्निमय ऊँरं लिखे है ऐसा विचारे। यह मण्डल भीतर तो आठ कर्मों को और बाहर शरीर को दग्ध करके राखरूप बनाता हुआ धीरे २ शान्त हो रहा है और अग्निशिखा जहाँ से उठी थी वही समा गई है, ऐसा सोचना सो अग्निधारणा है। इस मण्डल का चित्र इस तरह पर है:—
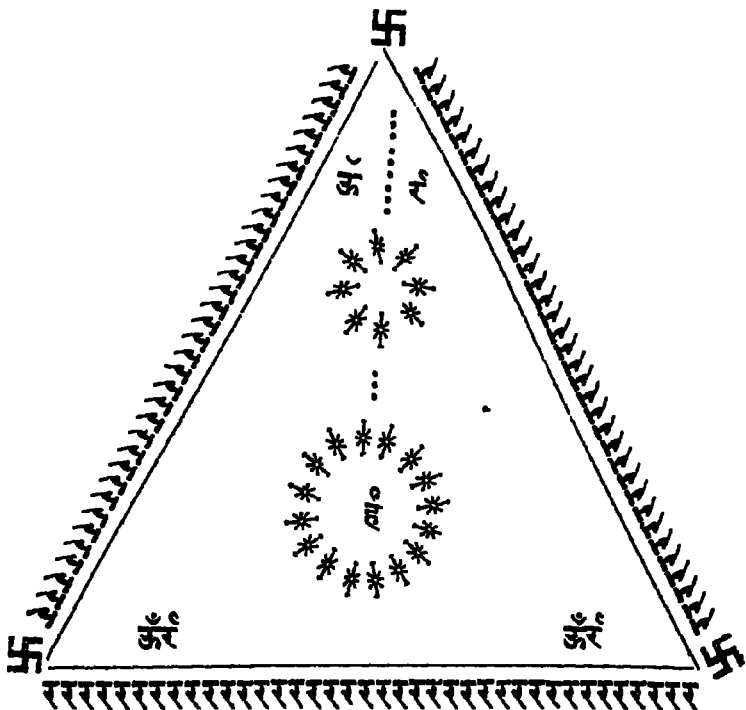
३. पवन धारणा—दूसरी धारणा का अभ्यास होनेके पीछे यह सोचे कि मेरे चारों ओर पवन मण्डल घूम कर राख को उड़ा रहा है। उस मंडल में सब ओर स्वाय स्वाय लिखा है।※

४. जल धारणा—तीसरी धारणा का अभ्यास होने पर फिर यह सोचे कि मेरे ऊपर काले मेघ आ गए और खूब पानी, बरसने लगा। यह पानी, लगे हुए कर्म मैल को धोकर आत्मा को स्वच्छ कर रहा है। प प प प जल मंडल पर सब ओर लिखा है।‡

५. तत्व रूपवती धारणा—चौथी का अभ्यास होजावे तब अपने को सर्व कर्म व शरीर रहित शुद्ध सिद्ध समान अमूर्तीक स्फटिकवत् निर्मल आकार देखता रहे, यह पिंडस्थ आत्मा का ध्यान है।

५५. पदस्थध्यान

पदस्थ ध्यान भी एक भिन्न मार्ग है। साधक इच्छानु-

सार इसका भी अभ्यास कर सकता है। इसमें भिन्न २ पदोंको विराजमान कर ध्यान करना चाहिये। जैसे हृदय स्थान में आठ पाँखड़ी का सुफ़ेद कमल सोचकर उसके आठ पत्तों पर क्रम से नि आठ पद पीले लिखे—
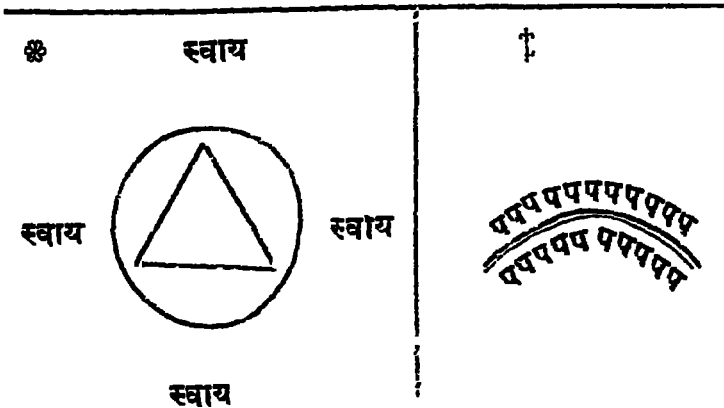
१. णमो अरहंताणं २. णमो सिद्धाणं ३. णमोआइ-रीयाणं ४ णमोउवज्झायाणं ५. णमो लोएसव्वसाहूणं ६. *सम्यग्दर्शनायनमः ७ सम्यग्ज्ञानायनमः ८. सम्यक् चारि-त्रायनमः* और एक एक पद पर रुकता हुआ उस का अर्थ विचारता रहे। अथवा अपने हृदय पर या मस्तक पर या दोनों भौंहों के मध्य में या नाभि में हँ या ॐ को चमकते सूर्य सम देखे व अरहंत सिद्ध का स्वरूप विचारे। इत्यादि

५६. रूपस्थ ध्यान

ध्याता अपने चित्तमें यह सोचे कि मै समवशरण में साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान को अन्तरीक्ष ध्यानमय परम वीत-राग, छत्र चमरादि आठ प्रातिहार्य सहित देख रहा हूँ। १२ सभायें है जिनमे देव, देवी, मनुष्य, पशु, मुनि आदि बैठे है। भगवानका उपदेश हो रहा है। अथवा ध्याता किसी भी अर-हन्त की प्रतिमा को अपने चित्त में लाकर उसके द्वारा अर-हन्त का स्वरूप विचारे।

५७. रूपातीत ध्यान

ध्याता इस ध्यान में अपने को शुद्ध स्फटिकमय सिद्ध भगवान के समान देखकर परम निर्विकल्प रूप हुवा ध्यावे।

५८. शुक्ल ध्यान

धर्म ध्यानका अभ्यास मुनिगण करते हुए जब सातवें दर्जे [गुणस्थान] से आठवें दर्जे में जाते है तब से शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं। इसके भी चार भेद है। पहले दो साधुओं के अन्तके दो केवलज्ञानी अरहन्तों के होते है।

१. पृथक्त्व वितर्क वीचार—

यद्यपि शुक्ल ध्यान में ध्याता बुद्धिपूर्वक शुद्धात्मा में ही लीन है तथापि उपयोग की पलटन जिसमें इस तरह होवे कि मन, वचन, कायका आलम्बन पलटता रहे, शब्द पलटता रहे व ध्येय पदार्थ पलटता रहे, वह पहला ध्यान है। यह आठवेंसे ११ वें गुणस्थान तक होता है।

२, एकत्व वितर्क अवीचार—

जिस शुक्ल ध्यान में मन, वचन, काय योगों में से किसी एक पर, किसी एक शब्द व किसी एक पदार्थके द्वारा उप योग स्थिर हो जावे सो दूसरा शुक्ल ध्यान १२ वें गुणस्थान में होता हैं।

३, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति—

अरहन्त का काय योग जब तेरहवें गुणस्थान के अन्तमे सूक्ष्म रह जाता है तब यह ध्यान कहलाता है।

४, व्युपरत क्रिया निवर्ति—

जब सर्वयोग नहीं रहते व जहां निश्चल आत्मा होजाता है तब यह चौथा शुक्ल ध्यान चौदहवें गुणस्थान में होता है।

यह सर्व कर्म बंधन काटकर आत्मा को परमात्मा या सिद्ध कर देता है। *

५६. मोक्ष तत्व

जब कर्मबध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग सब बंद होजाते हैं व पहले बांधे हुए सर्व कर्मों की निर्जरा होजाती है, तब यह जीव सूक्ष्म व स्थूल शरीरों से छुटा हुआ पूर्ण शुद्धहोकर अन्तिम देह के आकार से कुछ कम सीधा ऊपर को गमन करता है और लोकाकाश के अन्तमें सिद्ध क्षेत्र पर ठहर जाता है। वहां उसी ध्यानाकार चैतन्यमई भाव में अन्य आत्माओं से भिन्न अपने सर्व गुणों को पूर्ण विकसित करता हुवा अनन्त अतींद्रिय सच्चे आनन्द में मग्न रह कर परम निराकुल व परम कृतकृत्य हो जाता है। न यह किसीमें मिलता है न यह फिर कभी अशुद्ध होकर जन्म धारण करता है। इसी को परमात्मा, परमब्रह्म, परमप्रभु, ईश्वर, सर्वज्ञ, वीतराग, परमसुखी कहते हैं। †

---

* ध्यानका विशेष स्वरूप श्री शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णव ग्रंथ में देखो।

† अभावाद्बन्ध हेतूनां बंध निर्जरयातथा।
कृत्स्न कर्म प्रमोक्षोहि मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २ ॥
दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुर ॥ ७ ॥
आकारभावतोऽभावो न च तस्य प्रसज्यते।
अनन्तर परित्यक्त शरीराकार धारिणः ॥ १५ ॥

आत्मा जैसा अन्तिम शरीर छोड़ते समय होता है वैसा ही उसका चेतनामय आकार सिद्ध क्षेत्र में रहता है। शरीर की मापमें नखकेशादि की माप भी आजाती है। जिनमें आत्मा व्यापक नहीं है, इतनी नाप कम होजाती है।

६०. चौदह गुणस्थान

संसारी जीवोंके मोहनीय कर्म और योगों के निमित्त से चौदह दर्जे होते हैं जिन में यह आत्मा भावों के क्रम से अशुद्धि कम करता हुआ पूर्ण परमात्मा हो जाता है। इनको गुणस्थान कहते हैं—

१. मिथ्यात्व गुणस्थान—जिस में सात तत्वों का देव, गुरु, धर्म व आत्मा का सच्चा श्रद्धान न हो, आत्मानन्द की पहिचान न हो। संसार सुख ही सुहावे। इस में प्रायः सर्व ससारी जीव हैं।

संसार विषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ ४५ ॥
(तत्वार्थसार-मोक्षतत्व)

भावार्थ—बंध कारणोंके चले जानेसे व बन्धकी निर्जरा हो जाने से सर्व कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है। जैसे बीज भुन जाने पर फिर उस में अकुंर नहीं फूट सकता वैसे कर्मबीज के जल जाने पर संसार अंकुर नहीं होता।

सिद्ध परमात्मा के आकार का अभाव नहीं है। वह पिछले छूटे हुए शरीर के प्रमाण आकार धारी हैं। सिद्धों के संसार के इन्द्रिय विषयों से भिन्न, बाधा रहित, अविनाशी, उत्कृष्ट सुख पैदा होता है, ऐसा परमर्षियों ने कहा है।

२. सासादन गुणस्थान—पहिले दर्जे से एक दम चौथे अविरत सम्यक्त्व में जाकर अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से गिर कर इस में आता है फिर तुर्त ही मिथ्यात्व में चला जाता है।

३. मिश्र गुणस्थान—जहाँ मिथ्या व सत्य श्रद्धान के मिले हुए भाव होते हैं। जैसे दही मीठेका मिला हुआ स्वाद। यहां दर्शन मोह की सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होना है।

४. अविरत सम्यक्त्व—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा अनात्मा के विवेक होने पर निर्मल भावों से तत्व का मनन करते हुए जब अनन्तानुबन्धी कषाय चार और मिथ्यात्व प्रकृति इन पांच का उपशम कर देता है अर्थात् इन के उदय को अन्तमुंहूर्त के लिए दबा देता है तब पहिले से झट चौथे में आकर उपशम सम्यक्त्वी हो जाता है। तब मिथ्यात्व कर्म के तीन टुकड़े कर देता है, कुछ सम्यक् प्रकृति रूप, कुछ मिश्ररूप, कुछ मिथ्यात्वरूप। तब इस की सत्ता में सम्यग्दर्शन की बाधक सात प्रकृतियें होजाती हैं।

यह जीव अन्तमुंहूर्तके भीतर कुछ समय रहते हुए यदि अनन्तानुबन्धी का उदय पालेता है तब सासादनमें गिरता है, यदि अन्तमुंहूर्त पीछे मिथ्यात्व का उदय होजाता है तो फिर चौथे से पहिले में आ जाता है। यदि सम्यक् प्रकृति का उदय हुआ तो चौथे में ही रहकर क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। क्षयोपशम सम्यक्त्व से गिर कर मिश्र प्रकृति के उदय होने पर तीसरे में आ सकता है।

इस क्षयोपशम सम्यक्त्व का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर काल है। यही यदि सातों प्रकृतियों का क्षय कर डालता है तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि होजाता है। फिर अनन्त काल तक कभी मिथ्यात्वी नहीं होता है और तीसरे या चौथे भव में मोक्ष पा लेता है।

जो सम्यग्दर्शन से गिरकर पहिले मे आता है उसको सादि मिथ्यादृष्टि कहते हैं, उसको फिर चौथे में जाने के लिए सात प्रकृतियों का व कभी केवल चार कषाय व एक मिथ्यात्व का ही उपशन करना पडता है; और तब मिश्र तथा सम्यक् प्रकृति दोनों सत्ता मे से खिर जाती है।

५. देश विरत—सम्यग्दृष्टि जीव श्रावक गृहस्थ के व्रतों को रोकने वाली अप्रत्याख्यानावरण चार कषाय के उपशम होने पर इस दर्जे मे आकर श्रावक के बारह व्रतों को ग्यारह श्रेणियों या प्रतिमाओं के द्वारा उन्नति करना हुआ पालता है।

इस के आगे के दर्जे साधुओं के है।

६. प्रमत्त विरत—प्रत्याख्यानावरण कषाय जो मुनिव्रत को रोकती थी उस के उपशम होने पर यह दर्जा होता है। यह सातवे से गिर कर होता है, पाँचवें से सातवें में जाता है। छठा सातवाँ बार बार होता रहता है।

इस के आगे के दर्जों में प्रमाद भाव नहीं रहता है।

७. अप्रमत्त विरत—यहाँ संज्वलन चार व नौ नो कषाय का मन्द उदय होने पर धर्म ध्यान में निर्विकल्परूप से मग्न रहता है।

इसके आगे दो श्रेणियां हैं—एक उपशम दूसरी क्षपक। जहां अनन्तानुबन्धी चार के सिवाय २१ कषायोंका उपशम किया जावे वह उपशम व जहां क्षय किया जावे वह क्षपक श्रेणी है। उपशमके ८, ९, १० व ११ तथा क्षपक के ८, ९, १० व १२ ऐसे चार दर्जे हैं। उपशमवाला ११वें से अवश्य गिरता है। क्षपक १० वेंसे १२ वें में जाकर चार घातिया कर्म रहित होकर १३ वें में जाकर अरहन्त परमात्मा हो जाता है।

८. अपूर्व करण—जहां अनुपम शुद्ध भाव हों—यहाँ साधु के पहिला शुक्ल ध्यान होता है।

९. अनिवृत्ति करण—जहाँ ऐसे शुद्ध भाव हों कि साधु सर्व अन्य कषायों का उपशम या क्षय कर डाले, केवल अन्त में सूक्ष्म लोभ रह जावे।

१०. सूक्ष्म साम्पराय—जहाँ केवल सूक्ष्म लोभ रह जावे व साधु ध्यानमग्न ही बना रहे।

११. उपशांत मोह—जहाँ सर्व कषायों का उपशम होकर साधु वीतरागी हो जावे।

१२. क्षीण मोह—जहां सर्व कषायों का क्षय होकर साधु वीतरागी बना रहे, गिरे नहीं। यहां दूसरा शुक्ल ध्यान होता है।

१३. सयोगकेवली—यहां ज्ञानावरणादि ४ घातिया कर्मों से रहित हो अरहन्तपरमात्मा, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त-बली व अनन्त सुखी होजाता है व शरीरमें रहते हुए जिसके बिना इच्छा के विहार व उपदेश होता है। यहां आत्मा के

प्रदेश सकम्प होते हैं, इस से सयोग कहलाते हैं। यहाँ अन्त में तीसरा शुक्लध्यान होता है।

१४. अयोगकेवली—जहां आत्म प्रदेश सकम्प न हों, निश्चल आत्मा रहे। यहां चौथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्मों का नाश कर गुणस्थानों से बाहर हो सिद्ध परमात्मा होजाता है।

इसका ठहरने का काल उतना है जितनी देर में अ, इ, उ, ऋ, लृ, ये पाँच अक्षर कहे जावें। १३ वें का व ५ वें का उत्कृष्ट काल लगातार एक कोड़पूर्व ८ वर्ष व अन्तमुहूर्त कम है। दूसरे का छः आवली। ※

चौथे का तेतीस सागर कुछ अधिक। तीसरे का व छटे से लेकर १२ वें तकका प्रत्येक का अन्तमुहूर्त से अधिक काल नहीं है। पहले का काल अनन्त है। यह कालकी मर्यादा एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट कही गई है। ‡

६१. गुणस्थानों में कर्मों का बंध, उदय और सत्ता का कथन

१४८ कर्मों में से १२० बँधमें व १२२ उदय में गिनाई गई

※आवली असंख्यात समयोंकी होती है। पलक मारने में जो समय लगे उसके लगभग।

‡ मिथ्यादृक् सासनो मिश्रोऽसंयतो देशसंयतः।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्ति करणौ तथा ॥ १६ ॥
सूक्ष्मोपशान्त संक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ।
गुणस्थान विकल्पाः स्युरितिसर्वे चतुर्दश ॥ १७ ॥
[तत्वार्थसार अ० २]

हैं। ५ बधन, ५ संघात, पांच शरीरोंमें तथा स्पर्शादि २० केवल मूल चार स्पर्शादि में, मिश्र व सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व में गर्भित हैं। इस तरह बंधमें १०+१६+२ अर्थात् २८ कम व उदय में १०+१६ केवल २६ ही कम हुई, केवल मिश्र व सम्यक् प्रकृति नही।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्म के तीन खण्ड हो जाते हैं-मिथ्यात्व, मिश्र व सम्यक्त्व, इसलिये बंध एक का और उदय तीन का होता है।

जितने कर्म नये वँधते है उनको बन्ध, जितने फल देते है व बिना फल दिये निमित्त बिना गिरते हैं उनको उदय और जो बिना फल दिये व गिरे बैठे रहैं उनको सत्ता कहते हैं।

१. मिथ्यात्व गुणस्थान में—

बंध—१२० में से ११७ का। यहां तीर्थङ्कर आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपाङ्ग का वन्ध नही होता है।

उदय—१२२ में से ११७ का। यहां तीर्थङ्कर आहारक दो सम्यक् प्रकृति व मिथ्यात्व, इन पांच का उदय नहीं।

सत्ता—१४८ की ही।

२. सासादन गुणस्थान में—

बंध—११७ में से १६ कम यानी १०१ का। वे १६ ये हैं:—

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकआयु, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, हुंडक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिक संहनन, एकेन्द्रिय से चौंद्रिय चार जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

उदय—११७ में से ६ निकालकर १११ का । वे छः ये हैं :—

मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरक-गत्यानुपूर्वी ।

सत्ता—१४५ की । १४८ में से तीर्थङ्कर, आहारक, यह दो कम होती है ।

३. मिश्र गुणस्थान में—

बंध—१०१ में से २७ कम करके ७४ का । वे २७ ये हैं :—

स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, अनन्तानुबन्धी क्रोधादि ४, स्त्रीवेद, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, न्यग्रोध से वामन चार सस्थान, वज्रनाराच से ले कीलक चार संहनन, मनुष्यायु और देवायु ।

उदय—१०० का । १११ में से अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय से चौइंद्रियतक ४ जाति, स्थावर, तिर्यंच, मनुष्य, देवगत्यानुपूर्वी ३, ऐसे १२ घटाने व एक सम्यक् मिथ्यात्व मिलाने से ११ घटती हैं ।

सत्ता—१४७ की तीर्थङ्कर के सिवाय ।

४. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में—

बंध—७७ का । तीसरे की ७४ मे मनुष्यायु, देवायु, तीर्थकर तीन मिलाने पर ।

उदय—१०४ का । तीसरे की १०० में से सम्यक् मिथ्या-

त्व को घटाकर ६६ रहीं, उनमें चार गत्यानुपूर्वी व एक सम्यक् प्रकृति मिला देने पर।

सत्ता—१४८ की। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो एक सौ इकतालीस की ही सत्ता होगी।

५, देशविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ का। चौथे की ७७ में से १० घटाने पर। वे १० ये हैं —

अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, वज्र वृषभनाराच संहनन।

उदय—८७ का। चौथे की १०४ में से १७ घटाने पर। वे १७ ये हैं:—

अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, नरकायु, देवायु, नरकादि ४ आनुपूर्वी, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपांग, दुर्भग, अनादेय, अयश।

सत्ता—नरकायु के बिना १४७ की, परन्तु क्षायिक के केवल १४० की ही।

६. प्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—६७ में से प्रत्याख्यानावरण कषाय चार घटाने पर ६३ का।

उदय—८१ का। ८७ में से प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, उद्योत, नीच गोत्र घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने से।

सत्ता—१४७ में से तिर्यंचायु घटाने पर १४६ की, परन्तु क्षायिक के केवल १३९ की।

७, अप्रमत्तविरत गुणस्थान में—

बंध—५९ का। ६३ में से अरति, शोक, असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ, अयश घटाने व आहारक शरीर व आहारक आङ्गोपांग मिलाने पर।

उदय—७६ का। ८१ में से आहारक दो, निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि घटाने पर।

सत्ता—१४६ की, परन्तु क्षायिक के १३९ की।

८, अपूर्वकरण गुणस्थान में—

बंध—५९ में से देवायु घटाकर ५८ का।

उदय—७२ का। ७६ में से सम्यक् प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक व असंप्राप्तासृपाटिक संहनन घटाने पर।

सत्ता—१४६ में से अनन्तानुबन्धी चार कषाय घटाने पर १४२ की, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ की तथा क्षपक श्रेणी वाले के देवायु घटाकर १३८ की।

९, अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में—

बंध २२ का। ५८ में से ३६ घटाने पर। वे ३६ ये हैं :—

निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देव गति

देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय।

उदय—७२ में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा घटाने पर ६६ का।

सत्ता—आठवें के अनुसार १४२, १३९ या १३८ की।

१०. सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में—

बंध—१७ का। २२ में से संज्वलन क्रोधादि ४ व पुरुष वेद घटाने पर।

उदय—६० का। ६६ में से संज्वलन कषाय लोभ सिवाय ३ व स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, यह ६ घटाने पर।

सत्ता—उपशम श्रेणी में १४२ की व क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ की तथा क्षपक श्रेणी में १०२ की। १३८ में से ३६ घटाने पर। वे ३६ ये हैं :—

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, प्रत्याख्यानावरण कषाय ४, संज्वलन क्रोध, मान, माया ३, नो कषाय ९, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय से चौइन्द्रिय ४, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर।

११. उपशांतमोह गुणस्थान में—

बंध—१ साता वेदनीय का। १७ में से १६ घटाने पर। वे १६ ये हैं :—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, उच्च गोत्र, यश।

उदय—५९ का। ६० में से संज्वलन लोभ घटाने पर।

सत्ता—दशवें की तरह १४२ की व क्षायिकके १३९ की।

१२, क्षीणमोह गुणस्थान में—

बंध—११ वें की तरह १ साता वेदनीय का ही।

उदय—५७ का। ५९ में से वज्र नाराच व नाराच घटाकर।

सत्ता—१० वें की क्षपक श्रेणी में १०२ में से संज्वलन लोभ घटाकर १०१ की।

१३, सयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—एक साता का।

उदय—५७ में से १६ घटाने पर ४१ का व तीर्थङ्कर के तीर्थङ्कर प्रकृति सहित ४२ का। वे १६ ये हैं—

ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अंतराय ५।

सत्ता—८५ की। १०१ में से ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, निद्रा, प्रचला, अन्तराय ५ ऐसी १६ घटाने पर।

१४, अयोग केवली गुणस्थान में—

बंध—० कोई नहीं।

उदय—१२ का। ४२ में से ३० घटाने पर। वे ३० ये हैं:—

१ काई वेदनीय, वज्र वृषभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थानादि ६ संस्थान, स्पर्शादि ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक। जो उदय में रहीं वे १२ ये हैं —

१ वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, उच्चगोत्र, तीर्थङ्कर।

नोट—जो तीर्थङ्कर नहीं होते उनके ११ का ही उदय रहता है।

सत्ता—८५ की थी, परन्तु अन्त समय के पहले समय में ७२, फिर अन्त में १३, इस तरह कुल ८५ का क्षय कर १४ वें गुणस्थान से छूटते ही कर्मों की सत्ता से छूट जाते हैं और सिद्ध परमात्मा निजानन्दी हो जाते हैं।

यह कथन अनेक जीवों की अपेक्षा है। एक कोई जीव मनुष्य हो या पशु हो या देव हो या नारकी हो व एकेन्द्रिय द्वेन्द्रिय आदि हो उसका कथन श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड से देखना चाहिये।

उपरोक्त कथन निम्न नक़शे से स्पष्ट समझ लेना चाहिये—

नक़शा

नाम गुणस्थान	बंध	उदय	सत्ता
मिथ्यात्व	११७	११७	१४८
सासादन	१०१	१११	१४५

मिश्र	७४	१००	१४७
अविरतसम्यग्दृष्टि	७७	१०४	१४८ या १४१
देश विरत	६७	८७	१४७ या १४०
प्रमत्त विरत	६३	८१	१४६ या १३६
अप्रमत्त विरत	५६	७६	१४६ या १३६
अपूर्व करण	५८	७२	१४२, १३६ या १३८
अनिवृत्ति करण	२२	६६	१४२, १३६ या १३८
सूक्ष्म सांपराय	१७	६०	१४२, १३६ या १०२
उपशांत मोह	१	५६	१४२ या १३६
क्षीण मोह	१	५७	१०१
सयोग केवली	१	४१ या ४२	८५
अयोग केवली	०	१२ या ११	अन्त में ०

६२. नौ पदार्थ

सात तत्वों में पुण्य और पाप जोड़ देने से नौ पदार्थ कहलाते हैं। आठ कर्म व उनके १४८ भेदोंमें पहले यह बताया जा चुका है कि पुण्यकर्म व पापकर्म कौन कौन हैं। वास्तव में ये आस्रव व बंध में गर्भित हैं, परन्तु लोगों में पुण्य पाप का नाम प्रसिद्ध है; इसलिये इनको विशेषरूप से भिन्न कहने की अपेक्षा नौ पदार्थ जैन सिद्धान्त में कहे गये हैं।

६३. सम्यग्ज्ञान

ज्ञान तो हर एक जीव में थोड़ा या बहुत होता ही है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन के होने पर सम्यग्ज्ञान कहलाता है। जिसको सात तत्व और नौ पदार्थों के व विशेष कर आत्म मनन के

प्रभाव से निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, उसी के उसी समय उसका सर्वज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पालेता है।

पूर्ण सम्यग्ज्ञान केवलज्ञान है जो सर्व कुछ देखता है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शनसहित अपूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र के प्रभाव से प्रगट होता है। इसके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल, ये पांच भेद हैं जिनका वर्णन प्रमाण में किया गया है।

६४. सम्यक् चारित्र

वास्तव में जिस समय सम्यग्दर्शन हो जाता है, तब ही स्वरूपाचरण चारित्र भी प्रकट हो जाता है, परन्तु कषायों का उदय जारी रहने से व राग द्वेष के होने से पूर्ण सम्यक् चारित्र नही होने पाता है इसी की प्राप्ति के लिए व्यवहार चारित्र की सहायता से आत्मामें एकाग्रता रूप स्वरूपाचरण का अभ्यास करना उचित है। *

इस सम्यक् चारित्र को जो पूर्णपने निराकुल होकर पाल सकते हैं वे साधु हैं, जो अपूर्ण पाल सकते हैं वह श्रावक या गृहस्थ हैं। वास्तव में बिना साधु हुए सर्व कर्मों का नाश नहीं हो सकता है।

---

* मोह तिमिरापहरणे दर्शन लाभादवाप्त संज्ञानः ।
राग द्वेष निवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥
(रत्नकरण्ड०)

भावार्थ—मिथ्यादर्शन रूपी अँधेर के जाने पर व सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होने पर राग द्वेष को हटाने के लिए साधु को चारित्र पालना चाहिए।

६५. साधुका चारित्र

कोई वीर पुरुष परम वैरागी होकर, कुटुम्ब को समझा कर व सब से क्षमा भाव कराकर वा यदि कुटुम्ब का सम्बन्ध न हुवा तो यों ही परोक्ष क्षमा भाव करके, किसी आचार्य के पास जाकर सर्व धनादि वस्त्रादि परिग्रह त्याग कर नग्न दिगम्बर हो साधु पद धार लेता है। वह केवल मोर पङ्ख की पिच्छिका जीव रक्षार्थ झाड़ने के लिए व कमण्डल में शौच के लिए जल व आवश्यक हो तो शास्त्र रखते है वे और कुछ नहीं धारण करते हैं। मोर के पंख बहुत कोमल होते हैं, इस से छोटे से छोटा कीट भी बच सकता है व ये पंख स्वयं मोर के नाचने पर गिर पड़ते है। वे निम्न २८ मूल गुण पालते है:—

५ महाव्रत, ५ समिति (जिनका वर्णन न० ४४, ४५ में है) का पालन और ५ इन्द्रियों की इच्छाओं का दमन करते हैं। छः आवश्यक नित्य कर्म पालते है—जैसे (१) सामायिक अर्थात् प्रातःकाल, मध्यान्हकाल व सायंकाल छः घडी, ४ घड़ी व अशक्त होने पर २ घड़ी शान्ति से ध्यान का अभ्यास करना। एक घड़ी चौबीस मिनट की होती है। (२) प्रतिक्रमण अपने मन, वचन, काय के द्वारा व्रतों के पालन में जो दोष लग गए हों उनका पश्चात्ताप करना (३) प्रत्याख्यान—आगामी दोष न लगाने का विचार करना (४) संस्तव—चौबीस तीर्थङ्कर आदि पूज्य आत्माओं की स्तुति करना (५) वन्दना—एक किसी तीर्थंकर को मुख्य कर के उन को वन्दना करनी (६) कायोत्सर्ग—शरीर से ममता त्याग कर आत्म-ध्यान में लीन होना।

इन २१ मूलगुणो के सिवाय सात बातें ये हैं :—

(१) लोंच—अपने मस्तक, दाढ़ी मूँछ के बालों को अपने ही हाथों से ४, ३ या कम से कम दो मास पीछे उखाड़ डालना। जिसके शरीर में ममता न होगी, वही घास के समान बालों को नोचते हुए कभी क्लेशित न होगा।

(२) नग्नपन—कोई तरह का वस्त्रादि का ढकना साधु महाराज नहीं रखते हैं। बालक के समान लज्जा के भाव से रहित होते हैं।

(३) स्नान का त्याग—साधु महाराज जीवदया को पालने व शरीर की शोभा मिटाने को स्नान नहीं करते मन्त्र व वायु से ही उन के शरीर की शुद्धि होती है।

(४) भूमिशयन—ज़मीन पर बिना बिछौने के सोते है।

(५) दातौन न करना—जीव दया पालने व शोभा मिटाने के हेतु दंतवन नहीं करते। भोजन के समय मुँह शुद्ध कर लेते हैं।

(६) स्थिति भोजन—खड़े होकर हाथमें ही जो श्रावक अपने लिए बनाए हुये भोजन में से रख दे उसी को लेते हैं जिस से ममता न बढ़े व वैराग्य की वृद्धि हो।

(७) एक भुक्त—दिन में ही एक दफ़े भोजन पानी एक साथ लेते हैं।

इन २८ मूल गुणों को पालते हुये जो आत्मध्यान का अभ्यास करते हैं वे साधु हैं।

ये साधु पहले कहे हुए संवर व निर्जरा के उपायों को

अच्छी तरह पालते हैं। इसी साधु पद से ही अरहन्त व सिद्ध पद होता है। *

६६. आचार्य उपाध्याय व साधु का अन्तर

साधुओं में ही काय की अपेक्षा तीन पद हैं। जो दूसरे साधुओं की रक्षा करते हुए उन को शिक्षा देकर, उन पर अपनी आज्ञा चला कर, उन के चारित्र की वृद्धि करते हैं वे साधु आचार्य हैं।

जो साधु विशेष शास्त्रों के ज्ञाता होकर अन्य साधुओं को विद्या पढ़ाते हैं वे उपाध्याय हैं।

जो मात्र साधन करते हैं वे साधु हैं।

१४ गुणस्थानों में से जो छठे सातवें गुणस्थान में ही रहते हैं वे आचार्य व उपाध्याय हैं जो छठे से ले कर बारहवें तक साधते हैं वे साधु हैं।

६७. जैनियों का णमोकार मंत्र व उसका महत्व

सर्व जैन लोग नीचे लिखा महामंत्र जपा करते हैं और उसको अनादि मूलमंत्र कहते हैं।

"णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमोलोए सव्व साहूणम् ॥

---

* २८ मूल गुण —

वद समिदिंदियरोधो लोचावस्सक मचेल मराहाणं।
खिदि सयण मदंतवणं, ठिदिभोयण मेय भत्तंच ॥ ८ ॥

(प्रवचनसार चारित्र)

इस में ७+५+७+७+९=३५ अक्षर हैं तथा ११+९ +११+१२+१६=५९ मात्राएँ हैं। इसका अर्थ है—

लोक में सब अरहंतों को नमस्कार हो, सर्व सिद्धों को नमस्कार हो, सर्व आचार्यों को नमस्कार हो, सर्व उपाध्यायों को नमस्कार हो, सर्व साधुओं को नमस्कार हो। इस जगत में सबसे अधिक माननीय ये ही पांच पद हैं।

अरहंत शरीर सहित परमात्मा हैं जिन का गुणस्थान १३ वां व १४ वां है। सिद्ध शरीर रहित परमात्मा हैं। आचार्य दीक्षा दाता गुरु व उपाध्याय ज्ञान दाता मुनि, ये दोनों छठे सातवें गुणस्थान में होते है। इनके सिवाय मात्र साधने वाले छटे से १२ वें गुणस्थान तक साधु कहलाते हैं। बड़े २ इंद्रादि देव व चक्रवर्ती भी इनके चरणों को नमस्कार करते हैं।

यह मन्त्र १०८ दफ़े जपा जाता है, क्योंकि १०८ प्रकार ही जीवों के बन्ध के आधार-भाव हुआ करते हैं।

किसी काम का विचार करना संरम्भ है, उसका प्रबंध समारंभ है, उस को शुरू कर देना आरम्भ है। हर एक मन, वचन, काय द्वारा हो सकते हैं, इससे नौ भेद हुए। इन नौ को स्वयं करना, कराना व किसी ने किया हो उस का अनुमोदन करना, इससे २७ भेद हुए। हर एक क्रोध, मान, माया, लोभ से होते हैं, इस तरह १०८ भेद हुए।

माला में १११ दाने होते हैं। तीन दाने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के सूचक होते हैं। जप करते हुए १०८ दफ़े मन्त्र जपते है। एक एक दाने पर पूर्णमन्त्र फिर तीन दानों पर सम्यग्दर्शनायनमः, सम्यग्ज्ञानायनमः, सम्यक् चारित्रायनमः कहते हैं।

यदि कोई छोटा मन्त्र जपना चाहे तो नीचे लिखे मंत्र भी जपे जा सकते हैं।

१ अरहन्त सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योनमः (१६ अक्षर) २. अरहन्त सिद्ध (६ अक्षर। ३ असि आ उ सा =५ अक्षर ४. अरहन्त =४ अक्षर ५. सिद्ध=२ अक्षर ६. ॐ एक अक्षर।

ॐ पाँच परमेष्ठी का वाचक है, क्योंकि इनके प्रथम अक्षरो से बना है। अरहन्त का अ, सिद्ध को अशरीर कहते हैं उसका अ, आचार्य का आ उपाध्याय का उ, साधु को मुनि कहते हैं अतः इसका प्रथम अक्षर म् मिलकर ओम् ॐ बना है।

इस मन्त्र के प्रभाव से परिणाम निर्मल हो जाते हैं। बहुत से प्राणी मरते समय णमोकार मन्त्र सुनकर निर्मल भावों से शुभ गति में चले जाते हैं।

६८. मंत्र प्रभाव की कथा

श्रीरामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रव कथा कोश में इस महामन्त्र की अनेक कथाएं हैं उन में से एक कथा यहाँ दी जाती है--

बनारस के राजा अकम्पन की कन्या सुलोचना विंध्य- पुर के राजा विंध्यकीर्ति की कन्या विंध्यश्रीके साथ विद्याध्य- यन करती थी। एक दफ़े फूलों को चुनते हुए विंध्यश्री को एक नाग ने काटा. उसी समय सुलोचना ने णमोकार मन्त्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह मर कर गङ्गा देवी उत्पन्न हुई। इस मन्त्र के द्वारा भावों में शांति आने से शुभ गति में जीव चला जाता है।

६६. श्रावक का साधारण चारित्र

एक श्रद्धावान श्रावक गृहस्थ को साधारणपने आत्मा की उन्नति के हेतु से नित्य नीचे लिखे छः कर्मों का अभ्यास अपनी शक्तियों के अनुसार करना चाहिए :—

(१) देवपूजा–अरहन्त और सिद्ध भगवान का पूजन करना जिसका वर्णन नं० १८ में किया जा चुका है ।

(२) गुरु भक्ति–आचार्य, उपाध्याय या साधु की भक्ति और सेवा करना व उन से उपदेश लेना ।

(३) स्वाध्याय–प्रमाणीक जैनशास्त्रोंको रुचिसे पढना, सुनना, उनके भावों का मनन करना ।

(४) संयम–५ इन्द्रिय और मन पर क़ाबू रखने के लिए नित्य सवेरे २४ घण्टे के लिये भोग व उपभोग के पदार्थों का अपने काम के लायक़ रख के शेष का त्याग कर देना । जैसे आज मिष्ट पदार्थ न खायेंगे, सांसारिक गान न सुनेंगे, वस्त्र इतने काम में लेंगे आदि तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा का भाव रखना, व्यर्थ उनको कष्ट न देना ।

(५) तप—अनशन आदि १२ प्रकार तप का अभ्यास जिस का वर्णन नं० ५२ में किया जा चुका है । मुख्यता से ध्यान का प्रातः, मध्यान्ह, संध्या तीन दफ़े या दो दफ़े अभ्यास करना, जिसको सामायिक कहते हैं ।

सामायिक की रीति यह है कि एकान्त स्थानमें जाकर पवित्र मन, वचन, काय करके, एक आसन नियत करके और यह परिमाण करके कि जब तक सामायिक करता हूँ इस

स्थान व जो कुछ मेरे पास है इस के सिवाय अन्य पदार्थों का मुझे त्याग है, फिर पूर्व या उत्तर की तरफ़ मुख करके हाथ लटकाये सीधा खड़ा हो, नौ दफे णमोकार मंत्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे। फिर उसी तरह खड़ा होकर उसी तरह नौ या तीन दफ़े उसी मन्त्र को पढ़ कर, हाथ जोड़कर तीन दफ़े आवर्त और एक शिरोनति करे। जोड़े हुए हाथों को बायें से दाहिने ओर घुमाने को आवर्त और उन हाथों पर मस्तक झुकाकर नमने को शिरोनति कहते हैं। ऐसा करके फिर हाथ छोड़कर खड़े २ दाहिनी तरफ़ पलटे, फिर नौ या तीन दफ़े मन्त्र पढ़ तीन आवर्त एक शिरोनति करे। ऐसा ही शेष दो दिशाओं में पलटते हुए करके फिर पूर्व या उत्तर की तरफ़ मुख करके पद्मासन व अन्य आसन से बैठ कर शान्तभाव से सामायिक का पाठ संस्कृत या भाषा का पढ़े, फिर मन्त्रों की जाप देवे, धर्मध्यान का अभ्यास करे, जैसा नं० ५१ से ५८ तक में कहा गया है। अन्त में उसी दिशा में खड़े हो नौ दफ़े मन्त्र पढ़कर भूमि पर दण्डवत करे।

आवर्त शिरोनति का हेतु चारों दिशाओं में स्थित देव, गुरु आदि पूज्य पदार्थों की विनय है। ऐसी सामायिक हर दफ़े ४८ मिनट करे तो अच्छा है, इतना समय न दे सके तो जितनी देर अभ्यास कर सके करे।*

(६) दान—अपने और दूसरे के हित के लिये प्रेम भाव से देना सो दान है। इस के दो भेद हैं:—

---

* सामायिक पाठ अमितगतिकृत छन्द व भावार्थ सहित ~)॥ आने में दफ़्तर दिगम्बर जैन चन्दावाड़ी सूरत शहर से मिल सकता है।

(१) पात्र दान—जिसको भक्तिपूर्वक करना चाहिये। जिन में रत्नत्रय धर्म पाया जावे उनको पात्र कहते हैं। वे तीन प्रकार हैं :—

१ उत्तम—दिगम्बर जैन मुनि २. मध्यम—व्रती श्रावक ३. जघन्य—व्रत रहित श्रद्धावान गृहस्थ स्त्री पुरुष।

(२) करुणा दान—जो कोई मनुष्य, पशु या जन्तु दुःखी हो उस के क्लेश को मिटाना।

देने योग्य चार पदार्थ हैं-आहार, औषधि, विद्या या ज्ञान तथा अभयपना या प्राण रक्षा। गृहस्थ जब भोजन करे तो पहले आहार दान देले, कम से कम एक ग्रास ही दान के लिए निकाल देवे।

इन छः नित्य कर्मों को गृहस्थ इस तरह करे—सूर्योदय से पहले उठ कर साधारण जलसे शुद्ध हो प्रथम तप करे अर्थात् सामायिक करे, उसी समय संयम की प्रतिज्ञा कर के फिर नित्य की शरीर क्रिया करके देव पूजा करे, गुरु हो तो गुरु भक्ति करे, फिर शास्त्र पढ़े या सुने, फिर घर आकर दान दे भोजन करे। सन्ध्या को भी पहले सामायिक करे, फिर जिन मन्दिर में जा दर्शन करे, शास्त्र पढ़े या सुने। सोते वक़्त शांत चित्त हो कम से कम नौ वार मन्त्र पढ़ कर सोवे। उठते हुये भी पहिले नौ वार मन्त्र पढ़ले फिर शय्या छोड़े।

दानमें यह विचार रखे कि जितनी आमदनी हो उसके चार भाग करे। एक भाग नित्य ख़र्च में दे, एक भाग विवाहादि ख़र्च के लिये, एक भाग संचय के लिये व एक भाग दान के लिये अलग करे।

यदि दान में चौथाई न कर सके तो छठा करे या कम से कम दसवाँ भाग अलग करे व उसे आवश्यकतानुसार चार दानों में व अन्य धर्म कार्यों में ख़र्चे।*

साधारण गृहस्थों को इन आठ बातों का भी त्याग करना चाहिये। ये गृहस्थ के ८ मूलगुण हैं—

१ मद्य, २ मांस, ३ मधु, ४ स्थूल (संकल्पी) त्रसहिंसा, ५ स्थूल असत्य, ६ स्थूल चोरी, ७ स्थूल कुशील, ८ स्थूल परिग्रह।

स्थूल से प्रयोजन अन्याययुक्त का है। गृहस्थी मांसाहार व धर्म व शौक आदि से पशुओं को नहीं मारता है। असि (शस्त्र कर्म), मसि (लिखना), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या या पशुपालन, इन छः कारणों से पैसा कमाता है। इन में जो हिंसा होती है वह संकल्पी नहीं है-आरम्भी है, उसको गृहस्थी बचा नहीं सकता, तो भी यथाशक्ति बचाने का ध्यान रखता है।

गृहस्थी राज्य कर सकता है, दुष्टों व शत्रुओं को दण्ड दे सकता है व उन से युद्ध कर सकता है।

राजदण्ड व लोकदण्ड हो ऐसा झूठ बोलता नहीं व ऐसी चोरी करता नहीं, अपनी विवाहिता स्त्री में सन्तोष रखता है, अपनी ममता घटाने को सम्पत्ति का परिमाण कर लेता है कि इतना धन हो जाने पर मैं स्वयं सन्तोष करके धर्म व परोपकार में जीवन बिताऊँगा।

---

* देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय. संयमस्तप. ।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥ ७ ॥
[पद्मनंदि पच्चीशिका श्रावकाचार]

मांस से कभी शरीर पुष्ट नहीं होता है, यह हिंसाकारी अप्राकृतिक आहार है। मद्य नशा लाती है, ज्ञान को बिगाडती है।

मधु मक्खियों का उगाल है, इसमें करोड़ों कीड़े पैदा होते रहते हैं व मरते रहते हैं।

इन तीनों को औषधियों में भी न लेना चाहिए। *

७०. श्रावकों का विशेष धर्म
ग्यारह प्रतिमाएँ

श्रावकों के लिए अपने आचरण की उन्नति के लिये ग्यारह श्रेणियां हैं जिन में पहली पहली श्रेणी का आचरण पालते रह कर आगे का आचरण और बढा लिया जाता है। इन ही को प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा जैसे अपने आसन में दृढ़ रहती हैं वैसे ही स्वकर्तव्य में श्रावक को मज़बूत रहना चाहिये।

(१) दर्शन प्रतिमा—

सम्यग्दर्शन में २५ दोष न लगाना। सम्यग्दर्शन का धारी निम्न आठ अङ्ग पालता है :—

(१) निःशङ्कित—जैन के तत्वों में शङ्का न रखना तथा वीरता के साथ जीवन बिताते हुए इस लोक, परलोक, रोग, मरण, अरक्षा, अगुप्ति, अकस्मात्, इन सात तरह के भयों को चित्त में न रखना।

---

* मद्य मांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहु गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥
(रत्नकरण्ड)

(२) निःकांक्षित—भोगों को अतृप्तिकारी व क्षण-भङ्गुर व बन्ध का कारण जान कर उनकी अभिलाषा न करना।

(३) निर्विचिकित्सा—दुःखी व मलीन, चेतन व अचेतन वस्तु पर घृणा न करना।

(४) अमूढ़दृष्टि—मूर्खता से देखा देखी कोई अधर्म क्रिया धर्म जान कर न करना।

(५) उपगूहन—दूसरों के औगुण न प्रकट करना।

(६) स्थितिकरण—धर्म में आप को व दूसरों को दृढ़ करना।

(७) वात्सल्य—धर्म व धर्मात्मा में प्रेम रखना।

(८) प्रभावना—धर्म की उन्नति करना।

इन आठ का न पालना सो आठ दोष तथा जाति (माता का कुटुम्ब), कुल, धन, बल, रूप, विद्या, अधिकार तथा तप, इन का अभिमान करना, ऐसे आठ दोष—

देव. गुरु और लोक की मूढता, ऐसी तीन मूढ़ता अर्थात् लोगों की देखा देखी जो देव व गुरु नहीं हैं उनको मानना व जो क्रिया करने योग्य नहीं है, उन को करना। खड्ग, कलम दावात आदि पूजना।

कुदेव कुगुरु और कुशास्त्रों की तथा इन के सेवकों की सङ्गति रखना, यह छः अनायतन। ऐसे २५ दोष दूर रख कर निर्मल श्रद्धा रखनी चाहिये। नीचे लिखे सात व्यसन आदि अतीचार सहित दूर कर देना :—

१. जूआ न बदकर खेलना न भूठा ताश, चौपड़ आदि खेलना।

२. मांस न खाना और न उन पदार्थों को खाना जिन में मांस का संसर्ग हो। जैसे मर्यादा से बाहर का भोजन। भोजन की मर्यादा इस तरह है—

दाल, भात, कढ़ी आदि की छः घंटे की, रोटी पूरी आदि की दिन भर, पकवान सुहाल लाड्डू आदि की २४ घण्टे की, जल बिना अन्न व शक्कर से बनी हुई की पिसे आटे के समान अर्थात् (भारतवर्ष की अपेक्षा) वर्षा ऋतु में ३ दिन, उष्ण में ५ तथा शीत ऋतु में सात दिन। बिना अन्न व जल के बूरे आदि की वर्षा में ७, उष्ण में पन्द्रह दिन तथा शीत में एक मास।

दूध निकालने पर ४८ मिनट के भीतर औटे हुये की २४ घण्टे, दही की भी २४ घण्टे, आचार मुरब्बे की २४ घण्टे।

मक्खन को ४८ मिनट के अन्दर ता कर घी बना लेना चाहिये। उसका जहां तक स्वाद न बिगड़े, इत्यादि मर्यादा के भीतर भोजन करना।

३ मदिरा आदि सब तरह का मादक पदार्थ न लेना व जिस औषधि में शराब का मेल हो न पीना।

४. आखेट—शौक से पशुओं का शिकार न करना व उन के चित्राम, मूर्ति आदि को कषाय से ध्वंस न करना।

५. चोरी—पराया माल न चुराना न चोरीका माल लेना।

६. वेश्या—वेश्या सेवन न करना, न उनकी संगति करना, न उनका नाच देखना, न उनका गाना सुनना।

७. पर स्त्री—अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ कुशील व्यवहार न रखना।

८. मधु न खाना, न उन फूलों को खाना जिनसे मधु एकत्र

होता है। इसमें मक्खियों को कष्ट दिया जाता है, उनके प्राण लिये जाते व मधु में अनेक जन्तु पैदा होकर मरते हैं।

९. कृमि सहित फल न खाना—जैसे पीपल, बड, गूलर पाकर व अञ्जीर के फल। अन्य फलों को भी तोड़ कर देख, कर खाना।

१०. पानी कुएं, बावड़ी, नदी का जो स्वभाव से बहता हो उसको दोहरे गाढ़े वस्त्र से छान, उसके जन्तुओं को वहीं पहुंचा कर जहां से जल लिया है वर्तना।

११. रात्रि को भोजन पान न करना, यदि अशक्य हो तो यथाशक्ति त्याग का अभ्यास करना।

१२ देव पूजा आदि छः कर्मों में लीन रहना।

(२) व्रत प्रतिमा—

इस प्रतिमा का धारी बारह व्रतों का पालन करे। पांच अणुव्रतों को अतीचार (दोष) रहित नियम से पालना। उनके सहायक सात शीलों को पालना व उनके अतीचारों के टालने का अभ्यास करना। पांच अणुव्रत ये हैं :—

१. अहिंसा अणुव्रत-सकल्प करके त्रस जन्तुओं को न मारना। इसके पांच अतिचार है-कषाय से प्राणीको बन्धन में डालना, लाठी चाबुकसे मारना, अङ्ग उपाङ्ग छेदना, किसी पर अधिक बोझा लादना, अपने आधीन मनुष्य या पशुओं को भोजन पान समय पर न देना व कम देना, ये दोष न लगाने चाहियें। न्याय व शुभ भावना से यह कार्य किये जायें तो दोष नहीं है।

२ सत्य अणुव्रत-स्थूल झूठ न बोलना। इसके भी ५ अतीचार है-दूसरों को झूठा व मिथ्या मार्ग का उपदेश

देना। पति पत्नी की गुप्त वार्तों को कहना, झूठा लेख लिखना, अधिक परिमाणमें रक्खी हुई वस्तुको अल्प परिमाण में मांगने पर दे देना, शेष अन्श को जान बूझकर अपना लेना, दो चार की गुप्त सम्मति कषाय से प्रगट कर देना।

३. अचौर्य अणुव्रत–स्थूल चोरी न करना। इसके ५ अतीचार हैं–दूसरे को चोरी का उपाय बताना, चोरी का माल लेना, राज्य में गड़बड़ होने पर अन्याय से लेन देन करना, मर्यादा को उलंघना, कमती बढती तोलना नापना, सच्ची में झूठी वस्तु मिला सच्ची कह कर बेचना या झूठा रुपया चलाना।

४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत–अपनी स्त्री में संतोष रखना। इसके पांच अतीचार बचाना–अपने पुत्र पुत्री सिवाय दूसरों की सगाई विवाह करना, वेश्याओं से सङ्गति रखना, व्यभि-चारिणी पर-स्त्रियों में संगति रखना, काम के नियत अङ्ग छोडकर और अङ्गों में चेष्टा करना, स्वस्त्री से भी अतिशय काम चेष्टा करनी।

५. परिग्रह परिमाण अणुव्रत–अपनी इच्छा तथा आवश्य-कता के अनुसार निम्न १० प्रकार की परिग्रह का जीवन पर्यन्त परिमाण कर लेना :—

१ क्षेत्र—ख़ाली ज़मीन खेतादि, २ वस्तु—मकानादि, ३. धन—गाय भैंस घोड़ा आदि, ४. धान्य अन्नादि, ५. हिरण्य, चाँदी आदि, ६. सुवर्ण—सोना जवाहिरात आदि, ७. दासी, ८. दास, ९. कुप्य कपड़े १०. भांड—बर्तन।

एक समय में इतने से अधिक न रक्खूंगा ऐसा परिमाण

कर ले। इनके पाँच अतीचार ये है कि इन दश वस्तुओं के पांच जोड़े हुए, इन मे से एक जोड़े में एक की मर्यादा बढ़ा कर दूसरे की घटा लेना, जैसे क्षेत्र रक्खे थे ५० बीघे, मकान थे दश, तब क्षेत्र ५५ बीघे करके मकान एक घटा देना। सात शील ये हैं —

(१) दिग्व्रत—जन्म पर्यन्त सांसारिक कार्यों के लिए दश दिशाओं में जाने आने, माल भेजने मंगाने का प्रमाण बाँध लेना, जैसे पूर्व में २००० कोश तक। इसके निम्न पांच अतीचार हैं :—

ऊपर को लोभ या भूल से अधिक चले जाना, नीचे को अधिक जाना, आठ दिशाओं में किसी में अधिक चले जाना, किसी तरफ मर्यादा बढ़ा लेना किसी तरफ़ घटादेना, मर्यादा को याद न रखना।

(२) देशव्रत—प्रति दिन व नियमित काल तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को घटाकर रख लेना। इसके निम्न पांच अतीचार है :—

मर्यादा के बाहर से मंगाना या भेजना, बाहर वाले से बात करना, उसे रूप दिखाना या कोई पुद्गल फेंककर काम बता देना।

(३) अनर्थदण्ड विरति—अनर्थ पापसे बचना, जैसे दूसरों को पाप करने का उपदेश देना, उनका बुरा विचारना, हिंसाकारी वस्तु खड्ग व बरछी आदि मांगे देना, खोटी कथाएँ पढना, सुनना, आलस्य से वर्तना, जैसे पानी व्यर्थ फेंकना आदि। इसके निम्न पाँच अतीचार हैं :—

असभ्य भंड वचन कहना, काय की कुचेष्टा सहित भंड

वचन कहना, बहुत बकवाद करना, बिना विचारे काम करना, व्यर्थ भोग उपभोग को एकत्र करना।

इन तीन को गुणव्रत कहते हैं।

(४) सामायिक—नित्य तीन, दो व एक संध्या को धर्मध्यान करना-जैसा पहले तप आवश्यक में कहा जा चुका है। इसके निम्न पाँच अतीचार हैं उनको बचाना :—

मनमें अशुभ विचार, अशुभ वचन कहना, अशुभ काय को वर्ताना, अनादर रखना, पाठ आदि भूल जाना।

(५) प्रोषधोपवास—मास में २ अष्टमी, २ चौदस, इन चार दिन उपवास करना अथवा एक भुक्त करना व धर्मध्यान में समय बिताना। इसके पाँच अतीचार ये हैं—

बिना देखे व बिना झाड़े कोई वस्तु रखना, कोई वस्तु उठाना, चटाई आदि बिछाना, अनादर से करना, धर्म साधन की क्रियाओं को भुला देना।

(६) भोगोपभोगपरिमाण—पाँचों इन्द्रियों के योग्य पदार्थों का नित्य परिमाण करना। गृहस्थों के लिये निम्न १७ तरह के नियम प्रसिद्ध हैं :—

१. भोजन कै दफ़े २ पानी भोजन सिवाय कै दफ़े ३. दूध दही घी शक्कर निमक तेल इन छः रसों में किस का त्याग ४ तेल उबटन कै दफ़े ५. फूल सूंघना कै दफ़े ६. ताम्बूल खाना कै दफ़े ७ सांसारिक गाना बजाना कै दफ़े ८ सांसारिक नृत्य देखना कै दफ़े ९. काम सेवन कै दफ़े १०. स्नान कै दफ़े ११. वस्त्र कितने जोड़े १२. आभूषण कितने १३. बैठने के आसन कितने १४. सोने की शय्या कितनी १५. सवारी

कितनी व कै दफ़े १६. हरी तरकारी व सचित्त वस्तु कितनी १७. सर्व भोजन पान वस्तुओं की संख्या। इनमें से जिस किसी को न भोगना हो, बिल्कुल त्याग देवे। इसके पाँच अतीचार हैं--

भूलसे छोड़ी हुई सचित्त वस्तु खालेना, छोड़ी हुई सचित्त पर रक्खी हुई या उससे ढकी हुई वस्तु खाना, छोड़ी हुई सचित्त से मिली वस्तु खालेना, कामोद्दीपक रस खाना, अपक्क व दुष्पक्व पदार्थ खाना।

(७) अतिथिसंविभाग—*अतिथि या साधु को दान* देकर भोजन करना। अपने कुटम्ब के लिये बनाये भोजन में से पहले कहे तीन प्रकार के पात्रों को दान देना। नौ प्रकार भक्ति यथासंभव पालना—भक्ति से पड़गाहना (घर में ले जाना), उच्च आसन देना, पग धोना, नमस्कार करना, पूजना, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, भोजन शुद्धि रखना। साधु के लिये नौ भक्ति पूर्ण करना योग्य है। इसके निम्न पाँच दोष बचाना चाहियें, जो साधु को व सचित्त त्यागी को दान की अपेक्षा से हैं :--

सचित्त (हरेपत्ते) पर रखी वस्तु देना, सचित्त से ढकी वस्तु देना, आप बुलाकर स्वयं न दान दे दूसरे को दान करने को कह कर चले जाना, ईर्षा से देना, समय उल्लंघन कर देना।

इन अन्त के चार को शिक्षाव्रत कहते है।

(३) सामायिक प्रतिमा—

इसमें इतनी बात बढ़ जाती है कि श्रावक को नियम

पूर्वक तीन दफ़े सामायिक करनी होती है । सवेरे, दोपहर और साँझ। कम से कम समय ४८ मिनट का लगाना चाहिये। किसी विशेष अवसर पर कुछ कम भी लग सकता है। सामायिक ५ दोष रहित करना चाहिये ।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा—

इसमें एक मासमें दो अष्टमी दो चौदस चार दफ़े उपवास करना और उसके पांच दोष टालना। इसके दो तरह के भेद हैं :—

प्रथम यह है कि पहले व तीसरे दिन एक दफ़े भोजन, बीच में १६ पहर का उपवास, मध्यम पहले दिन की संध्या से तीसरे दिन प्रातःकाल तक १२ पहर, जघन्य भोजन पान इतने काल छोड़ते हुए व्यापार व आरम्भ का त्याग केवल अष्टमी तथा चौदस को आठ पहर ही करना।

दूसरा भेद यह है कि पहले और तीसरे दिन एक भुक्त करना तथा १६ पहर धर्म ध्यान करना। मध्यम यह है कि इस मध्य में केवल जल लेना। जघन्य यह है कि जल के सिवाय अष्टमी या चौदस को एक भुक्त भी करना। जैसी शक्ति हो उसके अनुसार उपवास करना चाहिये। उपवास का दिन सामायिक, स्वाध्याय, पूजा आदि में बिताना चाहिये।

(५) सचित्तत्याग प्रतिमा—

यानी बनस्पति आदि कच्ची अर्थात् एकेन्द्रिय जीव सहित दशामें न लेना। जिह्वा का स्वाद जीतने को गर्म या प्राशुक पानी पीना व रँधी हुई या छिन्न भिन्न की हुई या लोण आदि से मिली हुई तरकारी खाना। सचित्त के खाने मात्रका

यहाँ त्याग है। सचित्त के व्यवहार का व सचित्त को अचित्त करने का त्याग नहीं है। सचित्त को अचित्त बनाने की रीति यह है—

सुक्कं पक्कंतत्त अंवललवरोहिं मिस्सियदव्वं।

जं जं तेणय छरणं तं सव्वं पासुयं भणियं॥

अर्थात्—सूखी, पकी, गर्म, खटाई या नमक से मिली हुई तथा यन्त्र से छिन्न भिन्न की हुई वस्तु प्राशुक है। पानी में लवङ्ग आदि का चूरा डालने से यदि उसका वर्ण, रस बदल जावे तो वह अचित्त होता है। पके फल का गूदा प्राशुक है। बीज सचित्त है। इस में भोगोपभोग के ५ दोष बचाना चाहियें।

(६) रात्रि भुक्तित्याग प्रतिमा—

रात्रिको जलपान व भोजन न आप करना, न दूसरों को कराना। दो घडी अर्थात् ४८ मिनट सूर्यास्त से पहले तक व ४८ मिनट सूर्योदय होने पर भोजन पान करना, रात्रि को भोजन सम्बन्धी आरम्भ भी नहीं करना, पूर्ण सन्तोष रखना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—

अपनी स्त्री भोग का भी त्याग कर देना। उदासीन वस्त्र पहनना, वैराग्य भावना में लीन रहना।

(८) आरम्भत्याग प्रतिमा—

कृषि वाणिज्य आदि व रोटी बनाना आदि आरम्भ बिल्कुल छोड़ देना, अपने पुत्र व अन्य कोई भोजन के लिये

बुलावे तो जीम आना, अपने हाथ से पानी स्वयं न लेना। जो कोई दे उससे अपना व्यवहार बड़े सन्तोष से करना।

(९) परिग्रहत्याग प्रतिमा—

धनधान्यादि परिग्रहदान के लिये देकर शेष पुत्र पौत्रों को दे देना, अपने लिये कुछ आवश्यक वस्त्र व भोजन रख लेना और धर्मशाला आदि में ठहरना, भक्ति से बुलाये जाने पर जो मिले सन्तोष से जीम लेना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—

सांसारिक कार्यों में सम्मति देने का त्याग न था सो इस दर्जेमें बिलकुल त्याग देना। भोजन के समय बुलाये जाने पर जीम लेना।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—

अपने निमित्त किये हुए भोजन का त्याग यहां होता है। जो भोजन गृहस्थ ने अपने कुटुम्ब के लिए किया हो उसी में से भिक्षा द्वारा भक्ति से दिये जाने पर लेना उचित है। इसके निम्न दो भेद हैं:—

१ क्षुल्लक—एक खण्ड चादर व एक कोपीन या लंगोट रखते हैं व मोर पंख की पीछी व कमण्डल रखते हैं। बालों को कतराते हैं। गृहस्थी के यहां एक दिन में एक दफ़े से अधिक नहीं जीमते। भोजन थाली में रख कर बैठे हुए करते हैं।

२. ऐलक—जो केवल एक लंगोटी ही रखते हैं। मुनि की क्रियाओं का अभ्यास करते हैं। गृहस्थी के यहां बैठकर

हाथ में जो रखा जावे उसे ही जीमते हैं। स्वयं मस्तक, डाढी मूंछ के केशों को उखाड डालते हैं।

जब लंगोटी भी छोड़ दी जाती है तब साधुके २८ मूल गुण धारण किये जाते हैं जिन का वर्णन नं० ६५ में किया जा चुका है।

इन ग्यारह प्रतिमाओंमें आत्मध्यान का अभ्यास बढ़ाया जाता है तथा इससे धीरे २ उन्नति होती जाती है। +

७१. जैनियों के संस्कार

जिन क्रियाओं से धर्म का संस्कार मानव की बुद्धि पर पड़े ऐसे संस्कार श्री महापुराण [जिनसेनाचार्य कृत] अ० ३८, ३६, ४० में है।

सन्तान को योग्य बनाने के लिये इनका किया जाना अति आवश्यक है। जो जन्म के जैनी हैं, उनके लिये कर्त्रन्वय क्रियाएं ५३ बताई गई हैं तथा जो मिथ्यात्व छोड़ कर जैनी बनते हैं, उनके लिये दीक्षान्वय नाम की ४८ क्रियाएं हैं।

इन क्रियाओं में प्रायः पंच परमेष्ठी का पूजन, होम, विधानादि होता है, हम उनका यहाँ नीचे बहुत संक्षेप में भाव दिखलाते हैं।

+ दसणवय सामायिय पोसह सच्चित्तराय भत्तेय। बह्मारभपरिग्गह अणुमण मुद्दिठ्ठ देस विरदेदे ॥२॥ (कुन्दकुन्दे- कृतद्वादशानुप्रेक्षा) श्रावक पदानि देवैरेकादशदेशितानियेषु- खलु। स्व गुणाः पूर्व गुणैः सह संतिष्ठंते क्रम विवृद्धाः ॥१३६॥ [विशेष देखो रत्नकरण्ड श्लोक १३७ से १४७]

[१] गर्भाधान क्रिया—पत्नी रजस्वला हो कर पांचवें या छट्टे दिन पति सहित देव पूजादि करे, फिर रात्रि को सहवास करे।

[२] प्रीति क्रिया—गर्भ से तीसरे महीने पूजा व उत्सव करना।

[३] सुप्रीति क्रिया—गर्भ से पांचवे मासमें पूजा व उत्सव करना।

[४] धृति क्रिया—गर्भ वृद्धि के लिये ७ वें मास में पूजा व उत्सव करना।

[५] मोद क्रिया—नौवें मासमें पूजा व उत्सव करके गर्भिणी के शिर पर मंत्र पूर्वक बीजाक्षर लिखना व रक्षासूत्र बांधना।

[६] प्रियोद्भव क्रिया—जन्म होने पर पूजा व उत्सव करना।

[७] नाम कर्म क्रिया—जन्म से १२ वें दिन पूजा कराके गृहस्थाचार्य द्वारा नाम रखवाना व उत्सव करना।

[८] बहिर्यान क्रिया—दूसरे, तीसरे या चौथे मास पूजा कराके प्रसूतिगृह से बालक सहित मा का बाहर आना।

[९] निषद्या क्रिया— बालक को बिठाने की क्रिया पूजा सहित करना।

[१०] अन्न प्राशन क्रिया—७ या ८ या ९ मास का बालक हो तब उसे पूजा व उत्सव पूर्वक अन्न खिलाना शुरू करना।

[११] व्युष्टि क्रिया—एक वर्ष होने पर पूजा सहित वर्ष गांठ करनी ।

[१२] केशवाय क्रिया—जब बालक २, ३ या ४ वर्ष का हो जावे तब पूजा करके सर्व केशो का मुन्डन कराके चोटी रखना ।

[१३] लिपि संख्यान क्रिया—जब पाँच वर्ष का बालक होजावे तो पूजा के साथ उपाध्याय के पास अक्षरारंभ कराना ।

[१४] उपनीति क्रिया—आठवे वर्ष में बालक को पूजा व होम सहित तथा योग्य नियम कराकर रत्नत्रयसूचक जनेऊ देना ।

[१५] व्रतचर्या क्रिया—ब्रह्मचर्य पालते हुए गुरु के पास विद्या का अभ्यास करना । श्रावक के पांच व्रतों का अभ्यास करना ।

[१६] व्रतावरण क्रिया—विद्या पढ के यदि वैराग्य हो गया हो तो मुनि दीक्षा ले, नही तो ब्रह्मचर्य छात्र का भेष छोड अब घर में रहकर योग्य आजीविकादि करे व धर्म पाले ।

[१७] विवाह क्रिया—योग्य कुल व वय की कन्या के साथ पूजा उत्सव सहित लग्न करना । सात दिन तक पति पत्नी ब्रह्मचर्य से रहें, फिर मंदिरों के दर्शन कर कंकण डोरा खोलें और संतान के लिये सहवास करें ।

इन १७ संस्कारो में जो पूजा की जाती है, उसकी विधि मन्त्र सहित संक्षेप में गृहस्थ धर्म पुस्तक में दी हुई है ।

[१८] वर्णलाभक्रिया—माता पिता से द्रव्य ले स्त्री सहित जुदा रहना।

[१६] कुलचर्या क्रिया—कुल के योग्य आजीविका करके देव पूजादि गृहस्थ के छः कर्मों में लीन रहना

[२०] गृहीशिता क्रिया—ज्ञान व सदाचारादि में प्रवीण होकर गृहस्थाचार्य का पद पाना, परोपकार करने में लीन रहना, विद्या पढ़ाना, औषधि देना, भय दूर करना।

[२१] प्रशांति क्रिया—पुत्र को घर का भार सौंप आप विरक्त भाव से रहना।

[२२] गृहत्याग क्रिया—घर छोड़ कर त्यागी हो जाना।

[२३] दीक्षाद्य क्रिया—श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओ को पूर्ण करना।

[२४] जिनरूपिता क्रिया—नग्न हो वस्त्रादि परिग्रह त्याग मुनिपद धारण करना।

[२५] मौनाध्ययन व्रत्ति क्रिया—मौन सहित शास्त्र पढ़ना।

[२६] तीर्थङ्कर पदोत्पादक भावना—सोलह कारण भावना विचारनी।

[२७] गुरुस्थापनाभ्युपगम—आचार्य पद के काम का अभ्यास करना।

[२८] गणोपग्रहण—उपदेश करना,प्रायश्चित देना।

[२६] स्वगुरुस्थानसंक्रांति—आचार्य पदवी स्वीकार करना।

[३०] निःसंगत्वात्म भावना—आचार्य पदवी शिष्य को देकर आप अकेले विहार करना।

[३१] योग निर्वाण संप्राप्ति—मनकी एकाग्रता का उद्यम करना।

[३२] योग निर्वाण साधन—आहारादि त्याग समाधिमरण करना।

[३३] इन्द्रोपपाद—मरण करके इन्द्र पद पाना।

[३४] इन्द्राभिषेक—इन्द्रासन का न्हवन होना।

[३५] विधि दान—दूसरों को विमान ऋद्धि आदि देना।

[३६] सुखोदय—इन्द्रपद का सुख भोगना।

[३७] इन्द्र पद त्याग—इन्द्र पद त्यागना।

[३८] गर्भावतार—तीर्थङ्कर होने के लिये माँ के गर्भ में आना।

[३६] हिरण्यगर्भ—गर्भ मे आने के कारण छः मास पहले से रत्नवृष्टि होना।

[४०] मन्दरेन्द्राभिषेक—तीर्थङ्कर का जन्म हो कर सुमेरु पर अभिषेक।

[४१] गुरु पूजन—तीर्थङ्कर को गुरु मान इन्द्रादि देव पूजते है।

[४२] यौवराज्य—तीर्थङ्कर का युवराज होना।

[४३] स्वराज्य—तीर्थङ्कर का स्वतन्त्र राज्य करना।

[४४] चक्रलाभ—चक्रवर्ती पद के लिए नौ निधि व १४ रत्नों का पाना।

[४५] दिशांजय—छः खण्ड पृथ्वी जीतने को निकलना।

[४६] चक्राभिषेक—लौटनेपर चक्रवर्तीका अभिषेक

[४७] साम्राज्य—अपनी आज्ञानुसार राजाओं को चलाना।

[४८] निष्क्रान्ति—पुत्रों को राज्य दे दीक्षा लेना।

[४९] योग संग्रह—केवलज्ञान प्राप्त करना।

[५०] आर्हन्त्य—समवशरण की रचना होनी।

[५१] विहार—धर्मोपदेश देनेके लिये विहार करना।

[५२] योग त्याग—योग को रोककर अयोगी होना।

[५३] अग्र निर्वृत्तिः—मोक्षपद पाना।

इन क्रियाओं में संस्कार प्राप्त बालक तीर्थंकर हो कर मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है।

जो जन्म से जैन नहीं है और जैनधर्म स्वीकार करे उस की दीक्षान्वय क्रियायें निम्न ४८ हैं।

१. अवतार क्रिया—कोई अजैन किसी जैन आचार्य या गृहस्थाचार्य के पास जाकर प्रार्थना करे कि मुझे जैनधर्म का स्वरूप कहिए, तब गुरु उसे समझावें।

२. व्रत लाभ क्रिया—शिष्य धर्म को सुनकर उस पर श्रद्धा करता हुआ स्थूल रूपसे पाँच अणुव्रत ग्रहण करता और मदिरा मधु, मांस, तीन मकार का त्याग करता है।

३. स्थानलाभ—शिष्य को एक उपवास व पूजा करा कर उसको पवित्र करे व णमोकार मन्त्र का उपदेश देवे।

४. गण गृह—शिष्यके घरमें जो अन्य देवों की स्थापना हो तो उनका विसर्जन करे।

५. पूजाराध्य—भगवान की पूजा करे, द्वादशांग जिन-वाणी सुने व धारे।

६. पुण्य यज्ञ क्रिया—१४ पूर्व शिष्य सुने।

७. दृढ़ चर्या—जैन शास्त्रों को जान कर अन्य शास्त्रों को जाने।

८. उपयोगिता—हर अष्टमी चौदस को उपवास करे, ध्यान करे।

९. उपनीति—इस को यज्ञोपवीत ग्रहण करावे।

१०. व्रतचर्या—जनेऊ लेकर कुछ काल ब्रह्मचर्य पाल गुरु से उपासकाध्ययन या श्रावकाचार पढ़े।

११. व्रतावरण—गृहस्थाचार्य के निकट ब्रह्मचारी का भेष उतारे।

१२. विवाह—जो पहिली विवाहिता स्त्री हो तो श्राविका बनावे। यदि न हो तो वर्णलाभक्रिया करके विवाह करे।

१३. वर्णलाभ—गृहस्थाचार्य इसकी योग्यता देखकर

उस का वर्ण स्थापित करे और फिर सर्व श्रावकों से जो उस वर्ण के हों उस के साथ विवाहादि सम्बन्ध करने को कहे।

जो शूद्र की आजीविका न करते हों, किन्तु क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्यवत् आचरण करते हों उनकी अपेक्षा ये क्रियायें कही हैं।

इस के आगे की क्रिया कर्त्रन्वय के समान नं० १६ से ५३ तक जाननी। पहिले १८ क्रियायें कही थी, यहाँ १३ कहीं, ये ही ५ क्रियायें कम हो गई।

७२. जैनियों में वर्णव्यवस्था

जैनियों में भी इस भरतक्षेत्र के इस कल्प में प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव ने उस समय जब कि समाज में कोई वर्ण व्यवस्था प्रकटरूप से न थी, जिन लोगों के आचार व्यवहार को क्षत्रियों के योग्य समझा उनको क्षत्रिय, जिनके आचार को वैश्य के योग्य समझा उन को वैश्य तथा जिनके आचरण को शूद्र के योग्य समझा उनको शूद्र वर्ण में प्रसिद्ध किया।

क्षत्रियों को आजीविका के लिये असि कर्म या शस्त्र विद्या, वैश्यों को मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य तथा शूद्रों को शिल्प विद्या (कला आदि) कर्म नियत किया तथा प्रत्येक को अपने २ वर्ण में विवाह करना ठहराया।

इसके पीछे जो श्रावक धर्म अच्छी तरह पालते थे, दयावान थे, उनको ब्राह्मण वर्ण में ठहराया गया। महापुराण के पर्व ३८ में कहा है कि—

मनुष्य जातिरेकैव जाति नामोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदा हिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणाव्रत संस्कारात् क्षत्रिया शस्त्र धारणात् ।
वाणिज्योऽर्थार्जनान्नयाय्यात् शूद्रान्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥४६॥

भावार्थ–जाति नाम कर्म के उदय से मनुष्य जाति एक ही है तथापि जीविका के भेद से वह भिन्न २ चार प्रकार की हो गई है। व्रतों के संस्कारों से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्याय से द्रव्य कमाने से वैश्य, नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहलाते हैं।

यह भी व्यवस्था हुई कि आवश्यकता हुई तो ब्राह्मण क्षत्रियादि अन्य तीनों वर्ण की, क्षत्रिय वैश्यादि दो वर्ण की व वैश्य शूद्र की कन्या भी ले सकता है।

शूद्र सिवाय तीन वर्ण उच्च समझे गये हैं जो प्रतिष्ठा अभिषेक, मुनिदान कर सकते व परस्पर एक पंक्ति में भोजन पान कर सकते हैं।

जैन पुराणों में तीनो वर्णों में परस्पर विवाह होने के भी अनेक उदाहरण है-जैसे क्षत्रिय की कन्या का वैश्य पुत्र को विवाहाजाना और इसकी कोई निंदा नहीं की गई है। *

---

* शूद्राशूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तांच नैगमः।
वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः॥ २४७॥
[आदिपुराण पर्व १६]

भावार्थ—शूद्र शूद्र की कन्या से विवाह करे—अन्य से नहीं, वैश्य वैश्यकी कन्यासे तथा शूद्रकी कन्यासे भी, क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या से व वैश्य व शूद्र की कन्या से भी, ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से व कभी क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र की कन्या से भी। (अर्थ पं० लालाराम कृत)

७३. जैनियों में स्त्रियों का धर्म और उनकी प्रतिष्ठा

जैनियों में स्त्रियोंके लिये वे ही धर्म क्रियाएँ हैं जो पुरुषों के लिये हैं। श्रावक धर्म की ग्यारह प्रतिमाएँ वे पाल सकती हैं। वे नग्न नही हो सकतीं। इसीलिये साधु पद नहीं धारण कर सकतीं और न उसी जन्म सें निर्वाण लाभ कर सकती हैं। उनका उत्कृष्ट आचरण आर्यिका का होता है जो एक सफ़ेद सारी (धोती) रख सकती हैं।

ऐलकके समान मोर पिच्छिका व कमण्डल रखती व भिक्षावृत्तिसे श्रावकके यहाँ बैठकर हाथ में भोजन करती, व केशोंको लोंच करती है। उनको श्रीजिनेन्द्र की पूजा अभिषेक* व मुनिदान का निषेध नहीं है।

रजोधर्म में चार दिन तक, प्रसूतिमें ४० दिन तक व पांच मास की गर्भावस्था में पूजा, अभिषेक व मुनिदान स्वयं नही कर सकती हैं।

स्त्रियों की प्रतिष्ठा यहां तक है कि राजा लोग उन को अपने सिंहासन का आधा आसन देते थे। वे पति के न होने पर कुल सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकतीं व पुत्र गोद ले सकती हैं।

७४. भरतक्षेत्र में प्रसिद्ध चौबीस जैन तीर्थंकर

भरतक्षेत्र जिसके भीतर हम लोग रहते हैं छः खण्डों

---

*—पं० माणिकचन्द्रजी की सम्मतिमें स्त्रियों को अभिषेक करने का अधिकार नहीं, क्योंकि उनके मलस्राव विशेष है।

में बटा हुआ है। पांच म्लेच्छ खण्ड एक आर्यखण्ड। आर्य-खण्ड में अवस्थाओं का विशेष परिवर्तन हुआ करता है।

एक कल्पकाल बीस कोड़ाकोड़ी सागर का होता है। १ सागर में अनगिनती वर्ष होते हैं। इस कल्पके दो भेद हैं—१ अवसर्पिणी २. उत्सर्पिणी।

जिसमें आयुकाय घटती जाय वह अवसर्पिणी और जिसमें बढ़ती जाय वह उत्सर्पिणी है।

इन दोनोंके ६-६ भाग हैं। अवसर्पिणी के ६ भाग ये हैं-

१. सुखमा सुखमा—चारकोड़ाकोड़ी सागरका २. सुखमा तीन कोड़ाकोड़ी सागर का ३. सुखमा दुखमा—दो कोड़ा कोड़ी सागर का ४. दुखमा सुखमा-४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर का ५. दुखमा—२१००० वर्ष का ६. दुखमा दुखमा २१००० वर्ष का।

उत्सर्पिणी में इस का उल्टा क्रम है। जो छठा है वह यहां (उत्सर्पिणी में) पहिला है।

दोनों कालों का समय मिलकर ही बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। सुखमा सुखमा, सुखमा व सुखमा दुखमा कालों में भोगभूमि की अवस्था अवनति रूप रहती है और शेष तीन में कर्मभूमि रहती है।

जहां कल्पवृक्षों से आवश्यक वस्तु लेकर स्त्री पुरुष संतोषसे जीवन बिताते हैं उसे भोगभूमि व जहां असि (शस्त्र कर्म), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या से परिश्रम करके धन कमाते, उससे अन्नादि ले भोजनादि बनाते, संतान उत्पन्न करते हैं उसे कर्मभूमि कहते हैं।

हरएक अवसर्पिणी के चौथे काल में चौबीस महापुण्य-

वान पुरुष समय समय पर जन्मते हैं। वे धर्मतीर्थ का प्रकाश करते है इसलिये उनको तीर्थंकर कहते हैं। वे उसी जन्म से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही उत्सर्पिणी के तीसरे काल में उन जीवों से भिन्न जीव* २४ तीर्थङ्कर होते हैं। इस तरह इस भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में सदा ही २४ तीर्थंकर भिन्न २ जीव होते रहते हैं।

वर्तमान में यहाँ अवसर्पिणी का पाँचवाँ काल चल रहा है। जब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष थे तब श्री महावीर भगवान, जो बौद्धगुरु गौतमबुद्ध के समकालीन व उन से पूर्व जन्मे थे, मोक्ष पधारे थे। अब सन् १९२९ में वीर निर्वाण संवत् २४५५ चलता है।

गत चौथे काल में जो २४ महापुरुष जन्मे थे, वे सब क्षत्रिय वंश के राज्य कुलों में हुए थे।

इन में से पहिले १५ व १९ वे २१ वें २३ वें व २४ वें इक्ष्वाकुवंश में व २२वें यदुवंश में जन्मे थे। श्रीपार्श्वनाथ का उग्रवंश व श्रीमहावीर का नाथवंश भी कहलाता था।

२४ में से १९ राज्य करके गृहस्थी होकर फिर साधु हुए। केवल पांच–अर्थात् १२,१९,२२,२३, व २४ ने कुमारवय से ही मुनिपद ले लिया, विवाह नही किया।

---

* चउवीसवार तिघणं तित्थयरा छत्ति खंड भरहवई।
तुरिये काले होंतिहु तेवट्ठी सलाग पुरिसाते ॥ ८०३ ॥
(त्रिलोकसार)

भावार्थ—भरत क्षेत्र के चौथे काल में त्रेसठ शलाका पुरुष होते रहते है। २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र, ९ प्रतिनारायण।

भरतक्षेत्र में जो तीर्थंकर पदके धारी होते हैं वे जगत में भ्रमण करने वाले जीवों में से ही होते हैं। जिसने तीर्थंकर होने से पहिले तीसरे भव में तपस्या करके व आत्मज्ञान प्राप्त करके, आत्मीक आनन्द की रुचि पाकर संसार के इन्द्रिय सुख को आकुलतामय जाना हो तथा सर्व जीवों का अज्ञान मिटे व उनको सच्चा मार्ग मिले, ऐसी दृढ़ भावना की हो वही विशेष पुरुष विशेष पुण्य बांधकर तीर्थंकर जन्मता है। कोई ईश्वर या शुद्ध या मुक्त आत्मा शरीर धारण नहीं करता है।

हर एक तीर्थङ्कर इतने पुण्यात्मा होते हैं कि इन्द्रादि देव उनके जीवन के पांच विशेष अवसरों पर परम उत्सव करते हैं। इन उत्सवों को पंच कल्याणक कहते हैं।

१. गर्भ कल्याणक—जब माता के गर्भ में तिष्ठते हैं, तब सीपी में मोती के समान माता को बिना कष्ट दिये रहते हैं। गर्भ समय माता निम्न सोलह स्वप्ने देखती है—

(१) हाथी (२) बैल (३) सिंह (४) लक्ष्मीदेवी का अभिषेक (५) दो मालाएँ (६) सूर्य (७) चन्द्र (८) मछली दो (६) कनकघट (१०) कमल सहित सरोवर (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) देव विमान (१४) धरणेन्द्रभवन (१५) रत्नराशि (१६) अग्नि। जिन का फल महापुरुष का जन्म सूचक है।

इन्द्रकी आज्ञा से गर्भ से छ मास पूर्व से १५ मास तक माता पिता के आंगन में रत्नों की वर्षा होती है। राजा रानी खूब दान देते हैं।

गर्भ समय से अनेक देवियाँ माता की सेवा करती रहती हैं।

२. जन्म कल्याणक—जन्म होते ही इन्द्र व देव आते हैं और बड़े उत्सव से सुमेरु पर्वत पर ले जाकर पांडुक वनमें पांडुक शिला पर विराजमान करके क्षीर समुद्र के पवित्र जल से स्नान कराते हैं।

उसी समय इन्द्र नाम रखता है व पग में चिन्ह देखकर चिन्ह स्थिर करता है।

तीर्थंकर महाराज अब से गृहस्थावस्था में रहने तक इन्द्र द्वारा भेजे वस्त्र व भोजन ही काम में लेते हैं। इनको जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान होते हैं। इससे तीर्थंकर को बिना किसी गुरुके पास विद्याध्ययन किये सर्व विद्याओं का परोक्षज्ञान होता है। आठ वर्ष की आयु में ही गृहस्थ धर्ममयी श्रावक के व्रतों को आचरने लगते हैं। यदि कुमारवय में वैराग्य न हुआ हो तो विवाह करके सन्तान का लाभ करते व नीतिपूर्ण राज्य प्रबन्ध चलाते हैं।

३. तप कल्याणक—जब वैराग्य होता है, तब भी इन्द्र आदि देव आते हैं और अभिषेक कर नये वस्त्राभूषण पहरा, पालकी पर चढा अपने कंधों पर वनमें ले जाते हैं। वहां एक शिलापर वृक्ष के नीचे बैठकर, प्रभु वस्त्राभरण उतार कर अपने ही हाथों से अपने केशों को उपाड़ (लोंच) डालते हैं। फिर सिद्ध परमात्मा को नमस्कार कर स्वयं मुनि की क्रियाओं को पालने लगते हैं। आत्मज्ञान पूर्वक तप करते हैं, मात्र शरीर को सुखाते नहीं। आत्मानन्द में इतने मग्न हो जाते हैं कि जब तक केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) न प्रगटे तब तक मौन रहते हैं।

४. ज्ञान कल्याणक—जब पूर्णज्ञान हो जाता है, तब वह

जीवन्मुक्त परमात्मा होजाते हैं, उस समय उनको अरहंत कहते हैं। उनके अनंतज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, परम वीतरागता, अनंत सुख आदि स्वाभाविक गुण प्रगट हो जाते हैं। इच्छा नहीं रहती है, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, रोगादि की बाधा नहीं होती है। शरीर कपूर के समान शुद्ध परमाणुओं में बदल जाता है, आकाश मे बिना आधार बैठते या विहार करते हैं। उस समय इन्द्रादिक देव आकर एक सभा मंडप रचते हैं; इस मंडपको समवशरण कहते हैं। इसमें बारह सभायें होती है, जिनमें देव मनुष्य, पशु सब बैठते हैं। भगवान तीर्थंकर की दिव्यवाणी द्वारा धर्मामृत की वर्षा होती है। सब अपनी २ भाषामें समझते हैं। जो साधुओंके गुरु गणधर होते हैं वे धारणा में लेकर ग्रन्थ रचना करते हैं।

५. मोक्ष कल्याणक—जब आयु एक मास या कम रह जाती है तब विहार व उपदेश बन्द हो जाता है। एक स्थल पर तीर्थङ्कर ध्यान मग्न रहते हैं।

आयु समाप्त होने पर सर्वसूक्ष्म और स्थूल शरीरों से मुक्त होकर; पुरुषाकार ऊपर को गमन करके लोक के अन्त में विराजमान रहते हुए, अनन्तकाल के लिये जन्म मरण से रहित हो आत्मानन्द का भोग किया करते हैं।

इस समय इनको परमात्मा या सिद्ध कहते हैं। इस समय भी इन्द्रादि आकर शेष शरीर की दग्ध क्रिया करके

बहुत बड़ा उत्सव मनाते हैं तथा जहां से मुक्ति होती है वहां चिन्ह * कर देते हैं। वह सिद्धक्षेत्र प्रसिद्ध होता है।

इन २४ में से, २० तीर्थङ्कर † श्री सम्मेदशिखर पर्वत (पार्श्वनाथ हिल ज़ि० हज़ारी बाग़) से, प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ कैलाश से, १२ वें श्री वासुपूज्य मन्दारगिरि (ज़ि०

---

* चिन्ह करने का प्रमाण—

ककुदंभुव खचरयोषिदुषितशिखरैरलंकृतः। मेघपटल-परिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥१२७॥ वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्यच । प्रीति विततहृदयैः परितो भृशमूर्ज्जयंत इति विश्रुतोऽचलः ॥ १२८ ॥

भावार्थ—पृथ्वी का ककुद, विद्याधरों की स्त्रियों से शोभायमान, मेघों से आच्छादित वह गिरनार पर्वत जिस पर इंद्र ने चिन्ह अङ्कित किये, भक्तिवान मुनियों के द्वारा तीर्थरूप प्रसिद्ध है।

(श्री नमिस्तुति स्वयंभू स्तोत्र)

† वीसंतु जिणवरिंदा अमरासुर वांददाधुद किलेसा।
सम्मेदे गिरि सिहरे, णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ २ ॥
अट्ठावयम्मि उस हो चंपाए वासुपुज्ज जिणणाहो।
उज्जंते णेमि जिणो, पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥

(प्रा० निर्वाणकाण्ड)

भावार्थ—बीस भगवान, इन्द्रों से वंदनीक, क्लेश रहित सम्मेदशिखर से मोक्ष गये, अष्टापद या कैलाश से ऋषभ देव, चंपापुर व मन्दारगिरि से वासुपूज्य उज्जयंत या गिरनार से नेमि, पावापुर से महावीर मोक्ष गये, उनको प्रणाम हो।

भागलपुर) से, २३ वें श्री नेमिनाथ गिरनार (ज़ि० काठियावाड़) से तथा २४ वें श्री महावीर पावापुर (ज़ि० बिहार) से मुक्त हुए हैं। इन सब तीर्थङ्करों का विशेष वर्णन जानने को सामने का नक़शा देखिये।

७५. संक्षिप्त जीवनचरित्र श्री ऋषभदेव

यद्यपि हर एक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी में २४ तीर्थंकर चौथे या तीसरे कालमें क्रम से होते हैं तथापि इस अवसर्पिणी को हुंडावसर्पिणी कहते हैं। हुंडावसर्पिणी में बहुत सी बातें विशेष होती हैं। ऐसा काल असंख्यात् अवसर्पिणी पीछे आता है।

इसमें विशेष बात यह हुई कि श्री आदिनाथ या ऋषभ देव चौथे काल के शुरू होने में जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी थे तब ही मोक्ष चले गये थे।

श्री ऋषभदेव के पिता नाभिराजा थे, इनको १४वाँ कुलकर या मनु कहते हैं। इनके पहले निम्न १३ कुलकर हुए :—

१ प्रतिश्रुति २ सन्मति ३ क्षेमंकर ४ क्षेमंधर ५ सीमंकर ६ सीमधर ७ विमलवाहन ८ चक्षुष्मान् ९ यशस्वान् १० अभिचन्द्र ११ चन्द्राभ १२ मरुदेव १३ प्रसेनजित।

तीसरे काल में जब एक पल्य का ८ वां भाग शेष रहा तब से कल्पवृक्षों की कमी होने लगी। तब ही इन कुलकरों ने, जो एक दूसरे के बहुत काल पीछे होते रहे हैं, ज्ञान देकर और लोगों की चिन्तायें मेटी।

पहिले तीन कालों में यहां भोगभूमि थी। युगल स्त्री पुरुष साथ जन्मते थे व कल्पवृक्षों से इच्छित वस्तु लेकर

सन्तोष से व मन्द कषायसे कालक्षेप करते थे। अन्तमें वे एक जोडा उत्पन्न कर मर जाते थे।

ये कुलकर महापुरुष विशेष ज्ञानी होते थे। नाभि राजाके समय में कल्पवृक्ष बिल्कुल न रहे, तब नाभि ने लोगों को वर्तन बनाने व वृक्षादि से धान्य व फलादि को काम में लाने आदि की रीति बताई। इनकी महाराणी मरुदेवी बड़ी रूपवती व गुणवती थी।

श्री ऋषभदेवके गर्भ में आनेके पहिलेही छः मास इन्द्रने अयोध्या नगरी स्थापित करके शोभा करी। मिती आषाढ़ सुदी २ को भगवान मरुदेवीके गर्भमे आये। चैत्रकृष्ण ६ को प्रभु का जन्म हुआ। स्वभाव से ही विद्वान् श्रीऋषभदेव ने कुमार-काल को विद्या, कला आदि का उपभोग करते हुए बिताया।

युवावय में नाभिराजा ने राजा कच्छ महाकच्छ की दो कन्या यशस्वती और सुनन्दा से प्रभु का विवाह किया। यश-स्वती के सम्बन्ध से भरत, वृषभसेन, अनन्तविजय, महासेन, अनन्तवीर्य आदि १०० पुत्र व एक कन्या ब्राह्मी उत्पन्न हुई। सुनन्दा के द्वारा पुत्र बाहुबली व पुत्री सुन्दरी उत्पन्न हुई।

प्रभुने विद्या पढानेका मार्ग चलानेके लिये सबसे पहिले दोनो पुत्रियोको अक्षर व अङ्क विद्या, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, काव्यादि विद्यायें सिखाई व एक १०० अध्यायों में स्वायभुव नाम का व्याकरण बनाया, फिर १०१ पुत्रों को अनेक विद्यायें सिखाई। विशेष २ विद्याओं में विशेष पुत्रों को बहुत प्रवीण किया-जैसे भरत को नीतिमें, अनन्त विजय को, चित्रकारी व शिल्पकला में, वृषभसेन को सङ्गीत और वादन में, बाहुबलि को वैद्यक, धनुष विद्या और काम शास्त्र में, इत्यादि।

उपदेश किया था, इसलिये भगवानको इक्ष्वाकु कहते थे। इसीलिये यह वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाया।

भगवान ने अपने वंशके सिवाय चार वंश और स्थापित किये। राजा सोमप्रभ को कुरुवंश का स्वामी, हरिको हरिवंश का, अकंपन को नाथवंश का व काश्यप को उग्रवंश का नायक बनाया तथा पुत्रों को भी पृथक् २ राज्य करने को देश नियत कर दिए।

इस ही प्रकार नीतिपूर्वक श्री ऋषभदेव ने ६३ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक दिन भगवान राज्य सभा में बैठे थे, एक स्वर्ग की नीलांजनादेवी सभा में मंगलीक नृत्य करती २-मरण कर गई। इस क्षणिक अवस्था को देखकर प्रभु को वैराग्य होगया, आप बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। तब पांचवें स्वर्ग से लौकांतिक देवों ने आकर प्रभु की वैराग्य को दृढ करने वाली स्तुति की। भगवान ने साम्राज्य पद बड़े पुत्र भरत को दिया। फिर इन्द्र, भगवान को पालकी पर विराजमान करके बड़े उत्सव से सिद्धार्थ बन में ले गया, वहाँ एक शिला पर बैठ सर्व वस्त्र आभूषण उतारकर, केशोंको लोंचकर प्रभु ने नग्न अवस्था में मुनि का चारित्र धारण किया। यह चैत बदी ९ का दिन था।

प्रभु के साथ उनके स्नेह में पड़ कर ४००० राजाओं ने भी मुनि भेष धारण किया। भगवान ने ६ मास का योग ले लिया और ध्यानमें मग्न होगये। तब ही भगवान को चौथा मनःपर्ययज्ञान पैदा होगया। वे ४,००० राजाभी उसी तरह खड़े हो गये। वे दो तीन मास तक तो खड़े रह सके, फिर घबड़ा

गये और भूख प्यास से पीड़ित हो वन के फलादि व जल को खाने पीने लगे।

इन लोगों ने भृष्ट हो कर अपने मनसे दंडी, त्रिदण्डी आदि मत स्थापन कर लिये। इनमें आदीश्वर प्रभु का पोता मारीच भी था।

छः मासका योगपूर्ण कर प्रभू आहार के लिये नगर में गये। मुनिको आहार देनेकी विधि न जानने से छः मास तक प्रभुको अन्तराय रहा—भोजन न मिलसका। पीछे हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस को, जो पूर्व जन्ममें उनकी स्त्री रह चुका था, यकायक पूर्व जन्म की स्मृति हो आई। उसने विधि सहित वैशाख सुदी ३ को इक्षुरस का आहार दिया। इसलिये इस मिती को अक्षय तृतीया कहते हैं।

भगवान ने १००० वर्ष तक मौनी रह कर आत्म-ध्यान करते हुए, यत्र तत्र भ्रमण कर तप किया। अन्तमें फागुन वदी ११ को पुरमिताल नगर के निकट शकट वनमें चार घातिया कर्मों को नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया, तब भगवान जीवन्मुक्त परमात्मा अरहन्त हो गये। इन्द्र ने समवशरण की रचना की। उपदेश प्रगटा और उससे अनेक जीवों ने जैनधर्म धारण किया।

मुनि समुदाय के गुरु रूप गणधर ८४ हुए, जिनमेंमुख्य वृषभसेन, सोमप्रभ, श्रेयांस थे। ब्राह्मी और सुन्दरी ने, जो ऋषभदेव की पुत्रियाँ थीं, विवाह न किया तथा प्रभु के पास आकर आर्यिका (साध्वी) हो गईं और सब आर्यिकाओं में मुख्य हुईं।

कुल शिष्य भगवान के ८४०८४ साधु, ३५०००० आर्यि-

कायें, ३ लाख श्रावक और ५ लाख श्राविकायें थीं। अनेक देशों में विहार कर प्रभुने धर्म का उपदेश दिया। फिर कैलाश पर्वत पर से १४ दिन तक आत्मध्यान में लीन हो माघ बदी १४ को निर्वाण प्राप्त किया। ※

श्रीऋषभदेव का वंश अर्थात् इक्ष्वाकु व सूर्यवंश बराबर श्री महावीर स्वामी के समय तक चलता रहा। इसी वंश में अनेक तीर्थंकर व श्री रामचन्द्र लक्ष्मण आदि भी हुए।

७६. संक्षिप्त चरित्र श्री नेमिनाथ जी

हरिवंश की एक शाखारूप यदुवंश में द्वारका के राजा समुद्रविजय थे। उनकी पटरानी शिवा देवी के गर्भ में कार्तिक शुक्ला ६ के दिन १६ स्वप्नों के देखने के साथ श्री नेमिनाथ जी का आत्मा जयन्त विमान से अहमिंद्र पद को छोड़कर आया और श्रावण सुदी ६ को प्रभु का जन्म हुआ।

समुद्रविजय के छोटे भाई वसुदेवजीके पुत्र नौवें नारा-

※ श्री ऋषभदेवके चारित्र का प्रमाण इस तरह है:—

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः, शशासकृष्यादिषु कर्मसु प्रजा। प्रबुद्धतत्वः पुनः रद्भुतोदयो, ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥ स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा, निनाय योनिर्दयं भस्मसात्क्रियाम्। जगादतत्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा, बभूव च ब्रह्म पदामृतेश्वरः ॥ ४ ॥ (स्वयंभू स्तोत्र)

भावार्थ—जिस प्रजापति ने पहिले प्रजा को कृषि आदि का उपदेश दिया फिर तत्वज्ञानी वैरागी हुए, आत्मसमाधि के तेज से उन्होंने ही अपने आत्मा के दोषों को जलाकर जगत को तत्वों का उपदेश दिया और सिद्धपद के ईश्वर हो गए।

यण श्रीकृष्ण थे। यह भी बड़े प्रतापशाली थे। एक दफ़े मगध के राजा प्रतिनारायण जरासिंधने चढ़ाई की। तब श्री कृष्णने श्री नेमिनाथजी को नगर की रक्षा का भार सौंपा। प्रभु ने ॐ शब्द कहकर स्वीकार किया और मुस्करा दिये, जिस से श्री कृष्ण को विजय का निश्चय हो गया। कृष्ण जरासिंध को मार कर व तीन खण्ड देश के स्वामी हो लौट आये।

एक दफ़े बनक्रीड़ा को नेमिनाथजी कृष्णकी सत्यभामा आदि पटरानियों के साथ गये। वहाँ बातों ही बातों में सत्यभामाने नेमिनाथजीको नोचा दिखानेकी इच्छा से यह साबित करना चाहा कि वे कृष्ण के समान पराक्रमी नहीं हैं।

इसको सुनकर स्वामी जी ने अपना बल दिखाने को आयुधशाला में आकर नाग शय्या पर चढ धनुष चढ़ाया तथा शङ्ख बजाया। शंख को सुनकर श्री कृष्ण श्री नेमिनाथ जी का कार्य जान आश्चर्यान्वित हुए और यह विचारने लगे कि यदि ये इतने पराक्रमी हैं तो इनके सामने में राज्य न कर सकूँगा, इसलिए इनको वैराग्य हो जावे, ऐसा उपाय करना चाहिये। इन्हीं दिनों नेमिनाथ का विवाह उग्रवंशी राजा उग्रसेन की कन्या राजमती से होने वाला था। लग्न निश्चित हुई और बारात सज धज के साथ चलने लगी। इधर श्री कृष्ण ने नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये बारात के मार्ग में बहुत से पशुओं को बन्द करा के सेवकों को यह समझा दिया, कि यदि श्री नेमिनाथ जी पूछें तो यह कह देना कि श्री कृष्ण ने आपके विवाहोत्सव में म्लेच्छ-अतिथियों के सत्कारार्थ इन्हें इकट्ठा कराया है।

यह केवलमात्र एक चाल थी। पशु मारकर मांस खाने

का भाव न था। जब श्रीनेमिनाथ उधर पहुंचे, तब पशुओं का करुण क्रन्दन और चीत्कार सुन व्याकुल हो उठे। पूँछने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि श्री कृष्ण ने मेरी शादी में आये म्लेच्छ अतिथियोंके सत्कारार्थ इनको इकाट्ठा कराया है? तभी उन्होंने विवाह न करने का निश्चय किया और तुरन्त पशुओं को बन्धन से छुडाकर स्वयं संसार से वैरागी हो श्रावण सुदी ६ के दिन श्री गिरनार पर्वत के सहश्राम्र बन में जाकर दीक्षा धारण कर ली। ५६ दिन तक कठिन तपश्चरण करने से प्रभु को गिरनार पर्वत पर ही असौज सुदी १ के दिन केवलज्ञान हो गया। तब आप जीवन्मुक्त परमात्मा हो अरहन्त हो गये और धर्मोपदेश देते हुए विहार करने लगे।

आपके शिष्य १८००० मुनि थे, उनमें मुख्य वरदत्तआदि ११ गणधर थे। राजमती भी बिना विवाहे नेमिनाथ जी के लौटने पर संसार से उदास हो गई और वह भी आर्यिका के व्रत लेकर नेमिनाथ की शिष्या ४० हज़ार आर्यिकाओं में मुख्य हुई। श्री कृष्ण बलदेव अपनी २ रानियों सहित उपदेश सुनने को आये। तब कृष्ण की रुक्मिणी, सत्याभामा आदि आठ पटरानियों ने आर्यिकाके व्रत धार लिये। भगवानने ६९९ वर्ष ९ मास ४ दिन विहार किया। आप की आयु १००० वर्ष की थी, फिर एक मास श्री गिरनार पर्वत पर योग निरोध कर आषाढ़ सुदी ७ को मोक्ष पधारे।

७७. संक्षिप्त चरित्र श्री पार्श्वनाथ जी

श्रीपार्श्वनाथ भगवान का जीव अपने जन्म से दो जन्म पहिले आनन्द राजा थे। वह मुनिहो घोरतप करके व तीर्थंकर

नामकर्मबांधकर १३ वें स्वर्ग में इन्द्र हुये थे। वहां से आकर काशी देशके बनारस नगरके काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन की रानी ब्रह्मादेवी के गर्भ में वैशाख वदी २ को पधारे। पौष वदी ११ को प्रभु जन्मे, तब इन्द्र ने उत्सव किया। १६ वर्ष की उम्र में एक दिन वन विहार को गये, वहाँ महीपाल राजा अजैन तापसी पंचाग्नि तप लकडी जलाकर कर रहा था। वह एक लकड़ी को चीरने के लिये लकड़ी में कुल्हाड़ी मारने ही वाला था कि भगवान ने अवधिज्ञान से यह जानकर कि इसके भीतर सर्प सर्पिणी है, उसे काटने के लिये मना किया। उसने वचन न माना। लकड़ी पर चोट पड़ते ही दोनों प्राणी घायल हो गये तब भगवान के साथ जो अन्य राजकुमार थे, उन्होंने इनको धर्मोपदेश सुनाया, जिससे वे शान्तभाव से मरकर भवनवासी देवों में धरणेन्द्र व पद्मावती हुए।

यह तपसी पूर्व जन्मों में प्रभु के जीव का वैरी था। यहाँ भी इसको इस कृत्य से लज्जित होना पड़ा। इस कारण इसके हृदय में शत्रुता का भाव और भी ज़्यादा बढ़ गया। अन्त में मर कर पचाग्नि तप के कारण ज्योतिषदेव हुआ।

३० वर्ष तक प्रभु कुमारावस्थामें रहे। एक दिन अयोध्या के राजा जयसेनने कुछ भेंटें प्रभु को भेजी, तब दूतसे भगवान ने उस नगर का हाल मालूम किया। वह उस नगर में उत्पन्न हुए श्री ऋषभदेव आदि महापुरुषों का वर्णन करने लगा। यह सुनकर प्रभु को अपना भी ध्यान हो आया कि मैं भी तो तीर्थंकर ही हूँ। अभी तक क्यों गृह के मोह में फँसा हूँ? ऐसा सोचकर आप भी वैराग्यवान् हो गये और रीतिवत् पौष कृष्ण ११ को अश्ववन में तप धारण कर लिया।

भगवान का पहला आहार गुल्मखेट नगर के राजा धन्य ने किया, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मदत्त भी था। भगवान ने ४ मासतक तप करते हुए विहार किया, फिर प्रभु अहिछत्र रामनगर (जो बरेली के पास है) के वन में आये। वहां ध्यान में बैठे थे, तब इनके वैरी उसी ज्योतिषी देव ने घोर उपसर्ग किया, किन्तु प्रभु ध्यान से न डिगे। इतने ही में सर्पों के जीव धरणेन्द्र और पद्मावती आये। उन्होंने सर्प का ही रूप धारण कर अपने फणों द्वारा तप में लीन भगवान की उपसर्गसे रक्षा की। इनके भय से वह ज्योतिषी देव भागगया। इसी कारण वह स्थान अहिच्छत्र प्रसिद्ध है।

उसी समय चैत वदी १४ को भगवानने केवलज्ञान प्राप्त किया और काशी, कौशल, पांचाल, मरहठा, मारू, मगध, अवंती, अङ्ग, वंग आदि देशों में विहार कर धर्मोपदेश दिया।

स्वयंभू आदि १० गणधरोंको लेकर कुल १६००० मुनि, ३६००० आर्यिकाएँ, एक लाख श्रावक व ३ लाख श्राविकाएँ शिष्य हुए।

कुछ कम ७० वर्ष विहार करके श्रीसम्मेद शिखर पर्वत से सावन सुदी ७ को भगवान मोक्ष पधारे। *

---

*श्रीपार्श्वनाथजीके उपसर्गके सम्बन्धमें कथन है कि—

बृहत्फणा मण्डल मण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिंगरुचोपसर्गिणाम्। जुगूहनागो धरणोधराधरं, विराग संध्या तडिदम्बुदोयथा ॥ १३२ ॥ (स्वयम्भू स्तोत्र)

भावार्थ—धरणेन्द्र ने उपसर्ग में प्राप्त भगवान के ऊपर अपने फणोंका मण्डप इसी तरह कर लिया जिस तरह पर्वत पर बिजली सहित मेघ छा जाते हैं।

७८. संक्षिप्त जीवनचरित्र श्री महावीर स्वामी

श्री महावीर स्वामी अपने पूर्व जन्मों में भरत के पुत्र मारीच थे, जो श्री ऋषभ देवके साथ तप लेकर भ्रष्ट हो गये थे। यही मारीच भ्रमण करते हुए त्रिपृष्ठ नारायण हुए थे। ये ही नद राजाके भवमें उत्तम भावनाओंको भाकर १६ वें स्वर्गमें इन्द्र हुए। वहां से आकर भरत क्षेत्र के विदेह प्रांतके कुन्डपुर या कुन्डग्राममें नाथवंशी काश्यप गोत्री राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशला या प्रियकारिणी के गर्भ में आषाढसुदी ६ को पधारे। चैत सुदी १३ को भगवान का जन्म हुआ। उस समय इन्द्र ने मेरु पर अभिषेक करके भगवान के वर्धमान और वीर ऐसे दो नाम रखे।

प्रभुने आठवें वर्ष अपने योग्य श्रावक के १२ व्रत धार लिये, क्योंकि प्रभुको जन्म से ही तीन ज्ञान थे। वे धर्म को अच्छी तरह समझते थे।

एक दिन संजय और विजय दो चारण मुनियों को कुछ सन्देह हुआ। बालक वीर के दूर से दर्शन प्राप्त करते ही उनके सन्देह मिट गये। तब उन्होंने सन्मति नाम प्रसिद्ध किया।

एक दफ़े वनमें वीर कुमार अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। इनके वीरत्व की परीक्षा लैने को एक देव महासर्प का रूप रख उस वृक्ष से लिपट गया, जिसपर सब बालक चढ़े थे। सब बालक तो सर्प को देख कर डर गये और कूद कूद कर भाग गये, परन्तु वीर ने निर्भय हो उससे क्रीड़ा की। तब देव बहुत प्रसन्न हुआ और भगवान का अतिवीर नाम सम्बोधित कर वापिस चला गया।

भगवान को विना ही पढ़े सब कला व विद्यायें प्रगट थीं । भगवान ने तीस वर्ष तक की उम्र मन्द राग से धर्म साधते व शुभ ध्यान करते हुए विताई। जब आप तीस वर्ष के हुए, तब पिताने विवाह के लिये कहा। उस समय अपनी ४२ वर्ष की ही आयु शेष जान कर प्रभु स्वयं ही विचारते २ वैरागी होगये और खंका नाम के वन में जाकर, मगसिर वदी १० को केश लोंचकर नग्न हो साधु हो गए और वेले (दो उपवास) का नियम लिया।

पहला आहार कूल नगर के राजा कूल ने कराया। प्रभु ने १२ वर्ष तप किया। इसी मध्यमें एक दफे भगवान उज्जयनी के वनमें ध्यान लगा रहे थे, वहां स्थाणु महादेवने इन्हें अपनी मंत्र विद्या से वहुत कष्ट दिये। अन्त में ध्यानमें निश्चल देख वह लज्जित हो गया और प्रभुका माहात्म्य देख महावीर नाम प्रसिद्ध किया। इस तरह वीर अतिवीर, महावीर, सन्मति और वर्धमान ऐसे पांच नाम प्रभु के प्रसिद्ध हुए।

प्रभु जृंभिका ग्राम के वाहर ऋजुकूला नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे ध्यान कररहे थे, तव आप केवलज्ञानी हो कर अरहन्त पद में आगए।

समवशरण रचे जाने पर ६६ दिन तक जब उपदेश नहीं हुवा, तब इन्द्रने विचार किया कि कोई व्यक्ति यहाँ वाणी को धारण करने योग्य नहीं मालूम होता है।

ज्ञान से विचार कर इन्द्र ने वृद्ध पुरुष का रूप रख राजगृही मे रहने वाले एक गौतम ब्राह्मण को भगवान का मुख्य गणधर होने की शक्ति रखने वाला जान, उसे भगवान के पास वुला लाने को चला। किन्तु यह समझ कर कि वह

मानी ब्राह्मण ऐसे भगवान के पास नहीं आयगा, इन्द्र ने उस के पास जा कर उससे इस श्लोक का अर्थ पूछा—

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नव पद सहितं जीव षट् काय लेश्या।
पंचान्येचास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः॥
इत्येतन्मोक्ष मूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्त महंन्द्रिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धाति स्पृशतिच मतिमान्यः सवै शुद्ध दृष्टिः॥

वह ब्राह्मण इस श्लोक में सांकेतिक शब्दों के कारण इसका अर्थ न समझ सका। तब वह अपने दोनों भाई व ५०० शिष्यों को लेकर समवशरण में गया। भगवान के दर्शन मात्र से इसका मन कोमल हो गया और भगवान को नमन कर के प्रश्न किये। तब ही भगवान की वाणी भी प्रगटी।

सात तत्वों का भाषण सुनकर ये तीनों भाई शिष्यों सहित मुनि होगये। इन्द्रने गौतम का दूसरा नाम इन्द्रभूति रखा। प्रभु ने ६ दिन कम ३० वर्ष तक बहुत से देशों में विहार करके धर्मोपदेश दिया। राजग्रही के विपुलाचलपर बहुत दफ़े वाणी प्रकटी। वहां का राजा श्रेणिक या बिम्बसार भगवान का मुख्य भक्त था।

चन्दना सती वैशाली के राजा चेटक की लड़की कुमार अवस्था में ही आर्यिका हो गई। वह सब आर्यिकाओं में उसी प्रकार मुख्य हुई जैसे सर्व साधुओं में मुख्य गौतम या इन्द्र-भूति थे। भगवान के इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौड, पुत्र, मैत्रेय, अकंपन. अधवेल तथा प्रभास, ये ११ गणधर थे। सर्व शिष्य १४००० मुनि, ३६००० आर्यिकायें, १ लाख श्रावक, ३ लाख श्राविकायें हुईं।

फिर भगवान पावानगर के वनसे कार्तिक कृष्णा १४ की

रात्रि को अन्त समय, स्वाति नक्षत्र में मोक्ष पधारे। आप ही के समय में बौद्धमत के स्थापक क्षत्री राजकुमार गौतम बुद्ध होगये हैं। जैन शास्त्रानुसार पहले यह जैन मुनि होगये थे। अज्ञानता से इन्होंने कुछ शङ्का उत्पन्न कर अपना भिन्नमत स्थापित किया। इनके साधुओं से जैन साधुओं का सदाही वादानुवाद हुआ करता था। बौद्ध साधु वस्त्र रखते हैं, आत्म को नित्य नहीं मानते हैं, जैनियों की तरह खान पान की शुद्धिपर ध्यान नहीं रखते। बुद्ध ने गृहस्थों को मांसाहार के निषेध की ऐसी कड़ी आज्ञा नहीं दी, जैसी जैन गृहस्थों को तीर्थंङ्करों ने दी है।

७६. भरतक्षेत्रके वर्तमान प्रसिद्ध १२ चक्रवर्ती

इस भरतक्षेत्रके छः विभाग हैं। दक्षिण मध्य-भाग को आर्यखण्ड व शेष ५ को म्लेच्छखण्ड कहते हैं। काल का परिवर्तन आर्यखण्ड में ही होता है, म्लेच्छखंडों में सदा दुखमा सुखमा काल की कभी उत्कृष्ट और कभी जघन्य रीति रहती है। जो इन छहों खण्डों के स्वामी होते हैं, उनको चक्रवर्ती राजा कहते हैं। हर एक चक्रवर्ती में नीचे लिखी बातें होती हैं :—

१. १४ रत्न—७ चेतन–जैसे सेनापति, गृहपति, शिल्पी, पुरोहित, पटरानी, हाथी, घोड़ा। ७ अचेतन–सुदर्शनचक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, चूडामणि, चर्म, कांकिणी। इन हर एक के सेवक देव होते हैं।

२. नौ निधियें या भण्डार—काल, महाकाल, नैसर्प्य, पांडुक, पद्म माणव, पिंगल, शंख, सर्वरत्न जो क्रमसे पुस्तक,

असिमपिसाधन, भाजन, धान्य, वस्त्र. आयुध, आभूषण वादित्र, वस्त्रों के भण्डार होते हैं। इन के रक्षक भी देव होते हैं।

३ ३२००० हज़ार मुकुटबद्ध राजा व ३२००० देश व १८००० आर्यखण्ड के म्लेच्छ राजा (आधीन होते हैं)।

४. ८४ करोड़ हाथी, ८४ लाख रथ, १८ करोड़ घोड़े, ८४ करोड़ प्यादे, ३ करोड़ गौशालायें आदि सम्पत्ति होती है।

छः खण्डों के राजाओं को दिग्विजय के द्वारा अपने आधीन करते हैं व न्याय से प्रजा को सुखी करते हुए राज्य करते हैं। ऐसे १२ चक्रवर्ती २४ तीर्थंकरों के समय में नीचे प्रकार हुए हैं :—

(१) भरत—ऋषभदेव के पुत्र। यह बड़े धर्मात्मा थे। एक दफ़े इनको एक साथ तीन समाचार मिले—ऋषभदेवका केवलज्ञानी होना, आयुधशाला में सुदर्शनचक्र का प्रगट होना, अपने पुत्र का जन्म होना। आपने धर्म को श्रेष्ट समझ कर पहले ऋषभदेव के दर्शन किये, फिर लौटकर दोनों लौकिक काम किये।

भरत ने दिग्विजय करके भरतखण्ड को वश किया। मुख्य सेनापति हस्तिनापुर का राजा जयकुमार था। छोटे भाई बाहुबलि ने इनको सम्राट् नहीं माना, तब इनसे युद्ध ठहरा। मंत्रियों की सम्मति से सेना की व्यर्थ में जिससे किसी भी प्रकार की क्षति न हो, इस कारण परस्पर तीन प्रकार के युद्ध ठहरे—दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध।

तीनो युद्धों में भरत ने बाहुबलि से हार कर क्रोधित हो बाहुबलि पर चक्र चला दिया। किन्तु चक्र भी जब बाहुबलि

का कुछ न बिगाड़ सका. तो भरत बहुत लज्जित हुए। उधर बाहूबलि अपने बड़े भाई भरत का राज्य-लक्ष्मी के लोभ में फँसे होने के कारण, यह दुष्कृत्य देख और अपने द्वारा बड़े भाई का अपमान हुआ समझ, राज्य-लक्ष्मी की निन्दा कर तुरन्त वैरागी साधु हो गये और बहुत ही कठिन तपश्चरण करने लगे। एक वर्ष तक लगातार ध्यान में खड़े रहने से इनके शरीर पर बेलें तक चढ़ गईं। अन्त में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद प्राप्त किया।

भरत बड़े न्यायी थे। इनका बड़ा पुत्र अर्ककीर्ति था। काशी के राजा अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के सम्बन्ध के लिये स्वयम्वर-मण्डप रचा। तब सुलोचना ने भरत के सेनापति जयकुमार के कण्ठ में वरमाला डाली। इस पर अर्ककीर्ति ने रुष्ट होकर युद्ध किया और युद्ध में हार गया। चक्रवर्ती भरत ने अपने पुत्र की अन्यायप्रवृत्ति पर बहुत खेद किया और उसको किसी भी प्रकार की सहायता नहीं दी। भरत बड़े आत्मज्ञानी व राज्य करते हुए भी वैरागी थे।

एक दफ़े एक किसान ने भरत से पूछा कि आप इतना प्रबन्ध करते हुए भी तत्वज्ञान का मनन कैसे करते हैं? आपने उसे एक तेल का कटोरा दिया और कहा तू मेरे कटक में घूम आ, परन्तु यदि इस कटोरे में से एक बूँद भी गिरेगी तो तुझे दण्ड मिलेगा। वह कटोरे को ही देखता हुआ लौट आया। महाराज ने पूछा कि क्या देखा? उसने कहा कि कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मेरा ध्यान कटोरे पर था। यह सुनकर भरत ने कहा कि इसी तरह मेरा चित्त आत्मा पर रहता है। मैं सब कुछ करते हुए भी अलिप्त रहता हूँ।

एक दिन दर्पण में मुख देखते हुए शिर में एक सफ़ेद बाल देखकर आप साधु होगए। पौने दो घड़ी के ही आत्म-ध्यान से आपको केवलज्ञान हो गया। आयु का अन्त होने पर मोक्ष पधारे। आपने कैलाश पर्वत पर भूत, भविष्य वर्तमान, तीनों चौबीसियों के ७२ मन्दिर बनवाए थे।

(२) सगर—यह अजितनाथ के समय में हुए। इक्ष्वाकुवंशी, पिता समुद्रविजय, माता सुबाला थीं। सगर के ६०००० पुत्र थे। एक दफ़े इन पुत्रों ने सगर से कहा कि हमें कोई कठिन काम बताइए। तब सगर ने कैलाश के चारों तरफ़ खाई खोद कर गङ्गा नदी बहाने की आज्ञा दी। ये गये, खाई खोदी। तब सगर के पूर्व जन्म के मित्र मणिकेतु देव ने अपने वचन के अनुसार सगर को वैराग्य उत्पन्न कराने के लिये उन सर्व कुमारों को अचेत करके सगर के पास आकर यह मिथ्या समाचार कहे कि आपके सब पुत्र मर गये। यह सुन कर सगर को वैराग्य हो गया और भगीरथ को राज्य दे आप साधु हो गए। पुत्र जब सचेत हुए और पिता का साधु होना सुना तो यह सुनते ही ये सब भी साधु हो गए।

(३) मघवा—यह चक्रवर्ती सगरसे बहुत काल पीछे श्री धर्मनाथ पन्द्रहवें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद हुए। इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमित्र और सुभद्रा के पुत्र थे। अयोध्या राजधानी थी। बहुत काल राज्य कर प्रिय मित्र पुत्र को राज्य देकर, साधु हो तप कर मोक्ष पधारे।

(४) सनत्कुमार—चौथे चक्रवर्ती धर्मनाथजीकेसमय में अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशीय राजा अनन्तवीर्य और रानी सह-देवीके पुत्र थे। आप बड़े न्यायी सम्राट् थे तथा बड़े रूपवान थे।

एक दिन आप अखाड़ेमें व्यायाम कर रहे थे। तब आप के रूप की प्रशंसा इन्द्र के मुखसे सुनकर एक देव देखने को आया और देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर राजसभा में प्रकट हो मिलने को गया। उस समय उतनी सुन्दरता न देख कर मस्तक हिलाया। सम्राट् ने मस्तक हिलाने का कारण पूछा। उत्तर में देव द्वारा अपने रुप की क्षणमात्र में ही कम हो जाने की बात सुन चक्री को संसार की अनित्यता देख कर वैराग्य हो गया। उसी समय पुत्र देवकुमार को राज्य दे वे शिवगुप्त मुनि से दीक्षा ले तप करके मोक्ष पधारे।

तप के समय एक दफ़े कर्मके उदयसे कुष्टादि भयङ्कर रोग होगये। एक देव परीक्षार्थ वैद्य के रूप में आया और कहा कि आप औषधि लें। मुनिने उत्तर दिया कि आत्माके जो जन्म मरणादि रोग हैं यदि उन्हें आप दूर कर सकते हों तो दूर करें, मैं आपकी दीहुई अन्य वस्तुएँ ले कर क्या करूँगा। देव ने मुनि के चारित्र में दृढता देखकर उनकी स्तुति की और अपने स्थान को वापिस चला गया।

(५) १६वें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ—यह एक दिन दर्पण में अपने दो मुँह देख संसार को अनित्य विचार अपने नारायण पुत्र को राज्य दे साधु हो गये। आठ वर्ष पीछे ही केवली हो अन्त में मोक्ष पधारे।

(६) १७ वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ जी—एक दिन वन में क्रीड़ा करने गये थे। लौटते समय एक दिगम्बर साधु को देखकर वैरागी हो गये। १६ वर्ष तप करके केवलज्ञानी होकर मोक्ष पधारे।

(७) १८ वें तीर्थङ्कर श्री अरहनाथ जी—राज्यावस्था में एक दिन शरद्ऋतु में मेघों का आकार नष्ट होना देख आप वैरागी हो गये । १६ वर्ष तप कर अरहन्त होकर उपदेश दे अन्त में मोक्ष पधारे ।

(८) सुभौम—श्री अर नाथ तीर्थङ्कर के मोक्ष के बाद हुए। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा सहस्रबाहु और रानी चित्रमती के पुत्र थे। आपका जन्म एक वनमें हुआ था। इनके पिता सहस्रबाहु के समय में इनके बड़े भाई कृतवीर्य ने एक दफ़े किसी कारण से राजा जमदग्नि को मार डाला, तब जमदग्नि के पुत्र परशुराम और श्वेतराम ने यह बात जान कर बहुत क्रोध किया और सहस्रबाहु तथा कृतवीर्य को मार डाला । तब सहस्रबाहु के बड़े भाई सांडिल्य ने गर्भवती रानी चित्रमती को वनमें रक्खा जहां सुभौम पैदा हुए।

यह १६ वें वर्ष में चक्रवर्ती हुए। एक दिन परशुराम को निमित्तज्ञानी से मालूम हुआ कि मेरा मरण जिससे होगा वह पैदा हो गया है। निमित्तज्ञानी ने उसकी परीक्षा भी बताई कि जिस के आगे मारें हुए राजाओं के दांत भोजन के लिये रखे जावें और वे सुगन्धित चावल हो जावें, वही शत्रु है । इसलिये परशुराम ने अनेक राजाओं को सुभौम के साथ बुलाया। सुभौम के सामने दांत चांवल हो गये। सुभौम को ही शत्रु समझ परशुराम ने सुभौम को पकड़ा, परन्तु तब ही सुभौम को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई। उस चक्र से ही युद्ध कर सुभौम ने परशुराम को मार दिया ।

दिग्विजय कर सुभौम ने बहुत काल राज्य किया। यह बहुत ही विषयलंपटी था । एक दफ़े इसको एक शत्रु देव

ने व्यापारी के रूप में बड़े स्वादिष्ट अपूर्व फल खाने को दिये। जब वे फल न रहे, तब चक्रीने और मांगे। व्यापारीने कहा कि ये फल एक द्वीप में मिल सकेंगे। आप जहाज़ पर मेरे साथ चलिये। वह लोलुपी चल दिया। मार्ग में उस देव ने जहाज़ को डबो दिया और चक्रवर्ती खोटे ध्यान से मर कर सातवें नर्क गया।

(६) नौवें चक्री १६ वें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ के समय में काशीनगरी के स्वामी इक्ष्वाकुवंशीय पद्मनाथ और ऐराराणी के सुपुत्र पद्म थे। बादलों को नष्ट होते देखकर वैरागी होगये और साधु होकर मोक्ष पधारे।

(१०) दसवें चक्री श्री हरिषेण भगवान मुनिसुव्रत-नाथ के काल में भोगपुर के राजा इक्ष्वाकुवंशीय पद्म और ऐरादेवी के सुपुत्र थे। आकाश में चन्द्र ग्रहण देख आप साधु हो गये तथा अन्त में सर्वार्थसिद्धि गये, मोक्ष न जा सके।

(११) ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन श्री नेमिनाथ तीर्थङ्कर के समय में वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय और रानी प्रभाकारी के पुत्र थे। एक दिन आकाशमें उल्कापात देखकर वैराग्यवान हो साधु होगये। तप करते हुए अन्त में श्री सम्मेद शिखर पर पहुँचे। वहां चारण नाम की चोटी पर समाधिमरण कर सर्वार्थ सिद्धि में जा अहमिन्द्र हुए। एक जन्म मनुष्य का और ले मोक्ष पधारेंगे।

(१२) श्री नेमिनाथ के समयमें १२ वां चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुआ। यह ब्रह्मा राजा व रानी चूल देवी का पुत्र था। यह विषय भोगों में फंसा रहा। अन्त में मर कर सातवें नर्क गया।

८०. भरतक्षेत्र में ६ प्रतिनारायण, ६ नारायण और ६ बलभद्रों का परिचय

विदित हो कि हर एक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी कालमें ६३ महा पुरुष होते रहते हैं, अर्थात् २४ तीर्थंकर जो सब मोक्ष जाते हैं. १२ चक्री जिन में कोई मोक्ष कोई स्वर्ग और कोई नर्क जाते हैं और ६ प्रतिनारायण ६ नारायण व बलभद्र जिन में से ६ नारायण और ६ प्रतिनारायण विषय भोग में तन्मय होने के कारण नर्क जाते हैं, परन्तु बलभद्र साधु होकर कोई मोक्ष तथा कोई स्वर्ग जाते हैं।

नारायण और बलभद्र एक ही पिता के पुत्र होते हैं। प्रतिनारायण नारायण से पहिले ही जन्म से भरत के दक्षिण तीन खण्डों को जीतकर अपने वश करते हैं और चक्ररत्नको पाकर अर्धचक्री हो राज्य करते हैं। कारणवश नारायण से इनकी शत्रुता हो जाती है, दोनों घोर युद्ध करते हैं, अन्त में नारायण उसी के चक्र रत्न को पाकर उसी से प्रतिनारायण का मस्तक छेदन कर स्वयं अर्धचक्री होजाते हैं और बड़े भाई बलभद्र के साथ राज्य करने लगते हैं।

नारायण के पास निम्न ७ रत्न होते हैं:—

धनुष, खड्ग, चक्र, शंख, दण्ड, गदा, शक्ति।

बलभद्र के पास भी निम्न चार रत्न होते हैं:—

गदा, माल, हल, मूसल।

ये सबही ६३ महापुरुष मोक्षके अधिकारी हैं, जो इस जन्म से मोक्ष न जावेंगे, वे आगामी किसी जन्म से बहुत

थोड़े काल में ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। नारायणादि का परिचय इस भांति है:—

(१) श्रेयांसनाथ तीर्थङ्करके समय में भरतके विजयार्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी में अलकापुरी के राजा मयूरग्रीव का पुत्र अश्वग्रीव नामका पहिला प्रतिनारायण हुआ। इसी समय में पोदनपुर के राजा प्रजापति के मृगावती रानी से पहला नारायण तृपृष्ठ (यह भरत-पुत्र मारीच अर्थात् महावीर स्वामी का जीव है) और दूसरी रानी जयावती से विजय नाम के बलभद्र हुए।

अश्वग्रीव और तृपृष्ठ में युद्ध का कारण यह हुआ कि अश्वग्रीव के पास किसी राजा द्वारा भेजी हुई भेट को तृपृष्ठ ने बलपूर्वक ले लिया था। युद्ध में प्रतिनारायण मर कर नर्क गया। नारायण पृथ्वी का स्वामी हुआ और राज्य करके अन्त में यह भी मोह से मर कर नर्क ही में गया। पीछे बलभद्र ने सुवर्णकुंभ मुनिसे दीक्षा ले मोक्ष प्राप्त किया।

(२) श्री वासुपूज्य के समय में भोगवर्धनपुर के राजा श्रीधर के पुत्र दूसरे प्रतिनारायण तारक हुए। उसी समय द्वारिकापुरी के राजा ब्रह्म की सुभद्रा रानी से दूसरे बलभद्र अचल और ऊषा रानी से दूसरे नारायण द्विपृष्ठ जन्मे।

तारक ने दूत भेजकर नारायण को आज्ञानुवर्ती रहने को कहा, जिसे स्वीकार न करनेके कारण परस्पर युद्ध हुआ। तारक चक्रसे मरा और सातवें नर्क गया। द्विपृष्ठ राजा हुआ और राज्य कर यह भी मरकर नर्क ही गया, फिर अचल ने साधु हो मोक्ष प्राप्त किया।

(३) श्री विमलनाथ तीर्थंकर के जीवन काल में ही रत्नपुर का राजा मधु नाम का तीसरा प्रतिनारायण हुआ। तब ही द्वारिका के राजा रुद्र के सुभद्रादेवी रानी से तीसरे बलभद्र सुधर्म व पृथ्वीदेवी से तीसरे नारायण स्वयंभू हुए।

किसी राजा द्वारा मधुको भेजी हुई भेंट स्वयंभू ने छीन ली, इससे परस्पर युद्ध हुआ। मधु मरकर नर्क गया। स्वयंभू ने भी राज्य का मोह से मर ७ वां नर्क पाया। सुधर्म ने विमलनाथ भगवान से दीक्षा ले मोक्ष पद पाया।

(४) श्री अनन्तनाथ तीर्थङ्कर के समय काशी देश के राजा के यहाँ मधुसूदन नाम का चौथा प्रति नारायण हुआ। तब ही द्वारिका के राजा सोमप्रभकी रानी जयावतीसे सुप्रभ नाम के चौथे बलभद्र तथा रानी सीता से पुरुषोत्तम नाम के चौथे नारायण हुए।

मधुसूदनने पुरुषोत्तम से राज्य-कर मांगा। न देनेपर युद्ध छिड़ गया। मधुसूदन मारे गये व सातवें नर्क गये। पुरुषोत्तमने मग्न हो राज्य किया और अन्तमें मर कर यह भी सातवें नर्क गया। सुप्रभ ने दीक्षा ले तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(५) भगवान धर्मनाथ के समय में हस्तिनापुर में मधुकैटभ नामका पांचवां प्रतिनारायण हुआ। तवही खगपुर के राजा इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन की रानी विजयादेवी से ५ वें बलभद्र सुदर्शन व अंबिकादेवी से ५वें नारायण पुरुषसिंह हुए।

मधुकैटभने नारायण से कर माँगा, न देने पर परस्पर युद्ध हुआ। कैटभ मरकर नर्क गया। पुरुषसिंह भी राज्य कर

अन्त में मर सातवें नर्क गया। वलदेव सुदर्शन ने धर्मनाथ तीर्थङ्कर के पास दीक्षा ली और तपकर मोक्ष पधारे।

(६) श्री अरहनाथ के तीर्थकाल में सुभौम चक्रवर्ती के पीछे निसुंभ नामका छठवां प्रतिनारायण हुआ। तबही चक्रपुर के महाराज वरसेन के वैजयन्ती रानी से छठवें बलभद्र नंदिषेण और लक्ष्मीवती रानी से छठवें नारायण पुंडरीक हुए। इन्द्रपुर के राजा उपेन्द्रसेन ने अपनी कन्या पद्मावती का विवाह नारायण पुडरीक से किया। इस पर निशुंभ अप्रसन्न हो युद्धको आया। युद्धमें निशुंभ मरकर नर्क गया। पुंडरीक राज्य में मोहित हो अन्त में मर कर छठे नर्क गया। बलभद्र नन्दिषेणने वैराग्यवान हो तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(७) श्रीमल्लिनाथ के तीर्थकालमें विजयार्ध पर्वत पर वलिन्द नाम के ७ वें प्रतिनारायण हुए। उसी समय बनारस के इक्ष्वाकुवंशी राजा अग्निशिख के अपराजिता रानी से ७ वें बलभद्र नन्दमित्र तथा केशवती रानी से ७ वें नारायण दत्त उत्पन्न हुए।

दत्त के पास क्षीरोद नामका बड़ा सुन्दर हाथी था। उसे बलिन्दने मांगा। दत्तने बदलेमें कन्या विवाहने को कहा। इस शर्त के न माने जाने पर परस्पर युद्ध हुआ। बलिन्द मर कर नर्क गया। दत्तने भी राज्य कर भोगों में लीन हो अन्त में सातवां नर्क पाया। नन्दमित्र ने तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

(८) भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में लंकाके राजा रत्नश्रवा के केकशी रानी से ८ वें प्रतिनारायण रावण हुए। तब ही अयोध्या के राजा दशरथ के कौशल्या रानी से ८ वें

बलभद्र रामचन्द्र तथा सुमित्रा रानी से ८ वें नारायण लक्ष्मण हुए। रामचन्द्र की रानी सीता पर मोहित हो रावण ने उसे हरण किया। इस पर रामचन्द्र ने लङ्का पर चढ़ाई की। युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को मारा। वह नर्क गया। लक्ष्मण ने सीता को छुड़ाया। बहुत काल तक दोनों भाइयों ने राज्य किया। लक्ष्मण भोगों में अत्यन्त लिप्त रहते थे।

एक दिन किसी ने रामचन्द्र की मृत्यु की झूठी ख़बर लक्ष्मण को दी, जिस को सुनते ही एक दम शोकाकुल हो जाने से लक्ष्मण के प्राण निकल गये।

रामचन्द्रने कुछ काल पीछे दीक्षाले तप कर मुक्ति पाई।

(९) श्रीनेमिनाथ स्वामीके समय में मगध का राजा जरासंध नौवाँ प्रतिनारायण हुआ। उसी समय मथुरा के यदुवंशी महाराजा वसुदेव के रानी देवकी से श्रीकृष्ण नामके नौवें नारायण हुए।

राजा कंस देवकी के पुत्रों का शत्रु था। इससे उसके भय से वसुदेव ने पैदा होते ही कृष्ण को जमना पार ब्रज में ले जाकर एक नन्द गोपाल को पालने के लिये सौंप दिया।

महाराज वसुदेवकी दूसरी रानी रोहिणीसे ९वें बलभद्र पद्म नाम के हुए। किसी कारण से कंस ने कृष्ण का जन्म जान लिया। तब कृष्ण के मारने के लिये अनेक उपाय किये, पर वे सब निष्फल हुए।

जब कृष्ण सामर्थ्यवान हुए तब पहिले ही उन्होंने कंस को युद्ध में मारा। कंसकी रानी जीवद्यशाने अपने पिता प्रतिनारायण जरासंध को पति के मरण का हाल सुनाया। जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन को युद्ध के लिए भेजा। शत्रु

को बलवान जानकर यादवों ने सूरीपुर हस्तिनापुर व मथुरा को छोड़कर समुद्र के पार द्वारकानगर में बास किया। वहीं श्री नेमिनाथजी का जन्म हुआ।

कुछ काल पीछे जरासन्ध कृष्ण के मारने के लिये सेना लेकर चला। इधर कृष्ण ने भी सेना ले पांचों पाण्डवों के साथ कुरुक्षेत्र में आकर जरासन्ध की सेना के साथ युद्ध किया। अन्तमें जरासन्ध ने सुदर्शनचक्र चलाया; वह कृष्ण के हाथ में आगया, उसी से ही कृष्ण ने जरासन्ध को मारा। वह मर कर नर्क गया, फिर कृष्ण ने तीन खण्ड राज्य पाकर द्वारका लौटकर, नारायण पदमें बल्देव सहित राज्य किया। इनका शरीर नील वर्ण का था। कृष्ण की रुकमणी आदि आठ पटरानियां थी।

नेमिनाथ जी को अधिक प्रतापी जान कृष्ण ने कुछ ऐसी चेष्टा की जिससे नेमिनाथ वैराग्यवान हो, मुनि हो तप करने लगे। इधर बलदेव और नारायण राज्य करने लगे।

कृष्णके मोक्षगामी जम्बू प्रद्युम्न आदि पुत्र हुए। कृष्ण ने पाण्डवों को सहायता देकर कौरवों का विध्वंस कराया और पाण्डवों को राज्य दिलाया। अन्त में एक दफ़े कोई ऋद्धिधारी तपस्वी द्वीपायन द्वारका के बाहर तप कर रहे थे। उन पर यादवों के बालकों ने उपसर्ग किया। मुनि को क्रोध आगया, जिससे द्वारका भस्म होगई। बड़ी कठिनता से कृष्ण, बल्देव भागकर बचे।

कौशाम्बी के एक बन में पहुंचे। वहां कृष्ण का भाई जरत्कुमार, जो बहुत वर्ष पहले बाहर निकल गया था और कुसंगतिमें पड़ शिकार खेलने लगा था, रहा करता था। कृष्ण

जी बनमें प्यास से पीड़ित हो सोगये थे, बलदेवजी पानी लेने गये थे। जरत्कुमार ने दूरसे कृष्णको मृग जानकर बाण मारा, जिससे कृष्ण का देहान्त होगया।

बल्देवजी ने भी कुछ काल पीछे मुनिव्रत लिये और वे पाँचवें स्वर्ग पधारे। पांचों पाण्डवों ने दीक्षाली और सत्रुंजय पर्वत पर ध्यान कर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष पाई तथा नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धि पधारे।

८१. जैनियों के तिहवार

जिन २ मितियों में जिस २ तीर्थङ्कर ने मोक्ष पाई है वे सब ही उत्सव के योग्य हैं। वर्तमान में नीचे लिखे दिवस अति प्रसिद्ध हैं:—

(१) कार्तिक, फागुन, आषाढ के अन्त के आठ दिन, जिनको आष्टान्हिका व नन्दीश्वर पर्व कहते हैं।

(२) कार्तिक बदी १४ अर्थात् निर्वाण चौदस, जिसकी पिछली रात्रि को श्री महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया।

(३) कार्तिक बदी १५—गौतम स्वामी ने केवलज्ञान पाया।

(४) चैत्रसुदी १३—श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस।

(५) वैशाख सुदी ३ (अक्षय तृतीया)—ऋषभदेव को श्रेयांस द्वारा प्रथम मुनिदान इस ही दिन हुआ।

(६) जेठ सुदी ५—शास्त्र पूजन का पवित्र दिन।

(७) श्रावण सुदी १५—रक्षाबंधन पर्व; इस ही दिन

श्री विष्णुकुमार मुनि द्वारा ७०० मुनि संघ को अग्नि से बचाया गया था।

(८) भादों बदी १ से भादों सुदी १५ तक—षोडश कारण व्रत, जिसका प्रारम्भ श्रावण सुदी १५ से होकर समाप्ति कुआर बदी १ को होती है।

(९) भादों सुदी ५ से भादों सुदी १४ तक—दश लक्षण पर्व।

(१०) भादों सुदी १०—सुगन्ध वा धूप दशमी।

(११) भादों सुदी १३, १४, १५—रत्नत्रय व्रत; प्रारम्भ भादों सुदी १२ समाप्ति कुवार बदी १।

(१२) भादों सुदी चौदश—अनंत चौदश, दशलाक्षणी का अन्त दिवस।

८२. जैनियों के भारतवर्ष में प्रसिद्ध कुछ तीर्थ व अतिशय क्षेत्र

(१) बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रान्त—

१. श्री सम्मेद शिखर पर्वत या पार्श्वनाथ हिल—यहां से सदा ही भरतक्षेत्र के २४ तीर्थंकर मोक्ष जाया करते हैं। इस कल्पकाल में किसी विशेषता से श्री ऋषभ, वासुपूज्य, नेमिनाथ और श्री महावीर के सिवाय २० तीर्थंकर मोक्ष प्राप्त हुए। यह सर्व पर्वत परम पवित्र माना जाता है। जैन लोग नङ्गे पैर यात्रा करते हैं, भोजनादि नीचे उतर कर करते हैं। ई० आई० रेल्वे के ईसरी स्टेशन से १२ मील हज़ारीबाग ज़िले में है।

२, मन्दारगिरि—भागलपुर से करीब ३० मील एक रमणीक पर्वत है। इसी से श्री वासुपूज्य भगवान ने मोक्ष प्राप्त की थी।

३, चंपापुर—भागलपुर से ४ मील, नाथनगर स्टेशन से १ मील। यहां श्री वासुपूज्य भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, यह चार कल्याणक हुए हैं।

४, पावापुर—विहार स्टेशन से ७ मील। यहां श्री महावीर भगवान ने मोक्ष प्राप्त की है।

५, कुण्डलपुर—पावापुर से १० मील के करीब। यहाँ श्री महावीर भगवान का जन्म प्रसिद्ध है *

६, राजगृह और विपुलाचल आदि पांच पर्वत—विहार लाइन में राजगृह स्टेशन है। यहां श्रेणिक आदि अनेक जैन राजा हुए है। महावीर स्वामी का समवशरण आया है।

यहां से श्री गौतम गणधर, श्री जीवंधर कुमार आदि अनेक महात्माओं ने मोक्ष प्राप्त की है। श्री मुनिसुव्रत नाथ तीर्थंकर का जन्मस्थान है।

७, गुणावा—राजगृह से ५ मील के करीब। यहां श्री गौतम स्वामीने तप आदि किया है। नवादा स्टेशन है।

८, श्री खण्डगिरि उदयगिरि—उड़ीसा के भुवनेश्वर

---

* नोट—परन्तु उनका जन्मस्थान मुज़फ्फ़रपुर ज़िले में वसाढ़ ग्राम के पास होना चाहिये। वहीं स्थान बनना चाहिये।

स्टेशन से ५ मील। यहाँ बहुत प्राचीन गुफ़ाएँ हैं, अनेक साधुओं ने ध्यान किया है। सन् ई० से १५० वर्ष पूर्व का जैन राजा खारवेल का शिलालेख हाथी-गुफ़ा में है। तीर्थंकरों की मूर्तियां चिन्ह सहित कोरी हुई हैं।

(२) युक्तप्रांत—

(१) बनारस—यहाँ श्री सुपार्श्वनाथ ७ वें तीर्थंकर का जन्मस्थान भदैनी घाट पर है। यहीं दिगम्बर जैनों का श्री स्याद्वाद महाविद्यालय है, जो सन् १९०५ ई० में स्थापित हुआ था। भेलूपुरा में श्री पार्श्वनाथ २३वें तीर्थंकर का जन्मस्थान है।

(२) चन्द्रपुरी—बनारस से १० मील के करीब गङ्गा तट पर श्री चन्द्रप्रभु ८ वें तीर्थंकर का जन्म-स्थान है।

(३) सिंहपुरी—बनारस से ६ मील श्री श्रेयांसनाथ ११ वें तीर्थङ्कर का जन्म-स्थान है।

(४) खखुन्दी या किष्किन्धापुर—नुनखार स्टेशन से २ मील, गोरखपुर से ३० मील। यहाँ श्रीपुष्पदन्त भगवान ९ वें तीर्थङ्कर ने जन्म प्राप्त किया था।

(५) कुहाऊँ—सलेमपुर स्टेशन से ५ मील गोरखपुर से ४६ मील। यहां एक जैन मानस्तम्भ २४॥ फुट ऊंचा है। श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति अङ्कित है। इस पर गुप्त सं० १४६ व ४५० सन् ई० का शिलालेख है।

(६) कोसाम या कौशाम्बी—ज़िला प्रयाग मझान-पुर से १२ मील। यहां श्री पद्मप्रभु भगवान छठे तीर्थंकर का

जन्म हुआ है । बहुत प्राचीन स्थान है। यहां सन् ई० से दो शताब्दि पहिले के जैन शिलालेख हैं ।

(७) अयोध्या—यहाँ श्री आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ व अनन्तनाथ ऐसे ५ तीर्थंकरों का जन्म स्थान है। यहाँ सदा ही भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्म हुआ करता है, किन्तु इस कल्प में यहाँ केवल ५ ही जन्मे ।

(८) श्रावस्ती—या सहेठमहेठ ज़ि० गोंडा—बलरामपुर से १२ मील। यहाँ श्री सभवनाथ तीसरे तीर्थंकर का जन्म हुआ है ।

(९) रत्नपुरी—फ़ैज़ाबाद से कुछ दूर सुहावल स्टेशन से १॥ कोस । यहाँ १५वें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जन्म हुआ है।

(१०) कम्पिला—ज़िला फ़रुखाबाद, क़ायमगञ्ज से ६ मील। यहाँ श्री विमलनाथ १३वें तीर्थंकर ने जन्म प्राप्त किया था।

(११) अहिछत्र—बरेली ज़िला आँवला स्टेशन से ६ मील। यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान को कमठ ने उपसर्ग किया था। तब धरणेन्द्र पद्मावती ने उनकी रक्षा की थी और उनको यहाँ केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, ऐसा प्रसिद्ध है।

(१२) मथुरा—चौरासी। यहाँ अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने मुक्ति प्राप्त की है।

(१३) हस्तिनापुर—मेरठ शहर से २४ मील। यहां श्री शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ १६, १७, १८ वें तीर्थंकरो के जन्म आदि चार कल्याणक हुए हैं।

(१४) देवगढ़—ज़िला झाँसी जाखलौन स्टेशन से ८ मील। यहाँ पहाड पर बहुतसे दर्शनीय जैन मन्दिर व शिला-लेख हैं।

(३) राजपूताना, मालवा, मध्य भारत—

१. श्रमणगिरि—सोनागिरि (दतिया स्टेट) से २ मील। यहां से नङ्ग, अनग कुमार व पांच करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं।

२. सिद्धवरकूट—इन्दौर स्टेट, मोरटक्का स्टेशन से ७ मील, नर्बदा पार। यहाँ से दो चक्रवर्ती, १० कामदेव व ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

३. बड़वानी—चूलगिरि बावनगजा, मऊ छावनी से ८० मील। यहां श्री मेघनाथ,कुम्भकरण आदि ने मुक्ति पाई है व चौरासी फुट ऊँची श्री ऋषभदेव की मूर्ति बहुत पुरानी है।

४. महावीर जी—महावीर रोड स्टेशन (जयपुरस्टेट) से ३ मील। यहाँ श्रीमहावीरजी की अतिशय रूप मूर्ति है।

५. आबू जी—आबू रोड से १८ मील पर्वत है। बड़े अमूल्य जैनमन्दिर हैं।

६. केशरिया जी—उदयपुर से चालीस मील। यहां अतिशयरूप श्री ऋषभदेव की मूर्ति है।

(४) मध्य प्रान्त बरार—

१. कुंडलपुर—दमोह से १६ मील। यहाँ पर्वत पर

श्री महावीर स्वामी की अतिशय रूप मूर्ति है व बहुत से मन्दिर हैं ।

२. रेसंदीगिरि या नैनागिरि—सागर से ३० मील, दलपतपुर से ८ मील । यहां से वरदत्तादि मुनि मोक्ष गये हैं। पर्वत पर २५ मन्दिर हैं ।

३. द्रोणगिरि—ग्राम सेंदधा सागर से ६६ मील । यहाँ से गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष पधारे हैं । २५ जैनमंदिर हैं ।

४. मुक्तागिरि—एलिचपुर स्टेशन से १२ मील । यहाँ ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं । पर्वत पर बहुत मन्दिर हैं ।

५. रामटेक—नागपुर से २४ मील, रामटेक स्टेशन से ३ मील । यहाँ शान्तिनाथ जी की अतिशयरूप मूर्ति है ।

६. भातकुली—अमरावती से १० मील । यहाँ श्री मनोज्ञ ऋषभदेव की मूर्ति चौथे काल की है ।

७. अन्तरीक्षपार्श्वनाथ—अकोला से १६ कोस। यहां श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति सिरपुर ग्राम में अतिशयरूप है ।

८. मकसीपार्श्वनाथ—ज़िला उज्जैन मकसीस्टेशन से थोडी दूर । यहां चौथे काल की पार्श्वनाथ जी की मूर्ति है ।

(५) बम्बई प्रान्त—

१. तारङ्गा—तारङ्गा हिल स्टेशन से ३ मील। पर्वत पर से वरदत्त, सागरदत्त तथा ३॥ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं ।

२. सेत्रुंजय—पालीताना स्टेशन पर्वत से श्री युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, ये तीन पाण्डव व ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं ।

३. गिरनार—जूनागढ़ से ४ मील। यहाँ से श्री नेमिनाथ भगवान व प्रद्युम्न आदि ७२ करोड मुनि मुक्ति पहुँचे है।

४. पावागढ़—स्टेशन से २ मील। यहां से रामचन्द्र के सुत लव, कुश व ५ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे है।

५. गजपन्था—नासिक से ६ मील। यहां से बलभद्रादि ८ करोड़ मुनि मुक्ति पधारे हैं।

६. मांगीतुंगी—नासिक ज़िला मनमाड़ स्टेशन से ४० मील। यहां से श्री रामचन्द्र, हनूमान, सुग्रीव आदि ९९ करोड़ मुनि मुक्ति गये हैं।

७. कुन्थलगिरि—बारसी टाउन स्टेशनसे २२ मील। यहां से श्री देशभूषण मुनि मुक्ति पधारे हैं।

८. सजोत—गुजरात में अंकलेश्वर से ६ मील। यहाँ श्री शीतलनाथ की प्राचीन दिव्य मूर्ति दर्शनीय है।

(६) दक्षिण मदरास आदि—

१. श्रवणबेलगोल—जैनबद्री मैसूरस्टेट मंदिगिरि स्टेशन से १२ मील। यहाँ श्री बाहुबलि या गोम्मटस्वामी की ५६ .फ़ुट ऊँची दर्शनीय मूर्ति है।

२. मूलबद्री—मङ्गलोर स्टेशन से २२ मील। यहाँ रत्नबिम्ब व श्री धवलादि ग्रन्थ दर्शनीय हैं।

३. कारकल—मूलबद्रीसे १२ मील। यहाँ भी ३२ .फ़ुट ऊँची श्री बाहुबलि की मूर्ति है।

४. एनूर—यहाँ भी श्री बाहुबलि की २८ .फ़ुट ऊँची मूर्ति है।

५. पोन्नूरहिल—कांचीदेश स्टेशन तिडिवनम् से २४ मील। यहाँ श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी की तपोभूमि व स्वर्ग-गमन स्थान है।

८३. जैनियों के कुछ प्रसिद्ध आचार्य व उनके उपलब्ध ग्रन्थ

१. श्री कुन्दकुन्दाचार्य—वि० स० ४९। श्री पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, रयणसार, द्वादशभावना।

२. श्री उमास्वामी—वि० सं० ८१। श्री तत्त्वार्थसूत्र

३. वट्टकेर स्वामी—श्री मूलाचार।

४. श्री पुष्पदन्त भूतबलि—श्री धवल, जयधवल, महाधवल।

५ श्री समन्तभद्राचार्य—वि० द्वि० शताब्दि, स्वयंभू-स्तोत्र, देवागम स्तोत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, २४ जिन स्तुति, युक्तानुशासन।

६. शिवकोटी—वि० द्वि० शताब्दि, भगवती आराधनासार।

७. श्री पूज्यपाद—वि० चतुर्थ शताब्दि। समाधिशतक, इष्टोपदेश, सर्वार्थसिद्धि, जैनेन्द्रव्याकरण, श्रावकाचार।

८. श्रीमाणिक्यनन्दि—वि० छठी शताब्दि। परीक्षा मुख, न्यायसूत्र।

९. श्री अकलङ्कदेव—वि० अष्टम शताब्दि। राजवार्तिक, अष्टशती।

१०. श्री जिनसेनाचार्य—वि०अष्टम शताब्दि। श्री आदि पुराण, जयधवल टीका का भाग।

११. प्रभाचन्द्र—श्री प्रमेयकमल मार्तण्ड।

१२ पुष्पदन्तकवि—प्राकृत महापुराण आदि।

१३ श्री जिनसेनाचार्य—वि० अष्टम शताब्दि। श्री हरिवंश पुराण।

१४. श्री गुणभद्राचार्य—वि० नवम शताब्दि। श्री· उत्तर पुराण, आत्मानुशासन, जिनदत्त चरित्र।

१५. श्री विद्यानन्दि—वि० नवम शताब्दि। आप्त-परीक्षा श्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, अष्टसहस्री, पत्र-परीक्षा।

१६. श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती—वि० दशम शताब्दि। श्री गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, द्रव्य संग्रह।

१७. श्री अमृतचन्द्रआचार्य—वि० दशम शताब्दि। पञ्चास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार पर संस्कृत वृत्ति, तत्वार्थसार, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय।

१८. श्री देवसेनाचार्य—वि० दशम शताब्दि। आलाप-पद्धति, तत्वसार, दर्शनसार, आराधनासार।

१९. श्री जयसेनाचार्य—वि० दशमशताब्दि। प्रवचन सार, पञ्चास्तिकाय, समयसार पर सस्कृतवृत्ति।

२०. अमितगति—वि० ११ शताब्दि। श्रावकाचार, सामायिकपाठ, धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसंदोह।

२१. शुभचन्द्र—वि० ११ शताब्दि। श्री ज्ञानार्णव।

८४. जैनियों में दिगम्बर या श्वेताम्बर भेद

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि जैनधर्म अनादि है तथा इतिहासकी खोजके बाहर है । प्राचीन सनातन जैनमार्ग यही है कि इसके साधु नग्न होते हैं तथा जहांतक वस्त्र त्याग नहीं करसकते थे, वहां तक ग्यारह प्रतिमा रूप श्रावकका व्रत पालन होता था ।

श्री ऋषभ देव से श्री महावीर तक बराबर यही मार्ग जारी था । श्री महावीर के समय में जैन मत को निग्रन्थ मत कहते थे, जैसा बौद्धों की प्राचीन पुस्तकों से प्रगट है । उस समय दिगम्बर या श्वेताम्बर नाम प्रसिद्ध नहीं थे । सम्वत् रहित प्राचीन जैन मूर्तियां जो विक्रम सम्वत् के पूर्व की या चतुर्थ काल की समझी जाती हैं (जब लेख लिखनेका रिवाज न था) सब नग्न ही पाई जाती हैं ।

श्री सम्मेद शिखरके पास पालगंजमें जो दिगम्बर जैन मन्दिर है उस में श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति ऐसी ही है । विहार के मानभूम ज़िले में देवलटान ग्राम में जो प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है उस में मुख्य ऋषभदेव की अन्य तीर्थङ्कर सहित मूर्ति सम्वत् रहित बहुत प्राचीन नग्न हीं है ।

श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के समय में महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्य के राज्य में (सन् ई० से ३२० वर्ष पहिले) मध्य देश में १२ वर्ष का दुष्काल पडा । दुष्काल के प्रारम्भ में ही श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली ने, जो २४००० शिष्यों सहित वहाँ मौजूद थे, सर्व संघको यह आज्ञा दी कि इस समय सर्व सङ्घ को दक्षिण

में जाना चाहिए । क्योंकि वहाँ जैन बस्ती बहुत है, वहाँ आहार आदि की कठिनता नहीं पड़ेगी । तब आधे सङ्घ ने तो आज्ञा मानली, किन्तु आधे ने न मानी । वे आधे वहीं रहे । कालान्तर में दुष्काल पड़ने पर वे अपने साधुके चारित्र को न पाल सके । शिथिलतायें हो गईं । वस्त्र कन्धे पर डालने लगे । भोजन लाकर एक स्थान पर खाने लगे । कुत्तों से बचने के लिए लाठी रखने लगे । उन को लोगों ने अर्द्धकालिक प्रसिद्ध किया ।

दुष्काल बीतने पर जब मुनि संघ लौटा, तब बहुतों ने प्रायश्चित लेकर अपनी शुद्धि की । शेषों ने हठ किया । शिथिलाचार चलता रहा । विक्रम सम्वत् १३६ में श्वेत वस्त्र धारण करने से श्वेताम्बर नाम पड़ा । तब से जो प्राचीन निर्ग्रंथ मतके अनुयायी थे उन्होंने अपने को दिगम्बर प्रसिद्ध किया अर्थात् जिनके साधुओं का दिशा ही वस्त्र है ।

पहले श्वेताम्बरों की बहुत कम प्रसिद्धि रही । वीर सम्वत् ६०० के अनुमान गुजरात के वल्लभीपुर में श्रीयुत देवर्द्धिगण नाम के एक श्वेताम्बर आचार्य ने अपने यतियों की सभा करके प्राकृत भाषामें प्राचीन द्वादशांग वाणी के नाम से अपने आचारांग आदि ग्रन्थ बनाए । ये वे नहीं हैं जिनको १८००० आदि पदों में संकलन किया गया था । इन ग्रन्थों में इन्होंने बहुत सी बातें दिगम्बरों से भेद रूप सिद्ध कीं, जिनमें से कुछ ये हैं—

१. सवस्त्र साधु होकर महाव्रत पालना ।

२. भिक्षा मांग कर पात्र में लाना व एक नियत स्थान पर एक या अनेक दफ़े खाना ।

३. स्त्री को भी मुक्ति पद होना। दृष्टान्त में १९वें तीर्थ- ङ्कर मल्लिनाथ को मल्लि तीर्थंकरी लिखना। प्राचीन जैन आम्नाय में स्त्री उस ध्यान की योग्यता नहीं रख सकती, जिस से केवलज्ञान होसके। इसलिये स्त्री का जीव आगे पुरुष भव पाकर ही महाव्रत पाल मोक्ष जा सकता है।

४. केवलीभगवान अरहंत का भी ग्रास रूप साधारण मनुष्यों के समान भोजन पान करना, मलमूत्र करना, रोगी होना। प्राचीन जैनमत में केवली परमात्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त बल प्रगट होजाने से उनकी आत्मा में न इच्छाएँ होती हैं और न निर्बलताएँ। उनका सश- रीर अवस्था में शरीर कपूरवत् बहुत ही निर्मल होजाता है। उसमें धातु उपधातु बदल जाती हैं। तब जैसे वृक्षों का शरीर चहुँ ओर के परमाणुओंसे पुष्टि पाता है, उसी तरह केवलीका शरीर दीर्घ काल रहने पर भी चारों तरफ़ के शरीर योग्य पर- माणुओं के ग्रहण से पुष्टि पाता है। केवली के शरीर में न रोगादि होते और न मलमूत्र होता है।

५. मूर्तियों को लंगोट सहित ध्यानाकार बनाकर भी उनके गृहस्थके समान मुकुट आदि आभूषण पहिनाते, शृंगार करते, अतर लगाते, पान खिलाते हैं। दिगम्बर जैन मूर्तियाँ नग्न ध्यानाकार खड़े व बैठे आसन होती हैं। उनमें कोई वस्त्र का चिन्ह नहीं होता न वे अलंकृत की जाती हैं।

६. काल द्रव्यको कोई २ श्वेताम्बर ग्रन्थकार निश्चय से स्वीकार नहीं करते। केवल घड़ी घण्टा आदि व्यवहार काल मानते हैं। दिगम्बर जैन काल द्रव्य को द्रव्यों के परिवर्तन

का निमित्त कारण मानकर अवश्य उसकी सत्ता स्वीकार करते हैं।

७. महावीर भगवान का ब्राह्मणी के यहां गर्भ में आना और इन्द्र के द्वारा गर्भ हरण कर त्रिशला के गर्भ में स्थापन करना, दिगम्बर जैनी इसे स्वीकार नहीं करते। त्रिशला के गर्भ में ही वे आये थे।

८. श्री महावीर भगवानका विवाह हुआ था। दिगम्बर जैनी कहते हैं कि वे कुँवारे ही रहे और तप धारण किया।

इत्यादि कुछ बातोंमें अन्तर पडा। सात तत्व, नौ पदार्थ, बाईस परीषह, पांच महाव्रत, आदि सर्व ही जैनी मानते हैं। श्री उमास्वामी महाराज सम्वत् ८१ में हुये हैं, उन्होंने जो तत्वार्थसूत्र रचा है, जिस की मान्यता दिगम्बरों में बहुत अधिक है, उसको श्वेताम्बरी भी मानते हैं। यही इस बातका प्रमाण है कि उस समय भेद बहुत स्पष्ट नहीं हुआ था, पीछे से कुछ सूत्रों में परिवर्तन हुआ है।

इनके यहां बड़े प्रसिद्ध आचार्य १२ वीं शताब्दि में श्री हेमचन्द्र जी हुए हैं, जिन्होंने बहुत से संस्कृत में ग्रन्थ रचे और राजा कुमारपाल जैन की सहायता से गुजरातमें धर्मका बहुत विस्तार किया। तब ही से श्वेताम्बरोंकी बहुत प्रसिद्धि हुई है। इन्ही में से स्थानकवासी या ढूंढिये १५ वीं शताब्दि में हुये हैं, जिन्होंने मूर्ति माननेका त्याग किया और जो सवस्त्र साधुओं का ही तीर्थङ्कर के समान मान कर पूजते हैं। अन्तर यह है कि साधु लोग मलीन वस्त्र पहिनते और मुँह में पट्टी बांधते हैं, इस भाव से कि कोई कीट न चला जावे। भोजन नीच, ऊँच जो देवे उसी से ले लेते हैं।

ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया जिल्द २५ ग्यारहवीं दफा सन् १९११ (Encyclopedia Brittannia Vol. 25, 11th edition 1911) में यह वाक्य जैनमत के सम्बन्ध में है—

The Jains are divided into two great parties, Digambars and Swetambars The latter have only as yet been traced and that doubtfully as far back as 5th. century A. D. after Christ, the former are almost certainly the same as Niganthas who are referred to in numerous passages of Buddhist Pali Pitakas and must therefore as old as 6th century B. C. The Niganthas are referred to in one of Asoka's edicts (Corpus Inscription Plate XX).

The most distinguishing outward peculiarity of Mahavira and his earliest followers was their practice of going naked whence the term Digambar

Against this Custom Gotam Budha especially warned his followers, and it is referred to in the wellknown Greek phrase Gymnoso-phist used already by Magasthenes, which applies very aptly to Niganthas.

भावार्थ—जैनियों में दो बड़े २ भेद हैं। एक दिगम्बर दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बर थोड़े काल से शायद बहुत करके ईसा की पाँचवीं शताब्दि से प्रगट हुये हैं। दिगम्बर

निश्चय से क़रीब २ वे ही निर्ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन बौद्धों की पालीपिटकों (पुस्तकों) में आया है और ये लोग इस लिये सन् ई० से ६०० वर्ष पहलेके तो होने ही चाहियें। राजा अशोक के स्तंभों में भी निर्ग्रन्थों का लेख है। (शिलालेख नं० २०)।

श्री महावीर जी और उनके प्राचीन मानने वालों में नग्न भ्रमण करने की क्रिया का होना एक बहुत ही प्रसिद्ध बाहरी विशेषता थी, जिससे शब्द दिगम्बर बना है।

इस क्रिया के विरुद्ध गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को ख़ास तौर से चिताया था, तथा प्रसिद्ध यूनानी शब्द जैन सूफ़ी में इसका वर्णन है। मेगस्थनीज़ जो (राजा चन्द्रगुप्त के समय सन् ई० से ३२० वर्ष पहले भारतमे आये थे) ने इस शब्द का व्यवहार किया है। यह शब्द बहुत योग्यता के साथ निर्ग्रन्थों को ही प्रगट करता है।

इसी तरह विल्सन साहब H. H. Wilson M. A. अपनी पुस्तक बनाम "Essays and lectures on the religion of Jains" में कहते हैं—

The Jains are divided into two principal divisons, Digambers and Swetambars. The former of which appears to have the best pretensions to antiquity and to have been most widely diffused. All the Deccan Jains appear to belong to the Digambar division. So it is said to the majority of Jains in western India. In early philosophical writings of the Hindus, the Jains are usually termed Digambars or Nagnas (naked)

भावार्थ—जैनियों में दो मुख्य भेद हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बरी बहुत प्राचीन मालूम होते हैं और बहुत अधिक फैले हुए हैं। सर्व दक्षिण के जैनी दिगम्बरी मालूम होते हैं। यही हाल पश्चिमभारत के बहुत जैनियों का है। हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में जैनियों को साधारणता से दिगम्बर या नग्न ही लिखा है।

(८४) श्रीमहावीर स्वामी के समय में इस भरतक्षेत्र के प्रसिद्ध राजा

जैनियोंके कुछ पुराणोंके देखनेसे जो नाम उन राजाओं के विदित हुए हैं जो श्री महावीर स्वामी के समय में थे, नीचे दिये जाते हैं—

(१) मगधदेश—राजगृही का राजा श्रेणिक या बिम्बसार-जिसका कुल जैन था। कुमार अवस्था में बौद्ध हो गया था, फिर जवानीमें जैन होगया। यह भविष्य २४ तीर्थङ्करों में पहला पद्मनाभतीर्थङ्कर होगा। (इसका विस्तृत जीवन चरित्र अलग पुस्तकाकार छप गया है। उसे मँगाकर पढ़ो)

(२) सिंधुदेश—वैशाली नगर का सोमवन्शी राजा-चेटक जैनी था। उस की रानी भद्रा से निम्न १० पुत्र थे—

धनदत्त भद्रदत्त, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकभोज, अकंपन, सुवतङ्ग, प्रभञ्जन और प्रभास।

इनमें अकंपन और प्रभास का नाम श्रीमहावीर स्वामी के ११ मुख्य साधु अर्थात् गणधरों में है (यह सिंधु देश पञ्जाब के उधर सिंधु नदी के पास मालूम होता है)।

इस की ७ पुत्रियां यह थीं—

१. प्रियकारिणी—जो नाथवंशी कुंडपुर (ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर) के राजा सिद्धार्थ जैनी को विवाही गई थी व जो श्री महावीर स्वामी की माता थी।

२. मृगावती—वत्सदेश के कौशाम्बी नगर के चन्द्रवंशी राजा शतानीक जैनको विवाही गई थी।

३. सुप्रभा—जो दशार्णदेश (मंदसौर के निकट) के हेरकच्छ नगर के सूर्यवंशी जैनी राजा दशरथ को विवाही गई।

४. प्रभावती—जो कच्छ देशके रोरुक नगरके जैनी राजा उद्द्यनको विवाही गई।

५. ज्येष्ठा—जिसको गंधार देश (कन्धार) के महीनगर के राजा सात्यक ने मांगी थी।

६. चेलना—जो राजगृह के राजा श्रेणिक या विम्बसार को विवाही गई।

७. चन्दना—जो विवाह न कर आर्यिका हो गई।

(उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १ से ३५)

(३) हेमांगदेश—राजपुर का राजा सत्यंधर व पुत्र जीवन्धर जैनी। (उत्तरपुराण पर्व ७५)

(४) विदेहदेश—राजपुर का राजा गणेन्द्र।

(उ० पु० पर्व ७५)

(५) चंपानगरी-का राजा जैनी श्वेतवाहन, फिर जैन मुनि धर्मरुचि।

(उ० पु० पर्व ७६ श्लोक ८-९)

(६) सुरम्यदेश—पोदनापुर का राजा विद्रद्राज।

(७) मगधदेश—सुप्रतिष्ठ नगरका राजा जयसेन जैनी।

(उ० पु० पर्व ७६ श्लोक २१७-२२१)

(८) पल्लवदेश—चन्द्राभा नगरी के राजा धनपति ।

(क्षत्रचूड़ामणि लं० ५)

(९) दक्षिण—क्षेमपुरी का राजा नरपतिदेव ।

(क्ष० चू० ल० ६)

(१०) मध्यदेश—हेमाभा नगरी का राजा दृढ़मित्र ।

(क्ष० चू० लं० ७ श्लोक ६८)

(११) विदेहदेश—धरणीतिलकानगरी का जैनी राजा गोविन्दराज ।

(क्ष० चू० लं० १० श्लोक ७-८-९)

(१२) चन्द्रपुर का राजा सोमशर्म्मा ।

(श्रेणिक चरित्र सर्ग २)

(१३) वेणुपद्म नगर का राजा वसुपाल ।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ५)

(१४) दक्षिण केरला का राजा मृगांक जैनी ।

(श्रेणिक चरित्र पर्व ६)

(१५) हंसद्वीप का राजा रत्नचूल । ,,

(१६) कलिंगदेश के दन्तपुर नगर का राजा धर्मघोष जैनी, फिर दि० जैन मुनि होगये ।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१७) भूमि तिलक नगरका राजा वसुपाल जैनी, पीछे यही जिनपाल नाम के मुनि हुए ।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१८) कौशाम्बी (प्रयाग के पास) के राजा चंडप्रद्योत जैनी ।

(श्रे० च० सर्ग १०)

(१९) मणिवतदेश में द्वारानगर का जैनी राजा मणि-माली, पीछे मुनि हुए। (श्रे० च० सर्ग ११)

(२०) हस्तिनापुर का राजा विश्वसेन।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२१) पद्मरथ नगर का राजा वसुपाल।

(श्रे० च० सर्ग ११)

(२२) अवन्ती (मालवा) देश में उज्जयनी का राजा अवनिपाल जैनी।

(धन्यकुमार चरित्र अ० १)

(२३) मगधदेशकी भोगवती नगरीका राजा कामवृष्टि।

(धन्यकुमार चरित्र अ० ४)

नोट—जिन राजाओं के जैनी होने में संशय था उन के आगे जैनी शब्द नही लिखा गया है।

८६. श्री महावीर स्वामी के समय में सामयिक स्थिति का दर्शन !

(१) स्त्रियोंको अर्द्धांगिनी समझा जाता था व उनको सम्मानित किया जाता था। प्रमाण—

उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक २५९।

राजा सिद्धार्थ ने प्रियकारिणी को सभा में आने पर अपना आधा आसन बैठने को दिया।

(२) सात २ खन के मकान बनते थे। प्रमाण—

महावीर चरित्र उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २५३।

विदेह के कुण्डलपुर में सप्ततला प्रासाद थे।

(३-क) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों में परस्पर संबंध होते थे। (उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लो ४२४-२५)

१. राजा श्रेणिक ने ब्राह्मण की पुत्री से विवाह किया। मोक्षगामी अभयकुमार इसी ब्राह्मण पुत्रीके पुत्र हुए थे।
(उत्तर पुराण पर्व ७४ श्लोक २६)

२. इसी स्थल पर श्लोक ४९१ से ४९५ में वर्ण का वर्णन यह है—

वर्णाकृत्यादि भेदानां देहेस्मिन्न च दर्शनात् ।
ब्राह्मणादिषु शूद्राद्यै गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥
नास्ति जाति कृतोभेदो मनुष्याणां गवाश्ववत् ।
आकृति ग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥
जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्ल ध्यानस्यहेतवः ।
येषु तेस्युस्त्रयांवर्णाः शेषा शूद्राः प्रकीर्तिता ॥
अच्छेदो मुक्ति योग्याया विदेहे जाति सन्ततेः ।
तद्धेतु नाम गोत्राढ्य जीवा विच्छिन्न संभवात् ॥
शेषयोस्तु चतुर्थेस्यात् काले तज्जाति संततिः ।
एवं वर्ण विभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे ॥ ४९५ ॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर में वर्ण आकृति के ऐसे भेद नहीं देखने में आते हैं, जिससे वर्ण भेद हो। क्योंकि ब्राह्मण आदि का शूद्रादि के साथ भी गर्भाधान देखनेमें आता है। जैसे गौ घोड़े आदिकी जातिका भेद पशुओं में है ऐसा जाति भेद मनुष्योंमें नहींहै, क्योंकि यदि आकार भेद होता तो ऐसा भेद होता। जिनमें जाति, गोत्र व कर्म शुक्ल-ध्यानके निमित्त हैं वे ही तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री. वैश्य हैं। इनके सिवाय शूद्र कहे गये हैं।

मुक्ति के योग्य जाति की सन्तान विदेहों में सदा चली

जाती है। क्योंकि ऐसे नाम, गोत्रके धारी सदा होते रहते हैं। भरत और ऐरावतमें चौथे काल में ही वर्ण की सन्तान व्यक्त रूप से चलती है, शेष कालों में अव्यक्त रूप से* । इस तरह जिन आगममें मनुष्योंके भीतर वर्ण का भेद जानना चाहिए।

३. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३२०-३२५—

जीवन्धर कुमार वैश्य पुत्र प्रसिद्ध थे। क्षत्रिय विद्याधर गरुड़ वेग की कन्या गन्धर्वदत्ता को स्वयंवर में वीणा बजा कर जीता और विवाहा।

४. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६४६-६५१—

जीवन्धरकुमार ने विदेह देशके विदेह नगर के राजा गयेन्द्रकी कन्या रत्नवतीको स्वयंवरमें चन्द्रकपत्र पर निशाना लगा कर विवाहा।

५. उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६-४८— .

प्रीतंकर वैश्य को राजा जयसेन ने अपनी कन्या पृथ्वी-सुन्दर विवाही व आधा राज्य दिया।

६. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ५ श्लोक ४२-४९—

पल्लवदेश के चन्द्राभानगर के राजा धनपति की कन्या पद्मा को जीवन्धर वैश्य ने सर्प-विष उतार कर विवाहा।

७. क्षत्र चूडामणि लम्ब १० श्लोक २३-२४—

विदेह देश की धरणीतिलका नगरी के राजा अर्थात् उसके मामा गोविन्दराज की कन्याका स्वयंवर हुआ। उसकी घोषणानुसार तीन वर्णधारी धनुषधारी एकत्र हुए। जीव-न्धर ने चन्द्रक यन्त्र को वेधा और कन्या विवाही।

---

* "शेष कालों में अव्यक्त रूप से चलती है" यह सम्मति पं० माणिकचन्द जी की है।

८. श्रेणिक चरित्र शुभचन्द्रकृत सर्ग २—

उपश्रेणिकने भीलोंके क्षत्रिय राजा यमदण्डकी तिलक वती कन्या को विवाहा जिसके पुत्र चिलाती हुए और उसी को राज्य भी मिला।

९. धन्यकुमार चरित्र छठा पर्व—

राजा श्रेणिक ने धन्यकुमार सेठ को वैश्य जानकर गुणवती आदि १६ कन्यायें विधिपूर्वक विवाहीं और आधा राज्य दिया।

(३-ख) विवाह युवाकाल में ही होते थे, बालविवाह नहीं होते थे।

१. उत्तर पुराण पर्व ७५—

मामाने आज्ञा दी कि पुत्र व कन्या जब तक युवा न हों तबतक अलग रहें, विवाह न हो।

अभ्यर्णयौवने यावद्विवाह समयोभवेत्।
तावत् पृथग्वसे दस्मादिति मातुलवाक्यतः॥

२. क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ८ श्लोक ६९—

तरुणा कन्या विमला को जीवन्धर ने विवाहा।

(४) समुद्र यात्रा जैनी करते थे—

१. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ११२—

नागदत्तने समुद्रयात्रा की, जहाज़ पर चढ़कर पलास-द्वीप गये।

२. उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २५२—

प्रीत्यंकर जैनसेठने व्यापार के लिये समुद्र-यात्रा की।

३. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब २—

श्री दत्त वैश्य ने व्यापारार्थ समुद्र यात्रा की।*

(५) उच्च वर्ण वाला खोटे आचरण से पतित हो सकता है—

उत्तरपुराण पर्व ७४—एक श्रावक ने एक ब्राह्मण को जाति मूढ़ता व जाति मद हटाने को यह उपदेश किया कि—

तस्य पाखण्ड मौढ्यंच युक्तिभि स निराकृतः।
गोमांस भक्षणागम्य गमाद्यैः पतिते क्षणात्॥

भावार्थ—गौमांस खाने व वैश्यागमन करने आदि से ब्राह्मण पतित हो जाता है, ऐसा कह कर उसकी जाति मूढ़ता को युक्तियों से खण्डन किया।

(६) मामीके पुत्रके साथ बहिनका विवाह होता था।

१. उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक १०५—

स्वमातुलानी पुत्राय नन्दिग्राम निवासने।
कुलवाणिज नाम्ने स्वामनुजा मदितादरात॥ १०५॥

२ क्षत्रचूड़ामणि १० लम्ब—

अपने मामा गोविन्दराजकी कन्या विमलाको जीवंधर ने व्याहा।

(७) गर्भाधान आदि संस्कार होते थे—

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक २५०—

---

* वर्तमान में भोजनशुद्धि, छः आवश्यकों का पालन, जिनचैत्यालय, साधुसङ्गति न होने से समुद्रयात्रा निषिद्ध है। यदि उक्त योग मिल जायँ तो कोई दोष नहीं है, किन्तु मद्य, मांस के अत्यधिक प्रचार होने पर उक्त बातें कहाँ से मिल सकती हैं। (सम्मति पं० माणिकचन्द जी)

गन्धोत्कट सेठ जब जीवन्धर बालक को घर ले गया तब उसने अन्नप्राशन क्रिया की—

तस्यान्यदा वणिग्वर्यः कृतमङ्गलसत्क्रिय ।
अन्नप्राशन पर्यन्ते व्यधाज्जीवधराभिधाम् ॥ २५० ॥

(८) गेंदक्रीड़ा भी की जाती थी—

उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक २६२ ।

जीवन्धरकुमार गेंद खेलते थे—

(९) कन्यायें अनेक विद्यायें सीखती थीं—

१ उत्तरपुराण पर्व श्लोक ३२५—

गरुड़वेग की कन्या गन्धर्वदत्ता वीणा बजानाजानती थी।

२. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३४६-३५७—

वैश्य वैश्ववर्णदत्त की कन्या सुरमञ्जरी ने चन्द्रोदय चूर्ण बनाया।

वैश्य कुमारदत्त की कन्या गुणमाला ने सूर्योदय-चूर्ण बनाया। दोनों वैद्य विद्या जानती थी।

(१०) दयाका उदाहरण—

उत्तर पुराण पर्व ७५—

जीवन्धर कुमार ने मरते हुए कुत्ते पर दया कर उसे णमोकार मन्त्र दिया।

(११) पक्षी भी अक्षर सीख लेते हैं—

उत्तर पुराण पर्व ७५ श्लोक ४५७—

गन्धोत्कट सेठ के पुत्र विद्याभ्यास करते थे, उनको देख कर कबूतर कबूतरी ने अक्षर सीख लिये।

(१२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण वाले मुनि हो सकते हैं।

उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ११७—

जम्बूकुमार के साथ विद्युच्चोर और तीनों वर्ण वालोंने दीक्षा ली।

(१३) मोक्षगामी गृहस्थावस्था में आरंभी हिंसा के त्यागी नहीं होते।

१. उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक २८६–८८—

मोक्षगामी प्रीत्यंकर वैश्य ने दुष्ट भीम को तलवार से मारा।

२. क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ३ श्लोक ५१—

गन्धर्वदत्ता को वरते हुए मोक्षगामी जीवन्धर ने राजाओं से युद्ध किया।

३. क्षत्रचूड़ामणि लंब १० श्लोक ३७—

जीवंधर ने काष्टांगार को युद्ध में मारा, फिर लड़ाई वन्द की, क्योंकि व्रती क्षत्री वृथा हिंसा नहीं करते। विरोधी के मरने पर पीछे नर-हत्या संकल्पी हिंसा है।

अन्य संग्राम संरंभं कोरवोऽमवारयत्।
सुधा बधादि भीत्याहि क्षत्रिया व्रतिनोमताः ॥ ३८ ॥

४. श्रेणिकचरित भ० शुभचन्द्रकृत सर्ग ६—

मोक्षगामी जम्बूकुमार वैश्य ने हँसद्वीप के राजा रत्न-चूल पर चढ़कर केरल नगरी जा ८००० सेना का विध्वंस कर राजा को बाँध लिया।

५. गृहस्थ लोग मणि व मंत्र के प्रयोगोंको सीखते थे।

६. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३६८—

जीवंधरकुमार मणि व मंत्र ज्ञान में चतुर था।

(१४) राजग्रही का विपुलाचल पर्वत परम पवित्र है। वहाँ से अनेकों ने मोक्ष प्राप्त की है।

१. उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ६८६-६८७—

जीवन्धर ने मोक्ष प्राप्त की।

विपुलाद्रौ हताशेष कर्मा शर्माग्र्य मेष्यति।
दृष्टाष्ट गुण सम्पूर्णो निष्टितात्मा निरंजनः ॥ ६८७ ॥

२. उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ५१७—

गौतम स्वामी गणधर ने यहीं से मोक्ष प्राप्त की।

३. श्रेणिक चरित पर्व १४—

श्रेणिक पुत्र अभयकुमार ने विपुलाचल पर केवलज्ञान पा कर मोक्ष पाई।

(१५) वैराग्य होने पर राज्य व कुटुम्ब का मोह नहीं रहता है।

१ उत्तरपुराण पर्व ७६, श्लोक ८-२६—

चम्पानगरी के राजा श्वेतवाहन श्री वीर भगवान का उपदेश सुनकर वैराग्यवान हो जवान होने पर भी बालक-पुत्र विमलवाहन को राज्य दे मुनि हो केवली हो गये।

धन्यकुमार चरित्र ७वां पर्व—

धन्यकुमार सेठ व सालिभद्र सेठने जवानीमें ही दीक्षा धारण की और घोर तप किया।

(१६) श्रेणिक का पुत्र कुणिक या अजातशत्रु जैनधर्म पालता था।

१. उत्तर पुराण पर्व ७६ श्लोक ४१-४२—

जब महावीरको मोक्ष और गौतम गणधरको केवलज्ञान हुआ, तब राजा कुणिक परिवार सहित पूजन करनेको आया।

स्थास्याभ्येतत्समाकर्ण्य कुणिक चेलिनी युतः।
तत्पुराधिपतिः सर्व परिवार परिष्कृतः॥
२. उ० पु० पर्व ७६ श्लोक १२३—
जब जम्बूकुमार दीक्षा लेंगे, तब कुणिक राजा अभिषेक करावेगा।
(१७) पांच वर्ष पूर्ण होने पर बालक विद्या प्रारम्भ कर देता था।
क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १ श्लो० ११०-११२—
पांच वर्ष पूर्ण होने पर जीवन्धर कुमार ने आर्यनन्दि तपस्वी के पास सिद्ध पूजा करके विद्या प्रारम्भ की।
(१८) अजैनोको उदारतापूर्वक जैनी बनाया जाता था।
१. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ६ श्लोक ७-९—
जीवन्धर कुमार ने एक अजैन तपस्वी को जैनधर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया।
२. क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ७ श्लोक २३-३०—
जीवन्धरकुमार ने एक गरीब भाई को जैनी बना कर आठ मूलगुण ग्रहण कराये तथा प्रसन्न हो अपने आभूषण उतार कर दे दिये।
(१९) उस समय पाँच अणुव्रत धारण व तीन मकार का त्यागन, इन आठ मूल गुणोंके धारण करनेका प्रचार था।
क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ७ श्लोक २३—
अहिंसा सत्य मस्तेयं स्वस्त्री मितवसु गहौ।
मद्य, मांस, मधु त्यागैस्तेषां मूल गुणाष्टकम्॥
(२०) स्वयंवर में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तीनों वर्णधारी एकत्र होते थे।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १० श्लोक २४—

गोविन्दराजाकी कन्याके स्वयंवरमें तीनोंवर्ण वाले आये।

(२१) शत्रुको विजयकर फिर दया व नीति से व्यव-हार होता था।

१ क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १०, श्लोक ५५-५७—

जीवन्धरने काष्ठांगारको मारकर फिर उसके कुटुम्बको सुख से रखा तथा १२ वर्ष तक प्रजा पर कर माफ़ कर दिया।

"अकरामकरोद्दात्रीं वर्षाणि द्वादशाप्ययम"

२ श्रेणिक चरित्र सर्ग २—

राजा उपश्रेणिक ने चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा को उद्दण्ड जान वश किया, फिर उसका राज्य उसे ही दे दिया।

(२२) लोग समयविभागके अनुसार सर्व काम करते थे।

क्षत्र चू० लम्ब ११—

जीवन्धरकुमार रात दिनका समय-विभाग करके धर्म, अर्थ, काम का साधन करते थे।

'रात्रिं दिव विभागेषु नियतो नियतिं व्यधात्।

कालातिपात मात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति ॥ ७ ॥'

भावार्थ—जो काल को लांघ कर काम करते हैं उनका करने योग्य काम नष्ट हो जाता है।

(२३) शुद्ध भोजन राजा लोग करते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग २—

भील राजा क्षत्रिय यमदण्ड ने उपश्रेणिकको भोजन के लिए कहा। तब उसके गृहस्थाचार की क्रिया शुद्ध न देख कर भोजन न किया। जब तिलकवती कन्या ने शुद्ध रसोई बनाई, तब राजा ने भोजन किया।

(२४) पिता के लिए पुत्र का उद्यम ।

श्रेणिक चरित्र सर्ग ८—

सिन्धुदेश विशालानगर के राजा चेटकके चेलना कन्या थी। वह सिवाय जैनी के दूसरे को नहीं विवाहता था। उस समय राजा श्रेणिक बौद्ध थे तथा उस कन्या के विवाह ने की चिन्तामें थे। तब पिता-भक्त पुत्र अभयकुमार जैनी बन कई सेठों को साथ ले, अनेक स्थानों में जैनपना प्रकट करते हुए चेलना को रथ में बिठा ले आये।

(२५) नियमपूर्वक व्रतो न होने परभी गृहस्थी देवपूजा आदि छः कर्म पालते थे।

श्रेणिक चरित्र सर्ग १३—

राजा श्रेणिक व्रती न हो कर भी नित्य छः आवश्यक पालन करते थे।

(२६) गृहस्थ राजा लोग भी श्रावक की क्रियाओं को पालते थे।

धन्यकुमारचरित्र सकलकीर्ति कृत अ० १—

उज्जयनीका राजा अवनिपाल बड़ा धर्मात्मा था। प्रातः काल उठ सामायिक, ध्यान, फिर पूजन, मध्यान्ह में पात्रदान करके भोजन, पर्व तिथिमें उपवास करता था। बड़ा निस्पृही था। भूमि में सेठ धनपाल को जो धन मिला था वह उसे ही दे दिया था।

(२७) जैन किसान थे तथा वे त्यागी थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० २—

जैनी कृषक का भोजन कर के धन्यकुमार सेठ हल चलाने लगा। वहाँ सुवर्ण भरा कलश मिला। धन्य कुमार ने

वह धन स्वयं न लिया, कृषक ने भी ग्रहण न किया। वादानुवाद के पीछे धन्यकुमार धन वहीं छोड़ कर चले गए।

(२८) गृहकी स्त्रियोंमें भी नीतिसे वर्तनका प्रचार था।

धन्यकुमार चरित्र अ० ४—

अकृतपुण्य की माता बलभद्र के पुत्रों को खीर बनाकर खिलाती थी, परंतु अपने पुत्र को बिना अपने स्वामी बलभद्र की आज्ञा के ज़रा सी भी खीर नहीं देती थी।

(२६) वैश्यों में इतनी चतुरता थी कि थोड़ी पूँजी से अधिक धन कमा सकते थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

राजगृह के श्रीकीर्ति सेठ ने यह प्रसिद्ध किया कि जो वैश्य ३ दमड़ी से १००० दीनार कमावेगा, उसे अपनी कन्या विवाहूंगा। धन्यकुमार ने फूल की माला बनाकर श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार को १००० दीनार में बेच दी।

(३०) गरीब पिता व भाइयोंका भी सम्मान करते थे।

धन्यकुमार चरित्र अ० ६—

धन्यकुमार सेठ जब श्रेणिक से सम्मानित हो राजा होगए, तब उनके पिता व सातों भाई उज्जैनी से निर्धन स्थिति में आए। सबका धन्यकुमारने बहुत सम्मान किया व धनादि दिया। इन ही भाइयो ने द्वेष कर धन्यकुमार को वापी में पटक दिया था, परन्तु धन्यकुमारने उस बातको भुला दिया।

(३१) पक्षियों द्वारा सन्देश भेजा जाता था।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब ३ श्लोक १३८-४३—

जीवन्धर ने एक तोते के द्वारा गुणमाला को पत्र भेजा था।

(३२) धर्मकार्य करके विशेष लौकिक कामको करते थे।

क्षत्र चूड़ामणि लम्ब १०—

जीवन्धरकुमार पात्र दान देकर फिर काष्ठांगार पर युद्ध को चढ़े।

(३३) वैश्यों का पुत्रों के साथ व्यवहार।

धन्यकुमार चरित्र अ० १—

धनपाल सेठ ने धन्यकुमार को विद्या, कला, विज्ञान जवान होने तक सिखाया। धन्यकुमार नित्य पूजा व दान करता था। पिता धन्यकुमार को कहता था कि प्रातःकाल धर्म क्रियाओं को करके जबतक भोजन का समय न हो व्यापार करना चाहिए। अभी तक विवाह का नाम भी न था।

८७. श्री महावीर स्वामी के पीछे भारत में जैन राजाओं का राज्य।

जैसे महावीर स्वामी के समय में उनके पूर्व अनेक जैन राजा राज्य करते थे, वैसे ही उनके पीछे भी बहुत काल तक भारत में जैन राजाओंने राज्य किया है। उनमें के कुछ प्रसिद्ध राजाओं का यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जाता है:—

महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य जैन सम्राट् थे—

इनका राज्य भारतव्यापी व बहुत परोपकारपूर्ण था। यह श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य मुनि होकर दक्षिण कर्नाटक में गये और श्रवणबेलगोल (मैसूर स्टेट) में गुरुकी अन्त समय सेवा की, यह बात वहां पर अङ्कित शिलालेख से भली प्रकार प्रगट है। वहाँ चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त बस्ती नाम

का जिनमन्दिर भी है। इनका पोता राजा अशोक भी अपने राज्य के २६ वर्ष तक जैनधर्म का मानने वाला था। पीछे बौद्ध मत धारी हुआ है।

देहली में जो स्तम्भ है उसके लेखों में जैनधर्म की शिक्षा झलक रही है। कल्हण कविकृत राजतरंगिणी में लिखा है कि अशोक ने काश्मीर में जैनधर्म का प्रचार किया था। राजा अशोक का पोता सम्प्रति भी जैनी था, जिसका दूसरा नाम दशरथ था।

उड़ीसा व कलिंग देश में जैनधर्म का राज्य बराबर चला आता था। खण्डगिरि की हाथी गुफा का लेख जो सन् ई० से पूर्व दूसरी शताब्दि का है जैन राजा खारवेल या भिक्षु राज या मेघवाहन का जीवनचरित्र इसमें अङ्कित है। उड़ीसा देशमें जैनधर्म के राजा १२ वीं शताब्दि तक होते रहे हैं।

दक्षिण उत्तर कनाडामें कादम्बवन्श जैनधर्म का मानने वाला था, जो दीर्घकाल से छठी शताब्दि तक राज्य करता रहा, जिस की राजधानी बनवासी थी। उत्तर कनाडा में भटकल और जरसप्पा में जैन राजाओं ने १७ वीं शताब्दि तक राज्य किया है। सन् १४५० में चन्नभैरवदेवी जैन रानी का राज्य था। जिसने भटकल के दक्षिण पश्चिम एक पाषाण का पुल बनवाया था। १७ वी शताब्दि के पूर्व जरसप्पा में भैरव-देवी का राज्य था। गुजरात से सूरत शहर के पास राडेर में जैन राजा दीर्घकाल से १३ वी शताब्दि तक राज्य करते थे, तब वहाँ अरब लोगों ने जैनियों को भगाकर अपना राज्य स्थापित किया।

दक्षिण व गुजरात में राष्ट्रकूट वंश ने राज्य किया है,

उसमें अनेक राजा जैनधर्म के अनुयायी थे। उनमें अति प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुए हैं जो श्रीजिनसेनाचार्य के शिष्य थे व अन्तमें त्यागी होगये थे। यह आठवीं शताब्दिमें हुए हैं। इन्हों ने संस्कृत व कनडी में अनेक जैनग्रन्थ बनाये हैं। संस्कृत में प्रश्नोत्तरमाला व कनडी में कविराज मार्ग कनडीकाव्य प्रसिद्ध है। इसकी राजधानी हैदराबाद स्टेट में मलखण्ड या मान्य खेट थी, जहाँ प्राचीन जिनमंदिर अब भी पाया जाता है व कई मंदिर क़िले में दबे पड़े हैं।

बम्बई के बेलगाम ज़िलेमें राष्ट्र वंशने ८ वी शताब्दि से १३ वी शताब्दि तक राज्य किया है; जिसके राजा प्रायः सर्व जैनधर्म के मानने वाले थे।

वहाँ के शिलालेखों से उनका जैनमंदिरों का बनवाना प्रसिद्ध है। उनमें पहला राजा मेरड़ व उसका पुत्र पृथ्वी-वर्मा था। सौंदन्तीमें राजा शांतिवर्मा ने सन् ६८० में जैन मंदिर बनवाया था। बेलगाम का क़िला व उसके सुन्दर पाषाण के मंदिर जैन राजाओं के बनवाये हुए हैं और लक्ष्मी देव मल्लिकार्जुन अन्तिम राजा हुये हैं। धाड़वाड़ ज़िलेमें गङ्ग वंश के अनेक जैन राजा नौवीं दसवीं शताब्दि में राज्य करते थे। चालुक्य तथा पल्लववंश के भी अनेक राजा जैनी थे।

बुन्देलखण्ड में जबलपुर के पास त्रिपुरा राज्यधानी रखने वाले हैहय वंशी कालाचार्य या कलचूरी या चेदी वंशके राजा लोग सन् ई० २४६ से १२वीं शताब्दि तक राज्य करते रहे। दक्षिण में भी इनका राज्य फैला था।

इस वंशके राजा प्रायः जैनधर्मके माननेवाले थे। मध्य-प्रान्त में अब भी एक जाति लाखों की संख्या में पाई जाती है,

जिनको जैन कलवार कहते हैं। ये हैहयवंशी या कलचूरी वंशी प्राचीन जैन हैं।

(देखो सी. पी. सेन्सस रिपोर्ट सफ़ा २३०)

गुजरातमें अनहिलवाड़ा पाटन प्रसिद्ध जैनराजाओं का स्थान रहा है। पाटन का संस्थापक राजा वनराज जैनधर्मी था। इसने सन् ७८० तक वहाँ राज्य किया। इसका वश चावड़ा था, जिसने सन् ६५६ तक राज्य किया। फिर चालुक्य या सोलंकी वंश ने सन् १२४२ तक राज्य किया। प्रसिद्ध जैनराजा मूलराज, सिद्धराज व कुमारपाल हुए हैं।

८८. जगत की रचना

क्योंकि जगत् छः द्रव्यों का समुदाय है और सर्व द्रव्य सत् रूप नित्य हैं, इससे जगत् सत् रूप नित्य है। क्योंकि सर्व ही द्रव्य जगत् में काम करते हुए बदलते रहते हैं व परिवर्तित होते रहते हैं, इससे यह जगत् भी परिवर्तनशील अर्थात् अनित्य है। इस नित्यानित्यात्मक जगत् की रचना को जैन आगम किस तरह बताता है, इस बात का जानना हर एक जैनधर्म के जिज्ञासु को आवश्यक होगा। इसलिए हम इस प्रकरण में वह वर्णन संक्षेप में करेंगे।

वर्तमान भूगोल की समालोचना करके जैन आगम में कहे हुए भूगोल वर्णन के सिद्ध करने का प्रयास पूर्ण सामग्री व पूर्ण पर्याप्त ज्ञान के अभाव से हम नहीं कर सकते। इतना अवश्य जानना चाहिये कि जगत् में ऐसा परिवर्तन हज़ारों लाखों वर्ष में होजाता है कि जहाँ भूमि है वहां पानी आजाता है व जहां पानी है वहाँ भूमि बन जाती है।

वर्तमान प्रचलित भूगोल देखी हुई ज़मीन का है। जैन जगत् की रचना का वर्णन सदा स्थिर रचना (जो कहीं कहीं बदलते रहने पर भी अपनी मूल स्थिति को नहीं बदलती है) को मात्र बतलाने वाला है तथा जो वर्तमान भूगोल है वह बहुत थोड़ा है और जैन भूगोल बहुत बडा है।

पाश्चिमात्य विद्वान खोज कर रहे हैं। संभव है अधिक भूमि का पता लगजावे। इस लिये पाठकों को उचित है कि जैन जगत् की रचना के ज्ञान को प्राप्त करके उसके प्रमाणभूत होने के लिये भूगोलवेत्ताओं की खोज की राह देखें। जैनशास्त्रों में सजीव वृक्ष, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि में जीवपना बतलाया है। सायंस [विज्ञान] ने पृथ्वी व वृक्ष में जीव है यह बात तो सिद्ध करही दी है, संभव है शेष तीन में भी जीवपना कालांतर में सिद्ध हो जाय। इसी तरह भूगोल की रचना के सम्बन्ध में भी सन्तोष रखना चाहिये।

यह जगत् आकाश, काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गल और जीव इन छः द्रव्यों का समुदाय है। इनमें क्षेत्र की अपेक्षा आकाश सबसे बड़ा है, अनन्त है, मर्यादारहित है। उसके मध्य में जितनी दूर तक आकाश में शेष जीवादि पाँच द्रव्य पाए जाते हैं उस क्षेत्र को लोक (Universe) कहते हैं तथा उतने आकाशके विभाग को लोकाकाश कहते हैं, शेष ख़ाली आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

इस लोककी लम्बाई चौड़ाई, ऊँचाई व आकार इसी तरह का जानना चाहिये जैसा कि सामने दिया है। यह लोक डेढ़ मृदंग के आकार है। आधे मृदंग के ऊपर सारा मृदंग रख देने से लोक का आकार बन जाता है। अथवा एक पुरुष पैरों

को फैलाकर व दोनों हाथों को कमर में बाँका करके लगा लेवे, उसके आकार के समान लोक का आकार है। एक राजू माप है, जो असंख्यात योजन की समझनी चाहिये। यह लोक पूर्व से पश्चिम नीचे सात राजू चौड़ा है।

फिर घटते हुये ऊपरको मध्यमें एक राजू चौड़ा है फिर ऊपरको वढ़ता हुआ शेष आधेके आधेमें पाँच राजू चौड़ा है। फिर घटते हुए अन्त में ऊपरको एक राजू चौड़ा है। दक्षिण उत्तर बराबर सात राजू लम्बा है। ऊँचाई इस लोककी चौदह राजू है। इस का घनक्षेत्रफल सर्व ३४३ (तीनसौतेंतालीस) घनराजू प्रमाण है। इसका हिसाब इस तरह है—

$$\frac{७+१}{२} \times ७ \times ७ = \frac{८ \times ७ \times ७}{२} = १९६ \text{ घनराजू}$$

शेष आधे के आधे का घनफल यह है :—

$$\frac{१+५}{२} \times \frac{७}{२} \times ७ = \frac{६ \times ७ \times ७}{४} = \frac{१४७}{२}$$

शेष ऊपर का आधा भी $\frac{१४७}{२}$ है।

$$१९६ + \frac{१४७}{२} + \frac{१४७}{२} = ३४३ \text{ घनराजू हुआ।}$$

इस लोक में ८ पृथ्वियां हैं। सात नीचे हैं। उनके नाम मध्यलोक से पाताल तक रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातमप्रभा हैं। ये एक दूसरे से कुछ कम एक एक राजू के अन्तर पर हैं तथा पूर्व पश्चिम लोक के एक ओर से दूसरी ओर तक चली गई हैं। इनकी मोटाई इन्हीं राजू में गर्भित है।

सातवीं पृथ्वीके नीचे एक राजूस्थान और है। इसको प्राग्भारा कहते हैं। फिर लोक का अन्त है।

एक पृथ्वी ऊर्ध्व लोक के अन्त में है।

इस लोक को तीन तरह की पवन वेढ़े हुये है। पहिले घनोदधि पवन गाय के मूत्र समान वर्णवाली है। उसके ऊपर घनवात मूंग अन्न वर्णवाली है, फिर उसके ऊपर तनुवात है, उसका वर्ण अव्यक्त है। इसके ऊपर मात्र आकाश है।

यह तीन तरह की पवन आठों पृथ्वियों के भी हर एक के नीचे है। इनकी मोटाई लोक के नीचे तथा ऊपर एक राजू तक की ऊँचाई तक, नीचे व बग़ल में हर एक पवन २०००० बीस हज़ार योजन मोटी है। फिर एक दम घट कर सातवीं पृथ्वीके पास क्रमसे सात, पाँच तथा चार योजन क्रमसे मोटी है। फिर क्रम से घटते हुए पहली पृथ्वी के पास पाँच, चार, तीन योजन क्रमसे मुटाई है। यहाँ तक सात राजू की ऊँचाई हो गई, फिर क्रमसे बढ़ते हुये ३॥ राजू ऊँचा जाकर पाँचवें स्वर्ग के पास सात, पाँच, चार योजन मुटाई, फिर घटते हुये आठवीं पृथ्वी के पास पाँच, चार, तीन योजन की मुटाई है।

लोकके ऊपर दो कोस घनोदधि, १ कोस घनवात तथा ४२५ धनुष कम १ कोस अर्थात् १५७५ धनुष तनुवात मोटी है।

यह गणना प्रमाणांगुल से है, जो साधारण उत्सेधांगुल से ५०० पाँच सौ गुणा है। आठ आड़े जौ का एक अङ्गुल [उत्सेध अङ्गुल], २४ अङ्गुल का एक हाथ, ४ हाथ का एक धनुष, २००० धनुष का एक कोस, ४ कोस का एक योजन छोटा। इससे ५०० गुना बड़ा योजन होता है।

यहाँ जो कोस कहा है वह ५०० कोस के बराबर है व जो धनुष कहा है वह ५०० धनुष के बराबर है।

इस लोक के मध्य में नाली के समान एक राजू लम्बा चौड़ा व चौदह राजू ऊँचा जो क्षेत्र है उसको त्रसनाली कहते हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि त्रसजीव इसके भीतर ही जन्मते हैं, इसके बाहर नहीं जन्मते, जब कि स्थावर जीव सर्व स्थानों में जन्मते व मरते हैं।

मनुष्य, पशु, नारकी और देव चारों गति के त्रसजीव इतने ही क्षेत्र में पाये जाते हैं। इसके बाद तीन सौ उनतीस [३२६] घन राजू में नहीं पाए जाते। त्रसनाली का क्षेत्रफल १४ राजू है। अतः तीन सौ तेतालीस में से १४ घटाने पर ३२६ घनराजू में केवल स्थावर पाए जाते हैं।

अधोलोक का वर्णन—नीचे की सात पृथ्वियों के नाम, ऊपर से नीचे तक क्रम से धम्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी तथा माघवी भी प्रसिद्ध हैं। इनकी हर एक की मुटाई क्रम से एक लाख अस्सी हज़ार १८००००, बत्तीस हज़ार ३२०००, अट्ठाईस हज़ार २८०००, चौबीस हज़ार २४०००, बीस हज़ार २००००, सोलह हज़ार १६०००, आठ हज़ार ८००० योजन है।

पहली पृथ्वी के निम्न तीन भाग हैं—

१—खरभाग—जो १६००० योजन मोटा है।
२—पंकभाग—जो ८४००० योजन मोटा है।
३—अब्बहुलभाग—जो ८०००० योजन मोटा है।
खरभाग में भी एक २ हज़ार मोटी १६ पृथ्वियों के

भाग है, पहले भाग को चित्रा पृथ्वी व अन्त के भागको शैला पृथ्वी कहते हैं।

खरभाग व पंकभाग में देव रहते हैं। अब्बहुलभाग में पहला नर्क है। आगे की छः पृथ्वियों में छः नर्क और हैं। इन सात नर्कों में नारकियों के उपजने व रहने योग्य क्षेत्रों को बिले कहते हैं। वे कोई संख्यात कोई असंख्यात योजन चौड़े हैं। सातों नरकों में कुल ८४ चौरासी लाख बिले नीचे प्रमाण है —

पहला नर्क—३० लाख
दूसरा नर्क—२५ लाख
तीसरा नर्क—१५ लाख
चौथा नर्क—१० लाख
पाँचवां नर्क—३ लाख
छठा नर्क—५ कम एक लाख
सातवां नर्क—केवल पाँच

पहली पृथ्वी से पांचवीं के ३ चौथाई भाग तक बहुत उष्णता है, फिर सातवीं तक बहुत शीत है। जो प्राणी अत्यत परिग्रह में मोही, अन्यायकर्त्ता व हिंसक हैं, वे इन नर्कों में जाकर अन्मुहूर्त के भीतर पैदा हो जाते हैं। इन का शरीर वैक्रियिक होता है, जिसमें बदलने की शक्ति है। इनके उपजने के स्थान ऊँट आदि के मुख के सदृश छत में छींके के समान होते हैं। वहां से गिर कर गेंद के समान उछलते हैं। इन का शरीर पारे के समान होता है जो टुकड़े २ होने पर फिर मिल जाता है। इन नारकियों के अत्यन्त क्रोध होता है, परस्पर एक दूसरे को कष्ट देते हैं। आपही कभी सिंह, नाग आदि रूप

धर लेते हैं, स्वयं ही शस्त्र रूप होकर मारते है। उनको भूख, प्यास बहुत लगती है। वे वहां की दुर्गंधित मिट्टी को खाते व वैतरणी नदी का खारी पानी पीते है, परन्तु भूख प्यास मिटती नहीं हैं।

ये नारकी दुःख सहते और विना आयु पूरी हुए मर नहीं सकते हैं। इनकी उत्कृष्ट आयु क्रम से एक, तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस, व तेतीस सागर हैं। जघन्य आयु पहले नर्क में दश हज़ार वर्ष है। पहले नर्क में जो उत्कृष्ट है, वह दूसरे में जघन्य है। तीसरे नर्क तक असुरकुमार देव भी जाकर नारकियों को लड़ाते हैं।

इनके शरीरकी ऊँचाई पहले नर्क में कम से कम तीन हाथ व अधिक से अधिक सात धनुष, तीन हाथ, छः अंगुल है। आगे के नर्कों में इसको दूनी २ ऊँचाई अर्थात् १५ धनुष, २ हाथ १२ अंगुल, ३१ धनुष १ हाथ, ६२॥ धनुष, १२५ धनुष, २५० धनुष तथा ५०० धनुप है।

खरभाग पङ्कभाग में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं। उन हर एक में एक एक जिन मन्दिर है। ये भवनवासी निम्न दश जातियों के होते हैं:—

असुर कुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वातकुमार।

नारकियोंके देहभी मनुष्यके समान होते हैं, परन्तु भयावने व कुरूप होते हैं तथा देवों के शरीर भी मनुष्य समान होते हैं, परन्तु वैक्रियिक बड़े सुन्दर होते हैं। इन में से केवल असुरकुमार पङ्कभाग में रहते हैं।

व्यन्तर जातिके देव आठ प्रकार के होते हैं—

किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच। इन में राक्षस जाति के देव पङ्क भाग में रहते हैं, शेष खरभाग में रहते हैं। बहुतसे व्यन्तर मध्यलोकमें भी रहते हैं। इन दोनों की जघन्य आयु दशहज़ार वर्ष की है तथा उत्कृष्ट आयु भवनवासी देवों की एक सागर व व्यन्तरों की एक पल्य होती है।

इन्हीं दश प्रकार भवनवासी व आठ प्रकार व्यन्तरोंमें दो दो इन्द्र व दो दो प्रतीन्द्र होते हैं, जो राजा के समान हैं। इसी तरह ४० इन्द्र भवनवासीके व ३२ इन्द्र व्यन्तरोंके जानने चाहियें। भवनवासियों में असुरकुमारों का शरीर पच्चीस धनुष, शेष का दश धनुष ऊँचा होता है।

व्यन्तर देवों का शरीर भी दश धनुष ऊँचा होता है।

मध्यलोक

पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग की पहली पृथ्वी चित्रा है। यह एक राजू लम्बा चौड़ा क्षेत्र है-इसमें अनेक महा द्वीप और समुद्र हैं। मुख्य महाद्वीपों और समुद्रोंके नाम हैं— जम्बूद्वीप, लवणोदधि, धातुकी द्वीप, कालोदधि, पुष्करवरद्वीप व पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर द्वीप व समुद्र, क्षारवर द्वीप व समुद्र, घृतवर द्वीप व समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप व समुद्र, नंदीश्वर द्वीप व समुद्र, अरुणवर द्वीप व समुद्र, अरुणाभास-वर द्वीप व समुद्र, कुण्डलवर द्वीप व समुद्र, शङ्खवर द्वीप व समुद्र, रुचिकवर द्वीप व समुद्र, भुजगवर द्वीप व समुद्र,

में सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्ग हैं। फिर आधे आधे राजू में ६ युगल अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लांतव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, सतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत स्वर्ग हैं। ऐसे ६ राजू में १६ स्वर्ग हैं। फिर १ राजूमें ६ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश व पांच अनुत्तर विमान और सिद्धक्षेत्र हैं।

(नक़शा देखो)

१६ स्वर्गों में १२ कल्पवासी देव हैं। इन स्वर्गों में इन्द्रादि १० पदवियाँ हैं। इन में १२ इन्द्र होते हैं अर्थात् पहले चार स्वर्गों के चार इन्द्र नीचे के ८ के ४ और अन्त के चार के चार इन्द्र होते हैं। सोलह स्वर्ग के ऊपर २३ विमानों में अह-मिन्द्र होते हैं। वे अपने विमान मेंसब बराबर के होते हैं।

पांच अनुत्तर के नाम ये हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि।

इन में सर्व विमानों की संख्या इस तरह पर है :—

१	स्वर्ग में	३२ लाख
२	„	२८ लाख
३	„	१२ लाख
४	„	८ लाख
५–६	„	४ लाख
७–८	„	५० हज़ार
९–१०	„	४० हज़ार
११–१२	„	६ हज़ार
१३–१६	„	७००
३ अधो ग्रैवेयक में		१११
३ मध्य	„	१०७

जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत क्षेत्र में तथा विदेह क्षेत्र में कर्मभूमि है। शेष चार क्षेत्रों में भोगभूमि है—

इन तीनों कर्मभूमि के क्षेत्रों में आर्य-खण्ड और म्लेच्छ खण्ड हैं। जिस क्षेत्र के रहने वाले किसी धर्म पर विश्वास रखते हैं उसे आर्य-खण्ड कहते हैं व जिस क्षेत्र के रहने वाले धर्म का बिलकुल भी विचार नहीं करते हैं—परलोक, पुण्य पाप व परमात्मा आत्मा आदि को कुछ भी नहीं समझते हैं—केवल शरीरमें जो इद्रियें हैं उनकी इच्छानुसार भोग विलास करने में व भोगों के लिये सामग्री एकत्र करने में लीन रहते हैं, वह क्षेत्र म्लेच्छ खण्ड कहलाता है। भरत व ऐरावत हर एक में एक एक आर्य खण्ड व पाँच २ म्लेच्छ खण्ड हैं। विदेह में ३२ आर्य खण्ड व १६० म्लेच्छ खण्ड हैं।

ज्योतिषी देव

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारे ऐसे पाँच तरह के होते हैं—ये सब मध्यलोक में ऊपर की तरफ़ हैं—ज्योतिषी देवोंका शरीर सात धनुष ऊँचा होता है व आयु उत्कृष्ट १ पल्य व जघन्य-पल्यका आठवां भाग है। इनके विमान सदा बने रहते हैं। उनमें देव पैदा होते हैं व मरते हैं। इनके विमानोंमें, तथा भवनवासी, व्यंतर तथा ऊर्ध्वलोक में रहने वाले कल्पवासी देवों के विमानों में जिन मन्दिर हैं।

ऊर्ध्व लोक का वर्णन

मेरु के तले तक नीचे से ७ राजू ऊंचा है, फिर मेरु के तले से ऊपर तक सात राजू ऊंचा है। मेरु तल से डेढ़ राजू तक सौधर्म ईशान स्वर्गों के विमान हैं। उसके ऊपर १॥ राजू

५-८ स्वर्ग में	५ हाथ की
९-१० ,,	४ हाथ की
११-१२ ,,	३॥ हाथ की
१३-१६ ,,	३ हाथ की
३ अधो ग्रैवेयक में	२॥ हाथ की
३ मध्य ग्रैवेयक में	२ हाथ की
३ ऊर्ध्व ग्रैवेयक में	१॥ हाथ की
९ अनुदिश, ५ अनुत्तर में	१ हाथ की

स्वर्गों में देवियों की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक व उत्कृष्ट ५५ पल्य है।

स्वर्ग के देवों मे तथा व्यन्तर, भवन व ज्योतिषियों में नीचे ऊँचे पद के भी धारी होते हैं। वे पदवियाँ निम्न दश हैं:—

१ इन्द्र—राजा के समान, २ सामानिक—पिता व भाई समान, ३ त्रायस्त्रिंश—मन्त्री के समान, ४ पारिषद्—सभासद समान, ५ आत्मरक्ष—शरीर रक्षक, ६ लोकपाल—छोटे गवर्नर के समान, ७ अनीक—सेना का रूप रखने वाले, ८ प्रकीर्णक—प्रजा के समान, ९ आभियोग्य—वाहन बनने वाले, १० किल्विषिक—छोटे देव।

व्यन्तर ज्योतिषियों में त्रायस्त्रिंश व लोकपाल यह दो पद नहीं होते हैं।

आठवीं पृथ्वी ४५ पैंतालिस लाख योजन चौड़ी अर्ध चन्द्राकार सिद्धशिला है। इस ही की सीध में तनुवातवलय के बिल्कुल ऊपरी हिस्से में ठीक बीचमें सिद्धोंका स्थान है, क्योंकि जहां तक धर्मद्रव्य है, वहीं तक मोक्ष प्राप्त जीवों का गमन हो सकता है। पैंतालिस लाख योजन का ढाई द्वीप है। ढाई द्वीप से ही सिद्ध हुए हैं होते हैं व होंगे। इससे सिद्धक्षेत्र सिद्धों से परिपूर्ण भरा है।

देवों के इन्द्रियसुखों के भोगने की शक्ति अधिक है, शरीर को बदलने व अनेक रूप करलेने की शक्ति है, बहुत दूर तक जानने व जाने की शक्ति है, इस कारण जो जीव पुण्यात्मा हैं वो देवगति में जन्म पाते हैं। जो जीव अन्यायी हिंसक पापी हैं, वे नर्कगति में जन्मते हैं। जिनके पाप कम हैं वे मध्यलोक में पंचेन्द्रिय पशु होते हैं। जिनके पुण्य कर्म हैं, वे मनुष्य होते हैं। इस तरह यह जगत की रचना पुण्य-पाप के फल से विचित्र है। जो सर्व कर्म रहित हो जाते हैं वे सिद्ध होकर अनन्तकाल तक सिद्धक्षेत्र में तिष्ठते हैं।

पांचवें स्वर्गके अन्तमें लौकान्तिक देव रहतेहैं जो वैरागी होते हैं, देवी नहीं रखते। इन में सब बराबर हैं, आठ सागर की आयु होती है, तीर्थङ्कर के तप समय वैराग्य-भावना भाते वक्त तीर्थङ्कर की स्तुति करने आते हैं। ये एक भव लेकर मोक्ष जाते हैं।

सर्व ही चार प्रकार के देवों के श्वांस लेने व आहार की इच्छा होने का हिसाब यह है कि जितने सागर की आयु होगी उतने पक्ष पीछे श्वाँस लेंगे व उतने हज़ार वर्ष पीछे भूख लगेगी। भूख लगने पर कण्ठ मे से स्वयँ अमृत झर जाता है, जिससे भूख मिट जाती है। वे बाहरी कोई पदार्थ खाते पीते नहीं हैं।

यह वर्णन श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती कृत त्रिलोक-सार से दिया गया है।

८६. जैनधर्म को हर एक हितेच्छु प्राणी पाल सकता है

जैनधर्म आत्मा की शुद्धि का मार्ग है, जैसा कि पूर्व में दिखाया जा चुका है। मनवाला विचारवान प्राणी, देव, नारकी, पशु या मनुष्य चाहे अमेरिकाका हो या यूरोप का, रशिया का हो या कहीं का भी हो, नीच हो या ऊँच, सब कोई इस धर्म का स्वरूप समझकर उसपर विश्वास ला सकते हैं।

मूल बात विश्वास करने की यह है कि आत्मा शक्ति से परमात्मा है। कर्मबन्धन जड़ पदार्थ का जो संयोग है उसके मिटने पर यह आत्मा परमात्मा हो सकता है। तब अनन्त-काल तक अनन्तज्ञानी व अनन्तसुखी रहेगा।

रागद्वेष मोह से कर्म का बन्ध होता है, वीतराग भाव

से कर्मबन्ध कटता है। वीतरागभाव पाने के लिये वीतराग-सर्वज्ञ, वीतराग साधु व वीतराग निर्ग्रंथ जैनधर्म की सेवा करनी उचित है।

संसार सुख तृप्तिकारक नहीं है, आत्मीकसुख ही सच्चा सुख है। इस श्रद्धान का पाना ही सम्यग्दर्शन (Right belief) है, जिसे हर कोई समझदार धारण कर सकता है। फिर वह अपने आचरण को ठीक करता है, जिसके लिये बताया जा चुका है कि उसको आठ मूल गुण पालने चाहियें।

एक ही उद्देश्य को लेकर आचार्यों ने ४-५ प्रकार से आठ मूलगुणों का वर्णन किया है। सबसे बढ़िया है— मद्य, मांस, मधु का त्याग तथा स्थूल हिंसा झूठ चोरी कुशील इन चारों का त्याग व परिग्रह का प्रमाण।

जिनसेनाचार्य जी ने मधुके स्थान में जुए का त्याग रख दिया। पीछे के आचार्यों ने पाँच पाप त्याग के स्थान में उन पाँच फलों का त्याग रख दिया, जिनमें कीड़े होते हैं; जैसे बड़फल, पीपलफल, गूलर, पाकर और अञ्जीर, जिससे लोग सुगमता से धारण कर सकें।

जो कोई जैनी हो उसे कम सें कम दो मकार तो त्याग ही देना चाहियें—एक तो मदिरा दूसरा मांस। ये दोनों मनुष्य शरीर के बाधक हैं व अप्राकृतिक आहार हैं।

नशा पीने से शरीर व मन अपने क़ाबू में नहीं रहते,

अनेक रोग हो जाते हैं। मांस की भी किसी मानव के लिये ज़रूरत नहीं है। इस में शक्ति-वर्धक अन्श भी बहुत थोड़े हैं।

The toiler and his food by Sir William Earn shaw cooper C. I. E. नाम की पुस्तक में लिखा है कि जब बादाम आदि में १०० मे ९१, मटर चने चावल में ८७, गेहूँ में ८६, जौ में ८४, घी में ८७, मलाई मे ६६ अन्श शक्ति है तब मांसमें २८, अन्डे में २६ अश है। बड़े २ प्रवीण डाक्टरों का मत है कि मनुष्य के लिये इसकी ज़रूरत नहीं।

Dr. Josiah Oldfield D. C. L M. A M. R. C S R C. P. senior physician Margaret Hospital, Bromloy कहते हैं:—

Today there is the scientific fact assured that man belongs not to the flesh-eater but to the fruit-eaters. Flesh is unnatural food & therefore tends to create functional disturbances

भावार्थ—विज्ञान ने यह विश्वास आज दिला दिया है कि मनुष्य मांसाहारियों में नहीं, किन्तु फलाहारियों में है। मनुष्य के लिये मांस अस्वाभाविक आहार है, जिस से शरीर में बहुत उत्पात हो जाते हैं।

विदेशों के बडे २ लोग मांस नही खाते थे। यूनान के पैथोगोरस, प्लेटो, अरिष्टाटल, साक्रेटीज़ पारसियों के गुरु जोरस्टर, ईसाई पादरी जेम्स, मेन्यू पेटेर। अनेक विद्वान् जैसे मिल्टन, इजाक, न्यूटन, वेनजामिन, फ्रैंकलिन, शेली, एडीसन।

अमेरिका व यूरोप में लोग दिन पर दिन मांस छोड़ते जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि ठन्डे देश में मांस बिना चल नही सकता, सो जिनराजदास थियोसोफिस्टने ता० २ सितम्बर सन् १९१८ को सिद्ध किया है कि वे इङ्गलैंड मे १२ वर्ष शाकाहार पर रहे और अमेरिका के चिकागो व कैनेडा में भी उन्होंने जाड़े शाकाहार पर काटे हैं तथा मांसाहारियों की अपेक्षा भले प्रकार जीवन विताया है।

जो मदिरा मांस छोड़ देगा, वह धीरे २ और भी बातों को धार लेगा। पहिले भी जैसा कहा जा चुका है कि फिर उसको निम्न छः बातो का अभ्यास करना चाहिये :—

(१) देवपूजा (२) गुरुसेवा (३) शास्त्रपढ़ना (४) इन्द्रिय दमन या संयम (५) तप या ध्यान (६) दान।

यदि किसी देश में किसी समय किसी आवश्यक को न पाल सके तो भावना भावे। जितना भी पालेगा, वैसा ही फल मिलेगा। प्रयोजन यह है कि इन कामों में प्रेम रखकर यथा शक्ति अभ्यास करे।

वास्तवमें जो राजा जैनधर्मी होगा, वह कभी अन्यायी व निर्दयी न होगा। वह अपनी प्रजा को सुखी बनाने की चेष्टा करेगा। यदि प्रजा जैनधर्मी होगी तो एक दूसरे को सताकर कोई काम न करेगी। वह सब खेती वाड़ी आदि का काम करते हुए भी परस्पर नीति व दया के व्यवहार से सुख शान्ति का वर्तन रख सकती है। इस लिये हर एक देशवासी को उचित है कि इस धर्म को धारण कर आत्मकल्याण करें।

* इति समाप्तम् *

उत्तमोत्तम पुस्तकें।

१.	जैन ला (हिन्दी)	२)
२	जैन क़ानून (उर्दू)	१)
३	असहमत सङ्गम (हिन्दी)	१)
४.	इत्तहादुल मुख़ालफ़ीन (उर्दू) ...	१)
५.	जैनधर्म सिद्धान्त	।)
६.	सत्यमार्ग	॥।)
७.	भगवान महावीर और उनका उपदेश ..	।)
८.	सत्यार्थ यज्ञ (चतुर्विंशति जिन पूजन) ..	१)
९.	जैनधर्म प्रकाश	॥)
१०.	विशाल जैन सङ्घ .. .	।=)
११.	जैन जाति का ह्रास	।)
१२.	हुस्ने अव्वल (उर्दू) . ..	१॥)

❀ स्त्रियोपयोगी पुस्तकें ❀

१	आदर्श निबन्ध	॥)
२	निबन्ध रत्नमाला ..	॥=)
३	सौभाग्य रत्नमाला	॥)
४.	उपदेश रत्नमाला	॥)
५.	वीर पुष्पाञ्जलि	।)
६	बालिका विनय	=)
७.	महिलाओं का चक्रवर्तित्व ...	॥)

मन्त्री—परिषद् पब्लिशिंग हाउस,

बिजनौर [यू० पी०]